

# उज्जयिनी

इतिहास तथा पुरातत्व



स. का. दीक्षित

## 卐 ॐ नमः शिवाभ्याम् 卐

सम्पृक्तमेकरूपं सदसच्चित्तुखमनेकरूपमपि ।  
प्रकृतिपुरुषात्मकं तद् वन्दे दृष्टं सदर्थवाक् किमपि ॥  
चतुर्भुजो महाकालो महाकाली चतुर्भुजा ।  
चतुर्वेदस्तुतावास्तां यतो नष्टं पुराजगत् ॥  
अतोऽहमाह्वये भूत्यायद्भुतावाहुतिक्षणे ।  
सिंहस्थे ननु सिंहस्थे ! कालहस्ते ! नमो नमः ॥  
'देवानां वै त्रयस्त्रिंशद्' आहूय शतशो मया ।  
आहुतीनां त्रयस्त्रिंशन्महाकालाय चापिता ॥  
डिस्व ळ्करैर्यल्लिखितं स्वीय-नाम्ना प्रकाशितम् ।  
उपसंचालकपदं गमितः शासनेन सः ॥  
मयाऽपि दन्धुभावेन किं किं नो तत्कृते कृतम् ।  
तेन मल्लिखितायास्तु पुस्त्या हरणमीप्सितम् ॥  
वाग्देव्या अर्प्यमाणं मे पुष्पं तदपि हारितम् ।  
शासनेन कृते तस्य मत्सर्वस्वापहारिणः ॥  
इत्थं भवति यद्भूतं शासनं साधु-शासनम् ।  
भवेत्तत्त्वत्प्रसादेन शासनं साधु-शासनम् ॥  
कुशासनाभिभूतं च कुलिकैर्बाह्याणन्नृवैः ।  
पुरातनं जगत्कृत्स्नं मां चैवोद्धर्तुं मर्हसि ॥  
—सदानन्द-रुदेः ।



प्रकाशक

श्रीमती यशोदाबाई दीक्षित

वास्ते "दीक्षित ब्रदर्स"

७८३, शिवाजी नगर,

पूना-४

मुद्रक

प्रभात प्रिन्टरो,

इन्दौर



4171

लेखक

श्री स. का. दीक्षित,

इन्दौर

प्रथम आवृत्ति ]

प्रतियाँ : ३००० ]

[ ई. १९६८

[ मूल्य : ५=०

( केवल सिंहस्थ यात्रियों के लिए आधा मूल्य )

## प्राक्कथन

१६ फरवरी १९६८ तक नित्य विभागीय समस्याओं में उलझे रहने के कारण, तब तक किसी प्रकार का शोध-कार्य असम्भव बन गया था। २० फरवरी को “उज्जयिनी: इतिहास व पुरातत्त्व” लिखना आरम्भ किया। इस “स्वाध्याय-यज्ञ” में, सिंहस्थ के पुण्य पर्व पर प्रथम स्नान के दिन (१३ अप्रैल १९६८) कुल ३३ आहुतियाँ भगवान् महाकाल को अर्पित करने का प्रण किया। तदनुसार १२-४-६८ को यह पुस्तक लिखकर पूरी करके उक्त आहुतियों को संकल्पित दिन पर भगवान् को अर्पित किया। आहुतियों का प्रयोजन भगवान् महाकाल के चरणों में काव्य रूप निवेदन किया गया ही है।

उज्जयिनी के सर्व तीर्थ स्थानों के विषय में महाभारत तथा पुराणग्रन्थों में जो उल्लेख पाये जाते हैं, वे परिशिष्ट में देने का इरादा था; किन्तु संकल्पित मर्यादा से पुस्तक की पृष्ठ संख्या एवं छपाई खर्च बढ़ जाने के कारण, वह नहीं हो पाया। सम्भव हुआ तो उस विषयक स्वतन्त्र पुस्तक निकाली जावेगी।

राष्ट्रभाषा में ऐसी पुस्तक लिखने का यह मेरा पहला प्रयास है। यदि मेरे मित्र श्री रामसेवक गर्ग, केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर, की सहायता पग-पग पर नहीं होती, तो इस राह पर चलने का विचार भी मेरे लिये असम्भव था; और मेरे पर प्रारम्भ से ही लड़खड़ाने लगते। इस प्रकार की सहायता के लिये “धन्यवाद” यह केवल औपचारिकता होगी। फिर भी अत्यन्त हार्दिक धन्यवाद।



इस पुस्तक के लेखन में मुझे इन्दौर के मेरे हितचिन्तक डॉ. एस्. एन्. नागू, एम्. बी. वी. एस्. द्वारा जो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, उसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ ।

‘प्रभात प्रिन्टरी’ के मालिक श्री ओमप्रकाश सुजातियाजी ने पूर्व-परिचय न होते हुए भी अति सौहार्द्र एवं आत्मीयता से सर्व प्रकार का सहकार्य इस पुस्तक की छपाई के समय दिया । उसके लिये उन्हें मनःपूर्व धन्यवाद । इस पुस्तक के प्रकाशक “दीक्षित ब्रदर्स” ७७३ शिवाजी नगर, पूना ४ को भी मन-पूर्व धन्यवाद ।

चूँकि यह पुस्तक लिखते समय लेखक का निजी पुस्तकालय तथा अन्य कोई बड़ा पुस्तकालय लेखक के पास नहीं था, एवं लेखक की निजी “नोट्स” तथा इंदौर संग्रहालय का पुस्तकालय ही पास थे, अतः इस पुस्तक में कई त्रुटियाँ रह गयी हैं, जो लेखक स्वयं जानता है । अन्य कुछ स्खलित उसके हिंदी भाषा के अज्ञान के फल-स्वरूप हैं । फिर भी इस प्रकार की पुस्तक की हिन्दी में आवश्यकता थी, यह जानकर विज्ञ वाचक इन सब त्रुटियाँ को क्षन्तव्य मानें, यही नम्र प्रार्थना है ।

---

जो महात्मा स्वर्ग से निज पुण्य को लेकर चले ।  
उस पुण्य से उनके बनी अमरावती यह दूसरी ॥  
—मेघदूत

“Despite Kalidasa and a host of other literary authorities the excavations at Ujjayini have not yet upheld their rich and colourful descriptions of the city during the so-called Gupta culture-period. Indeed, we are not likely to have any such confirmation or more precise and clearer knowledge unless and until these cities and the outlying areas are excavated horizontally in a large scale.”—Niharranjan Ray, in *Ancient India* ( Nos. 18 & 19 ) ( 1962 & 1963 ), p. 227.



## —: अनुक्रमणिका :—

आहुति :

विवरण :

१. सिंहस्थ पृ. १-२
२. उज्जयिनी-प्राचीन-अवशेष; महाकालवन; उज्जयिनी के विनाश के कारण; उज्जयिनी; अवन्ती; उज्जयिनीके अन्य नाम : विशाला; पुष्प कर-ण्डिनी; पद्मावती; कनकचूड़ा; कुशस्थली तथा अमरावती; प्रतिकल्प अन्य नाम । परिशिष्ट—'अ' : पृ. ३-९
३. अवन्ति देश :—जनपद; राजा आदि; सीमाएँ; हवामान; वेष-भूषा । पृ. १०-१४
४. उज्जयिनी महात्सव : महाकाल-लिङ्ग; अष्ट गुह्यलिङ्ग; द्वादश ज्योति-लिङ्ग; वैष्णवों की पुण्य नगरी; दुर्गा-नारायणी । परिशिष्ट-'ब' 'स' 'द' 'ई' 'फ' 'ग' पृ. १५-२४
५. पौराणिक इतिहास तथा आदिम जातियाँ : मालवा की आदिम जातियाँ पृ. २५-२९
६. बुद्ध-पूर्व राज्यस्थिति : गणराज्य; जनपद; वीतिहोत्रों का राज्य; वीति-होत्र वीति हव्य; महाजनपद अवन्ति । पृ. ३०-३४
७. बुद्ध-पूर्व भौतिक संस्कृति : पृ. ३४-३६
८. प्रद्योत (ई. पूर्व. ५००-४७५) पृ. ४०-४४
९. लोके हारि च वत्सराजचरितम् । पृ. ४५-४८
१०. वत्सराज का लौटने का मार्ग : उज्जयिनी-राजगृह-मार्ग; उज्जयिनी से कौशाम्बी का मार्ग । पृ. ४९-५२

११. मुद्राओं में सहाकाल : उज्जैन की कुछ प्राचीन मुद्राएँ । पृ. ५३-५५
१२. प्रद्योत के वंशज : पुरातत्त्वीय अवशेष । पृ. ५६-६१
१३. उज्जैन-चिह्न : नंदी; उज्जैन-चिह्न; चिह्न का स्थान-निर्णय; अवन्ति में बौद्ध-धर्म का उदय एवं प्रसार । पृ. ६२-६७
१४. नन्द और सौर्य : उज्जयिनी के कुमार; सेट्टिधीता; वैश्या टेकड़ी । पृ. ६८-७४
१५. कुम्हार टेकड़ी, आदिम ऐतिहासिक टीला; कुम्हार टेकड़ी के कंकाल; शवों की स्थिति; मरघट की मुद्राएँ; पुरातत्त्वीय अवशेष; दफनाने के प्रकार; सर्वेक्षण की जांच । पृ. ७५-८१
१६. शुंग : पृ. ८२-८४
१७. शुङ्गों का राज्य : उज्जयिनी के व्यापार मार्ग । पृ. ८५-८९
१८. काण्व तथा आद्य शातवाहन राजे: काण्व राजे; आदि आंध्र: सातवाहन; प्रथम शातकर्णि, खारवेल का आक्रमण, प्रथम शातकर्णि का काल; दूसरा श्रीशातकर्णि । पृ. ९०-९४
१९. बृहत्कथा एवं उसकी भाषा : सात प्राचीन भारतीय भाषाएँ; तीन प्राकृत भाषाएँ; पैशाची=भूतभाषा; मालवी का उद्गम-स्थान; बृहत्कथा का मूल स्वरूप; उदयन कथा; चाणक्य कथा; मूलदेव कथा; अनार्थ-महाकाव्य । पृ. ९५-१०३
२०. क्षहारात (खखराज) वंश ई. ७० से १०० तक : भडोच का नहपान; उज्जैन में व्यापार; उत्तमभाद्र; खखरात=? गुजरात । पृ. १३०-१०८
२१. गौतमीपुत्र शातकर्णि (ई ९५-१२०) — गौतमीपुत्र का साम्राज्य । पृ. १०९-११०



२२. आद्य कार्दमिक राजे (ई. १२०-१७५), चष्टन; महाक्षत्रप रुद्रदामन्; कार्दमिक कुल ।  
पृ. १११-११३
२३. उज्जयिनी के कार्दमिक (गर्दभिल्ल) ई. १७५-३०६:—  
कार्दमिकों के समकालीन सार्वभौम राजे; मुद्राशास्त्र का प्रमाण; डॉ० भगवान् लाल का मत; गर्दभिल विषयक समस्याएँ ।  
पृ. ११४-११८
२४. कालक-कथा (ई. ३००) : साहाणुसाहि सम्राट्; लाट के राजे; आभीर राज्य; महाक्षत्रप-शून्य कालान्तर; पाइकुली अभिलेख; कालक-कथा की राजकीय पृष्ठ-भूमि:—  
पृ. ११६-१२७
२५. आभीरों का राज्य (ई. ३००-३५०) : आभीर राज्य; आभीरों का पूर्व इतिहास; आभीर राज्य; शक महाक्षत्रप; आभीर काल-खण्ड का साहित्य-चतुर्भाणी; उज्जयिनी के समाज का दर्शन ।  
परिशिष्ट-‘ह’  
पृ. १२८-१३६
२६. ध्रुवदेवी व साहसांक : क्षत्रपों की स्थिति; रुद्रगति-रामगुप्त; देवीचंद्र-गुप्तम्; अलिपुर; सम्राट् रामगुप्त का अस्तित्व; रामगुप्त की ताम्र-मुद्राएँ; मेहेरोली अभिलेख ।  
पृ. १२७-१४७
२७. विशाला की विद्वत्परिषद्—विद्वत्परिषद् विषयक प्रश्न; कालिदास का उज्जयिनी-वर्णन; विक्रमसभा के नवरत्न; परिशिष्ट‘ह’ :—चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की उज्जयिनी ।  
पृ. १४८-१५६
२८. मालवों का आगमन राज्य (ई. ४८०-६००) विक्रम-संवत् ।  
पृ. १६०-१६५
२९. कलचुरि-राज्य : परिशिष्ट ‘ज’—बाणभट्ट की कादम्बरी में उज्जयिनी-वर्णन ।  
पृ. १६६-१७४

३०. राष्ट्रकूट-राज्य (ई. ७२५-८७५) :—अरवों का आक्रमण । त्रैराशिक-युद्ध उत्तर पर आक्रमण । पृ. ४७५-१३८
३१. गुजरात का आधिपत्य (ई. ८७५-९३०) : राष्ट्रकूट-गुजरात-युद्ध । पृ. १८४-१८७
३२. परमार-राज्य (ई. ९५०-१०००) :—‘श्रीहर्ष-सीयाक-सीयाक; श्रीमुञ्ज-वावपतिराज; उज्जयिनी से सम्बन्ध : पद्मगुप्त; धनपाल; हलायुध : पृ. १८८-१९५
३३. वेदशाला :—मध्य-रेखा; गोलदीपिका; वेदशाला; परिशिष्ट ‘क’ । पृ. १९६-२०४





## शोध-पत्र

| पृष्ठ | पङ्क्ति<br>(अन्त से) | वाचनीय               |
|-------|----------------------|----------------------|
| ७     | १०                   | क. स. सा.            |
| ९     | २                    | वृष्ट्य (वृष्ट्यु)   |
| ३३    | ६                    | गॉडिस्....           |
| ३३    | १                    | वृहन्नारदीय          |
| ५०    | २                    | फलीट्....ए. इ.       |
| ५७    | १३                   | तत्थोगाली-पङ्क्तय    |
| ८६    | ६                    | ज. रा. ए. सो. वे     |
| १०६   | १                    | भरुकच्छ              |
| ११७   | १                    | ज. रा. ए. सो. (१८९९) |
| १३०   | ११                   | ज. रा. ए. सो. (१८९९) |
| १३३   | १२                   | पुराण                |
| १३७   | ६                    | पृ. २४९-२५२          |
| १३७   | ४                    | रुद्धगतिः            |
| १३७   | २                    | गुहाकोणक्वणत्        |
| १५८   | ६                    | स्तत्र               |
| १६५   | ३                    | यु. छ्वा.            |
| १६९   | २                    | वासकात्              |

## आहुति : प्रयम सिंहस्थ

माघवे धवले पक्षे सिंहे जीवे त्वजे रवौ ।  
तुलाराशौ निशानाथे स्वातिभे पूर्णिमा-तिथौ ॥  
व्यतीपाते तु सम्प्राप्ते चन्द्रवासर-संयुते ।  
कुशस्थली-महाक्षेत्रे स्नाने मोक्षमवाप्नुयात् ॥

स्कन्द-पुराण.

अर्थात्, जब वैशाख माह के शुक्ल पक्ष में बृहस्पति सिंह राशि पर, सूर्य मेष राशि पर, तथा चन्द्र तुला राशि पर हों, तथा स्वाति नक्षत्र में पूर्णिमा तिथि एवं व्यतिपात योग हो, और दिन सोमवार हो, तब कुशस्थली (यानी उज्जयिनी) के पवित्र क्षेत्र में स्नान करने पर मोक्ष प्राप्त हो जावेगा ।

उत्तर में गङ्गानदी के तट पर प्रयाग, एवं हरिद्वार में, तथा दक्षिण में गौतमी-गङ्गा (या गोदावरी) के तट पर नागिक में, एवं मध्य-प्रदेश में क्षिप्रा के तट पर उज्जयिनी में भिन्न-भिन्न समय पर, प्रति बारहवें वर्ष 'कुम्भ मेला' होता है । उपर्युक्त वर्णन के अनुसार, उज्जयिनी में वह तभी होता है, जबकि बृहस्पति (गुरु) सिंह राशि में होते हुए अन्य ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति यथानिर्दिष्ट होती है । इसी के उपलक्ष में उज्जयिनी के कुम्भ को संक्षेप में "सिंहस्थ" नाम दिया गया है ।

ऐसी मान्यता है कि 'अवन्तिका' या उज्जयिनी भगवान् विष्णु का पद-कमल ही है<sup>१</sup> । गङ्गा नदी 'विष्णु-पदी' है; यानी भगवान् विष्णु के पद-कमल से उद्भूत नदी मानी जाती है<sup>२</sup> । इस अर्थ में यहाँ की 'क्षिप्रा' नदी 'क्षिप्र' (या जलदी) चलने वाली गंगा ही है । स्कन्द-पुराण में इसको गंगा नदी ही माना हुआ है । इस प्रकार केवल गंगा नदी के तट पर स्थित अति पावन क्षेत्रों में ही 'कुम्भ मेला' होता है ।

१. 'विष्णोः पादमवन्तिका' (परिशिष्ट 'ई')

२. 'गङ्गा विष्णुपदी जह्नु-तनया सुरनिम्नगा ।' अमरकोश.



उत्तर भारत में सर्वत्र यह मान्यता है । कि विवाहादि मङ्गल-कार्य 'सिंहस्थ' में संपन्न नहीं होते हैं । इस विषय पर चर्चा करते हुए "स्मृति-मुक्ता-फल" नामक ग्रन्थ में (महाभारत तथा अष्टादश पुराणों का तथा-कथित रचयिता) 'व्यास' के नाम पर पाया जाने वाला एक श्लोक उद्धृत किया हुआ है; तथा श्रीधर के एक ख्यात-नाम ग्रन्थ से भी एक श्लोक उद्धृत किया गया है । उनके अनुसार नर्मदा नदी के दक्षिण में 'सिंहस्थ' में भी विवाहादि मङ्गल कार्य करने में कोई दोष नहीं है <sup>१</sup> । उनके अनुसार भी उत्तर भारत में वे निषिद्ध हैं ।

१. वैद्यनाथ दीक्षित का स्मृति-मुक्ताफल (श्री जे. एन्. धारपुरे द्वारा संपादित),

भाग १ (१९३७), पृ. १४७ :—“व्यास :—

‘नर्मदोत्तर-देशे तु सिंहस्थे देवमन्त्रिणि ।

विवाहं नैव कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे ॥’

.....श्रीधरीये :—

‘नर्मदोत्तर-भागेषु सिंहस्थेऽमरपूजिते ।

विवाहादि न कुर्वीत नायं दोषोऽस्ति दक्षिणे’ ॥”

## आहुति : द्वितीया

## उज्जयिनी

आधुनिक उज्जैन क्षिप्रा (शिप्रा) नदी के दाहिने तीर पर, उत्तरी अक्षांश २३ ° ११' तथा पूर्वी रेखांश ७५ ° ४७' पर स्थित है। अब यह उज्जैन जिले का मुख्य शहर है। एक समय था, जब यह अखिल भारत का प्रमुख शहर एवं एक विशाल साम्राज्य की राजधानी भी रहा।

**प्राचीन उज्जयिनी के अवशेष :**—पुरातन उज्जयिनी की जगह पर वर्तमान उज्जैन स्थित नहीं है; बल्कि उसका महाकालवन नामक जो श्मशान था, उसकी जगह पर यह बसा हुआ है। पुरातन उज्जयिनी के अवशेष जिस क्षेत्र पर हैं, वह भी इसके उत्तर में तीन किलो मीटर लंबाई एवं देड से दो किलो मीटर चौड़ाई के क्षेत्र में दृष्टि-गोचर होता है। इस क्षेत्र को और वर्तमान उज्जैन नगर को दुर्गादास मार्ग विभक्त करता है <sup>१</sup>।

प्राचीन उज्जयिनी क्षेत्र में ईंटों की जुड़ाइयों वाली इमारतों के अवशेष, पुराने समय के रत्न, मणि, ताटङ्क ( कर्णपूर ) आदि गहने, मुहरें एवं ताम्र मुद्राएँ आदि अन्य पुरातत्त्वीय अवशेष बड़ी तादाद में पाए जाते हैं। इस विषयक खोज करने पर प्राप्त सूचनाओं में यह बात उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही लिखी हुई पायी जाती है <sup>२</sup>। ऐसे सैकड़ों अवशेष अन्वेषकों द्वारा पाए गए; किंतु जनसाधारण के लिए यहाँ अब भी देखने हेतु कोई संग्रहालय नहीं बन पाया। इस विषय में लेखक द्वारा भी किए हुए सब प्रयत्न विफल हो गए हैं।

**महाकालवन :**—यह अनुश्रुति भी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक ग्रन्थकार द्वारा बतलायी गयी है कि यहाँ के “कोट” का क्षेत्र—जहाँ मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् किला बनाया गया, वह स्थान—प्राचीन-काल में महाकाल-वन के क्षेत्र के अन्तर्गत था <sup>३</sup>।

१. देखिए संलग्न नक्शा।

२. इ. गॅ. इ. (१९०८), ग्रन्थ २४, पृ. ११२ व पश्चात्। ३. वही।



उज्जयिनी के विनाश के कारण :—अनुश्रुतियों आदि के आधार पर, प्राचीन उज्जयिनी के नष्ट होने के कई कारण बताए गए हैं,<sup>१</sup>—जैसे भूकंप, धूलिकोट, शिप्रा नदी की अभूतपूर्व बाढ़, तथा उज्जयिनी का कालान्तर में व्यापारिक एवं राजकीय महत्त्व कम हो जाना आदि । इनमें से आखरी दो अधिक संभव हैं । राजकीय महत्त्व कम होने पर व्यापारिक महत्त्व भी घट जाता था । यह भी एक मानी हुई बात है कि शिप्रा नदी की बाढ़ में उसकी सतह बहुत ऊँचाई तक बढ़ती है, एवं पास-पड़ोस के गाँवों को वह बहुत हानि पहुँचाती है ।<sup>२</sup>

उज्जयिनी :—उज्जयिनी जिस जनपद में थी, उसका नाम 'अवन्ति' बुद्ध पूर्व समय में भी संभवतः ज्ञात था<sup>३</sup>। इस नगरी का यह या अन्य कोई नाम उस समय ज्ञात था या नहीं था इस विषयक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं ।

बुद्ध के समय में अवन्ति का राजा चण्ड-पज्जोत (चण्ड प्रद्योत) उज्जयिनी नामक नगरी में राज्य करता था, यह बात प्राचीन पाली एवं संस्कृत ग्रन्थों से विदित होती है । जातक कथाओं में 'उज्जयिनी' को 'अवन्ति' नामक राजा की राजधानी कहा गया है<sup>४</sup> ।

अवन्ति :—उज्जयिनी 'अवन्ति' जनपद की प्रमुख नगरी थी, एवं कालान्तर में राजधानी भी बन गयी । इसी कारण वह 'अवन्ति-पुरी' 'अवन्ति-नगरी' 'अवन्ती' 'अवन्ती-पुरी' आदि नामों से ख्यात हुई<sup>५</sup> । जिस प्रकार 'बदरी' का का 'बदरिका' बना, उसी प्रकार 'अवन्ती' का 'अवन्तिका' रूप भी सर्वत्र प्रचलित हुआ । दश-कुमार-चरित जैसे ग्रन्थों में इस नगरी को 'उज्जयिनी' 'अवन्ति-नगरी' 'अवन्तिकापुर' आदि नामों से निर्दिष्ट किया गया है<sup>६</sup> ।

१. वहीँ ।

२. इ. गॅ. इ. (१६०८) ग्रन्थ २३, पृ. १४.

३. देखिए आहुति :—तृतीया ।

४. जा. ४. ३९० (चित्त-संभूत-ज्ञातक).

५. मृच्छकटिक १.६ :—'अवन्तिपुर्यां द्विज-सार्थवाहो' । वामन-पुराण ८३-१ :- 'अवन्ति-नगरी । 'पद्म-पुराण' उ. खं. ११५.१ :—'पुराज्वन्ती-पुरी-वासी'

६. द. कु. च., पृ. २२; ८८; आदि

उज्जयिनी के अन्य नाम: विशाला :—ऐतिहासिक काल में यह नगरी विशाल हो जाने से ही संभवतः इसे 'विशाला' नाम प्राप्त हुआ होगा । उज्जयिनी का यह नाम 'विशाला' किसी भी पाली ग्रन्थ में नहीं पाया जाता है। 'विशाला' यह उज्जयिनी का अन्य नाम था, यह बात पुरुषोत्तमदेव के त्रिकाण्ड-शेष, हेमचन्द्र के अभिधानचिन्तामणि आदि कोषों से प्रमाणित होती है <sup>१</sup>। काव्य-ग्रन्थों में इस नाम का सर्व-प्रथम उपयोग सम्भवतः कालिदास के मेघदूत में मिलता है। <sup>२</sup> क्या उसी के काल-खण्ड में, विक्रमादित्य की राजधानी होने से, इसको यह नया नाम प्राप्त हुआ ?

पुष्पकरण्डिनी :—अभिधान-चिन्तामणि में 'पुष्पकरण्डिनी' नाम भी उज्जयिनी के लिए ही दिया हुआ है, या पाटलिपुत्र के लिए, यह बताना कठिन है। पाटलिपुत्र यह पाटलिपुर, पुष्यपुर, कुसुमपुर आदि नामों से सुविख्यात है। उज्जयिनी का 'पुष्पकरण्डिनी' नाम अन्वय कहीं भी नहीं पाया जाता। फिर भी यदि साधारण पद्धति को माना जाय, तो हेमचन्द्र का अभिप्राय उज्जयिनी से ही था, यह माना जा सकता है। सम्भवतः उसका उज्जयिनी का अन्य नाम 'पद्मावती' से मतलब था।

पद्मावती :—जैन कवि सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू' नामक अपने काव्य-ग्रन्थ में उज्जयिनी के अधिपति का वर्णन 'पद्मावती नगरी का राजा' एवं 'कनक-

नानार्थार्णव-संक्षेप, पृ. ५६ :—'स्यादवन्ती..... । उज्जयिन्याख्य-नगरे.....।' पद्म-पुराण, पू. खं, ४३-२४ :—'अवन्ती नाम नगरी'

१. त्रिकाण्ड., २. १६६ :—'वाराणसी तीर्थराजी विशालोज्जयिनी समे ।'  
अभिधान. ६७६ :—'उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी । पाटलि-पुत्रं कुसुमपुर..... ।'

देखिए नीचे : नारदीय-पु., २. ७८. ३६; का. मी., पृ. ५५; आदि ।

२. मेघदूत (परिशिष्ट ज)



गिरि का अधिपति' आदि विशेषणों के साथ किया है<sup>१</sup>। यह चम्पू-कर्ता सोम-देव राष्ट्रकूट राजा (तृतीय) कृष्णराजदेव (ई. ९३६-९६७) के समय का था। इसने यह काव्य शक ८८१ (ई. ९५९) में, जब कृष्णराजदेव दक्षिण दिग्विजय करने के पश्चात् मेलपाटी-विषय के स्कन्धावार (छावनी) में था, तब रचाया था।

**कनकशृङ्गाः** :—'नारदीय पुराण' में इस नगर के 'उज्जयिनी' एवं 'अवन्तिका' के अतिरिक्त 'पद्मावती', 'कुमुद्वती' एवं 'कनकशृङ्गा' नाम भी पाए जाते हैं<sup>२</sup>। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कवि सोमदेव का 'कनकगिरि' ही नारदीय पुराण की 'कनकशृङ्गा' है। यह नाम किस कारण उत्पन्न हुआ, इस विषयक यशस्तिलक पर लिखी हुई टिप्पणी विशेष खोज हेतु ध्यान में रखने योग्य है। उसमें बताया गया है कि उज्जयिनी से दो गव्यूति की (यानी ४ कोसों की) दूरी पर 'कनकगिरि' नामक एक पहाड़ है<sup>३</sup>। इसीसे उज्जयिनी को 'कनकशृङ्गा' (नारदीय), या 'स्वर्णशृङ्गा' (स्कान्द) नाम बना होगा।

**कुशस्थली तथा अमरावती** :—उज्जयिनी के यह भी दो नाम थे, यह स्कन्द-पुराण तथा नारद-पुराण से ज्ञात होता है।<sup>४</sup> फिर भी यह खोज करने की बात है कि ये दो नाम उज्जयिनी ने कब प्राप्त किए। जब उज्जयिनी की स्थिति बहुत ही गिरी हुई थी, एवं वह यथार्थ में कुशदर्भ का स्थान बन गयी थी, तब सम्भवतः कुशस्थली जैसा नाम दिया गया होगा। किन्तु 'अमरावती' नाम संभवतः इसको प्राचीन वैभव के स्मरण में ही दे दिया गया होगा।

१. यश. पृ. ५६६:—'पद्मावतीपुरपरमेश्वरः कनकगिरिनाथः शिप्रासरिज्जल-केलिकुञ्जरः....अवन्तिसीमन्तिनी कुचकुम्भमदनाङ्कुशः.....'

२. नारदीय पु., २.७८.३५ पश्चात्:—तथा कनकशृङ्गात्वा कुशस्थल्यप्यवन्तिका ॥ तथा पद्मावती देवी कुमुद्वत्युज्जयिन्यपि। प्रतिकल्पाभिधाभिन्ना विशालाख्या अमरावती ॥

३. श्रुतसागरः—'उज्जयिन्याः समीपे गव्यूति-द्वयं गत्वा कनकगिरिः प्राप्यते।'

४. देखिए पृ. १; तथा ऊपर पदटीप २.।

प्रतिकल्प अन्य नाम :—स्कन्द तथा नारद पुराणों के अनुसार, अन्यान्य कल्पों में इस नगरी के अन्यान्य नाम हुए हैं। इस प्रकार भूत-कालीन सात कल्पों में उज्जयिनी के सात नाम हुए। इसी पौराणिक कल्पना को दुहराते हुए सोम-देव ने अपनी कथा-सरित्-सागर में बतलाया है कि इस नगरी के कृतादि चार युगों में क्रमशः पद्मावती, भोगवती, हिरण्यवती और उज्जयिनी नाम रहे<sup>२</sup>। अन्यत्र उसी कवि ने शायद उज्जयिनी का एक अन्य नाम 'अमरावती' भी दिया है<sup>३</sup>। उसके अभिप्राय में संभवतः 'कनकशृङ्गा' या 'स्वर्णशृङ्गा' 'हिरण्यवती' का

१. नारदीय पु. १.१०४.१०२ पञ्चतुः—

“कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अमिधानकम् ॥

पद्मावती कुमुद्वत्यमरावतिनामकम् ।

विशाला प्रतिकल्पामिधानं च ज्वरशान्तिकम् ॥”

स्कन्द-पुराण, अवन्ति-खण्ड :—

स्वर्णशृङ्गा च प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ।

तृतीयेऽवन्तिका प्रोक्ता चतुर्थे त्वमरावती च ।

विख्याता पञ्चमे कल्पे पुरी चूडामणीति

षष्ठे पद्मावती ज्ञेया सप्तमे चोज्जयिनी पुरी ॥”

२. क. सा. मा., ८३. ५-७ :—

“अवन्तिष्वस्ति नगरी युगादौ देवनिर्मिता ॥

...पद्मावती भोगवती या हिरण्यवतीति च ॥”

कृतादिषु त्रिषु प्रोक्ता कलावुज्जयिनीति च ॥”

३. वहीं, ६२.१६ —“भोगवत्यमरावत्योस्तृतीयोज्जयिनी पुरी ।’

इसका अर्थ प्रायः केवल इतना ही था कि पाताल के नागों की भोगवती स्वर्ग के देवताओं की अमरावती, इनके जोड़ की उज्जयिनी पुरी थी। उन दोनों की वह 'तृतीया' थी।

वही, १२०-९ :—“अस्त्यवन्तिषु विख्याता युगादौ विश्वकर्मणा । निर्मितो-ज्जयिनी नाम पुरारिवसतिः पुरी ॥’



पर्याय-वाचक शब्द था । फिर भी उसकी 'भोगवती' किसी भी अन्य प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पायी जाती ।

कथा-सरित्सागर के रचयिता सोमदेव ने संभवतः सम्भ्रमवश (१) नाग राजाओं की पद्मावती, यानी ग्वालियर के समीप का स्थान पवाया, (२) रामायण तथा महाभारत में निर्दिष्ट नागों की भोगवती नगरी, तथा (३) महाभारत में उल्लिखित नागों की हिरण्यपुरी, इनका उज्जयिनी (=पद्मावती=कनकशृङ्गा) से सम्बन्ध जोड़ दिया, एवं उज्जयिनी को भोगवती भी बना दिया । चूँकि यह विषय यहाँ अप्रस्तुत होगा, एवं विस्तृत भी होगा, इसलिए लेखक द्वारा टाल दिया जाता है ।

फिर भी कथासरित्सागर-कर्ता सोमदेव द्वारा निर्दिष्ट की हुई, उज्जयिनी के प्रति-युग में भिन्न-भिन्न नाम होने विषयक कल्पना अवश्य ही उससे बहुत प्राचीन है । यहाँ ई. १००० का खजुराहो का एक अभिलेख—जो कि पहले वहाँ के वैद्यनाथ के मन्दिर में लगाया गया था—काफी महत्वपूर्ण एवं ध्यान में रखने योग्य है । इसमें, “पुराणों में ख्यात, कृत-युग एवं त्रेता-युग के बीच निर्मित” किसी पद्मावती नगरी का उल्लेख किया गया है । इससे यह प्रमाणित होता है कि उज्जयिनी क्षेत्र की प्राचीनता विषयक इस समय ऐसे कुछ पुराण उपलब्ध थे, जिनमें उसके कृतयुग में उत्पन्न होने का जिक्र था, एवं साथ ही प्रतियुग नये नाम होने का भी संभवतः जिक्र था<sup>१</sup> ।

प्रागैतिहासिक अथवा पौराणिक युगों में उज्जयिनी के उपर्युक्त अन्य नाम भिन्न-भिन्न समय पर उत्पन्न नहीं हुए । फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि—जैसा कि ऊपर सूचित किया गया है—वे भिन्न-भिन्न काल-खण्डों में अवश्य उत्पन्न हुए होंगे ।

---

१. देखिए परिशिष्ट 'अ'

## परिशिष्ट 'अ'

खजुराहो (वैद्यनाथ मन्दिर) शिलालेख, वि. सं. १०५८ (= ई. १०००),  
श्लोक ५ व पश्चात् (पद्मावती-उज्जयिनी [विषयक])-

“आसीदप्रतिमा विमान-भवनैराभूषिता भूतले ।

लोकानामधिपेन भूमिपतिना पद्मोत्थ-वंशेन या ॥

केनापीह निवेशिता कृतयुग-त्रैतान्तरे श्रूयते ।

सत्त्वा (च्छा) [स्त्रे पठिता पुराण]पटुभिः पद्मावती प्रोच्यते ।

सो(सौ) धोत्थु(त्तु)ङ्ग-पतङ्ग-लङ्घन-पथ-प्रोत्तुङ्ग-मालाकुला ।

श(शु)भ्राभ्रंकप-पाण्डरोच्च-शिखर-प्राकार-चित्त्रम्ब(त्राम्ब)रा ॥

प्रालेयाचल-शृङ्ग-संनिभ-शुभ-प्रासाद-सद्मावती

भव्या-पूर्वमभूदपूर्व-रचना या नाम पद्मावती ॥ [६॥\*]

त्वङ्गत्तुङ्ग-त(तु)रङ्गमोद्गम-क्षुर-क्षोदाद्रजःप्रो[द्]तं

यस्यां जीर्न(र्ण)-कठोर-व(व)भ्रु-मकरोत्कूर्मोदराभं नभः ॥

मत्तानेक-कपाल-कुम्भि-करट-प्रोत्कृष्ट-वृष्टय (ष्टय) द्रतं-

व्यक्तं कर्दम-मुद्रया क्षितितलं तां ब्रूत किं संस्तुमः ॥ [७॥\*]!



## आहुति:तृतीया अवन्ति-देश

मालवा के पठार में प्राचीन काल में कई नगरियों ने राजवैभव देखा, उनमें उज्जयिनी निःसन्देह अग्रगण्य है। मालवा के जिस प्रदेश को यह नगरी अलङ्कृत करती है, वह पश्चिम मालवा का भूभाग प्राचीन काल में 'अवन्ति' कहलाता था। संस्कृत, प्राकृत, पाली एवं ग्रीक भाषाओं में लिखे हुए, प्रायः सभी ग्रन्थों में उज्जयिनी ही 'अवन्ति' की राजधानी या इस प्रदेश का प्रमुख शहर बतलाया गया है।

'अवन्ति' का राज्य इतिहास के प्रवाह में बटता-बढ़ता गया। राज्य के विस्तार के तथा आकुञ्चन के कारण कुछ काल-खण्डों में अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी से हटायी गयी। दीघनिकाय की रचना से पहले अवन्ति-राज्य का विस्तार सम्भवतः इतना हो चुका था, कि प्रशासन व्यवस्था हेतु उसकी राजधानी उज्जयिनी से माहिष्मती हटायी गयी थी<sup>१</sup>। उज्जयिनी के मुसलमान पूर्व कालीन इतिहास के अन्तिम काल-खण्ड में भी, परमार राजा सिन्धुराज के समय में, अथवा उसके पश्चात् कुछ कारणवश इस प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी से हटकर धारा-नगरी को चली गई<sup>२</sup>।

**जनपद :**—प्राचीन साहित्य में 'अवन्ति' का सर्व-प्रथम उल्लेख सम्भवतः मुनि पाणिनि के व्याकरण में ही पाया जाता है<sup>३</sup>। उसने 'कुन्ति' आदि जनपदों के साथ एक प्रासंगिक उल्लेख किया है। 'अवन्ति' जनपद का 'कुन्ति', 'अपर-कुन्ति' आदि जनपदों के साथ पद्मपुराण आदि ग्रन्थों में भी उल्लेख पाए जाते हैं<sup>४</sup>। अवन्तियों का एक महत्पूर्ण उल्लेख बौधायन धर्मसूत्र द्वारा उद्धृत एक

१. दीघ. २.२५३ (महागोविन्दसुत्त, ३६) :—'माहिस्सती अवन्तीन'

२. देखिए लेखक की पुस्तक :—'माण्डू : एक झलक'

३. पा. ४.१.१७६ :—'स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरभ्यश्च ।'

४. पद्म-पुराण, आदि खण्ड, ६.३७ —

"कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः ।"

गाथा में भी पाया जाता है<sup>१</sup>। महाभारत एवं पुराण ग्रन्थों में 'अवन्ति' जनपद (लोग तथा देश) का उल्लेख जगह-जगह पर पाया जाता है<sup>२</sup>। इनमें इस देश को कभी-कभी 'आवन्त्य' भी कहा गया है<sup>३</sup>।

पाली साहित्य से विदित होता है कि भगवान् बुद्ध के पूर्व भारत में सोलह बड़े-बड़े जनपद थे—जिन्हें 'षोडस महाजनपद' कहा गया है<sup>४</sup>। यह दो-दो की जोड़ी में बतलाए गये हैं, क्योंकि वे जनपद एक दूसरे के अति निकट थे। इनमें से कई जनपद ब्राह्मण-ग्रन्थ एवं उपनिषदों में उल्लिखित हैं<sup>५</sup>। किन्तु उनमें 'अवन्ति' का उल्लेख तक नहीं पाया जाता। फिर भी उनसे 'षोडस महाजनपदों' की सत्यता प्रमाणित होती है।

राजा आदि:—जिस प्रकार 'कम्बोज' देश का राजा 'कम्बोज' और 'चोड़ों' का राजा 'चोड़' कहलाता था, उसी प्रकार 'अवन्ति' देश के राजा को भी

१. देखिए नीचे आहुति: पञ्चदशी। ("अवन्तयोऽङ्गः....।")

२. यह पाणिनि (६ २.३७) के अनुसार 'अवन्तयः' के रूप में पाया जाता है। देखिए इस पर काशिका-वृत्ति:—'आवन्त्यश्मकाः अवन्तेरपत्यानि बहूनि। अवन्तिवासो जनपदोऽवन्तयः।'

३. मत्स्य. १७६.५ :—'आवन्त्ये विषये घोरे महाकाल-वनं प्रति।' भागवत. १२.१.३६ :—'सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च....।' स्मृति-चन्द्रिका, भाग १. पृ. ९ :—'सौराष्ट्र-सिन्धु-सौवीरमागन्त्यं दक्षिणापथम्।'

४. अङ्गुत्तर निकाय:—'यो इमेसं सोलसन्नं महाजनपदानं पट्टसत्तरत्तनानं इससराधिपच्चं रज्जं कारेय्य-सेय्यथीदं अंगानं मगधानं.....अस्सकानं अवन्तीनं गंधारानं कंबोजानं'

५. देखिए लेखक की पुस्तक 'प्राचीन भारतीय संस्कृति', पृ. ११७-१८; १३४ : आदि।



‘अवन्ति’ कहा जाता था<sup>१</sup> । इसी कारण से ‘उज्जयिनी’ का राजा जातक कथाओं में ‘अवन्ति’ कहलाता है<sup>२</sup> ।

महाभारत आदि ग्रन्थों में अवन्ति का राजा ‘अवन्ति’, ‘आवन्त्य’ आदि कहलाता है<sup>३</sup> । शिष्ट संस्कृत साहित्य में वह ‘अवन्तिराज’, ‘अवन्तिनाथ’ आदि कहलाता है ।

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार ‘कुन्ति’ देश की राजकन्या ‘कुन्ती’ एवं उसका पुत्र ‘कुन्ती-पुत्र’ होता है<sup>४</sup> । उसी प्रकार ‘अवन्ति’ की राजकन्या ‘अवन्ती’<sup>५</sup> एवं उसका पुत्र ‘अवन्ती-पुत्र’ कहलाते हैं । पाली साहित्य में मथुरा का राजा ‘अवन्तिपुत्र’ कहलाया गया है, जो कि ‘अवन्तीपुत्र’ का ही पाली रूप है<sup>६</sup> ।

‘अवन्ति’ जनपद में रहनेवाली स्त्री ‘आवन्ती’ कही गई है<sup>७</sup> । ‘अवन्तिका’

१. पाणिनि :—‘काम्बोजाल्लुक् ।’

वार्तिक :—‘काम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् । चोडादिग्रहणाद्यर्थे ।’

२. जा. ४.३९० (चित्त-सम्भूत-जातक)

३. म. भा. (कुम्भ०), ६.१७.३७; ६.४५.७२; ६.५६.७;

म. भा. (चित्र०), २. दक्षिण-दिग्विजय-पर्व; आदि ।

४. पा. ४.१.१६५:—‘इतो मनुष्यजातेः ।’

काशिका:—‘इकारान्तात्प्रातिपदिकान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । अवन्ती । कुन्ती ।’

५. नानार्थार्णवसंक्षेप, पृ. ५६:—अवन्तिर्ना राजभेदे नीवृद्धेदे च भूमि च ।

स्त्रियां त्ववन्तिराजस्य स्यादवन्ती स्यपत्यके । उज्जयिन्याख्य-नगरे... ।’

इसके अनुसार ‘अवन्ति:’—अवन्ति देश का राजा । ‘अवन्तय:’—अवन्ति-देश । ‘अवन्ती’—१ अवन्तिराज की पत्नी । २ अवन्ति राजा की कन्या । इस प्रकार अर्थ होते हैं ।

६. मज्झिम-निकाय, मथुरा-सुत्त ।

७. शाकुन्तल पर राघवभट्ट की टीका में उद्धृत श्लोक:—

“आवन्त्य एवं निपुणा सुदृशो रतिकर्मणि ।”

नगरी की रहनेवाली स्त्री 'आवन्तिका' कहलाती है<sup>१</sup> । 'अवन्ति' देश का रहनेवाला 'आवन्तिक' कहलाता है<sup>२</sup> तथा 'अवन्तिका' का रहनेवाला 'आवन्तिक' कहलाता है<sup>३</sup> ।

सीमाएं:—प्राचीन अवन्ति की चतुःसीमाएँ समय-समय पर अवश्य बदलती रहीं हैं । फिर भी साधारणतया वे निम्न प्रकार से दर्शायी जा सकती हैं—

पूर्व में:—आकर-देश;<sup>४</sup> उसके पूर्व में दशार्ण-देश<sup>५</sup> ।

दक्षिण में:—अनूप<sup>६</sup> (निमाड़); उसके बाद दक्षिणापथ ।

पश्चिम में:—नर्मदानूप या लाट-देश<sup>७</sup> ।

उत्तर में:—दशपुर एवं कुन्ति-देश<sup>८</sup> ।

१. स्वप्नवासवदत्ता, अङ्क ३:—'महाकुल-सम्भूता स्निग्धा निपुणा आवन्तिका ।'

वहीं, अंक ५:—'अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकाया: ।'

जयमङ्गला (कामसूत्र-टीका):—'आवन्तिका उज्जयिनी-देश-भवा: । ता एवापरमालव्य:..... ।'

२. भा. ना., १३.४२:—'आवन्तिका वैदिशिका:..... ।'

म. भा. (कुम्भ.), शान्ति १०१.५-६:—'सर्वत्र शूरा जायन्ते महासत्त्वा महाबला । आवन्तिका महाशूरा:'

३. बृ. सं १४:—'आकर-वेणावन्तक-दशपुर-गोनर्द-केरलका: ।'

४. आकर:—अपर (या पश्चिमी) आकर की राजधानी आगरौद, एवं पूर्व आकर की आगर रही होगी ।

५. दशार्ण:—धसान (दशार्णा) नदी के घाटी का प्रदेश, जिसकी राजधानी कभी-कभी विदिशा ही थी ।

६. अनूप:—नर्मदा नदी की तलहटी, जो माहिष्मती (महेश्वर) के आसपास है ।

७. नर्मदानूप या सागरानूप:—गुजरात में नर्मदा नदी की तलहटी, जो अनूप (नीमाड़) के पश्चिम है । महाभारत के लेखन-काल में यह भूभाग नर्मदानूप कहलाता था; वही पश्चात् लाट-देश कहलाने लगा ।

८. लेखक ने 'कुन्तिपुर-कौन्तपुर-कोन्तवर-कोतवाल' यह सभीकरण अन्यत्र स्पष्ट किया है ।



**हवामान :—**आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में बतलाया है कि अवन्ति-देश में प्रति वर्ष २३ दोनियाँ बारिस होती है। वर्तमान पद्धति के अनुसार यह ३५ इंच है।<sup>१</sup>

**वेश-भूषा :—**भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र में 'भारती' आदि चार वृत्तियों के साथ-साथ 'अवन्ती' आदि चार प्रवृत्तियाँ भी बतलायी गयी हैं<sup>२</sup>। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से सात्त्वती तथा कैशिकी प्रवृत्तियों के साथ पायी जाती थी, यह भी उसने स्पष्टतया निर्दिष्ट किया हुआ है<sup>३</sup>। चूँकि 'प्रवृत्ति' वेश-भूषा रहन-सहन आदि बातों से मतलब रखती है; अतः यह सम्बन्ध सात्त्वतों के तथा कैशिकों के देश की वेश-भूषा की दृष्टि से समझ में आ जाता है। नाट्य में पूर्व-रंग साध्य करते समय भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ विभिन्न देशों में थीं; उसमें अवन्ति के लोग, दाक्षिणात्य आदि में जो विशेषता थी, वह भी भरतमुनि द्वारा स्पष्टतया निर्दिष्ट की गयी है<sup>४</sup>।

१. कौ. श्र. २.२४:—'षोडशद्रोणं जाङ्गलानां .. त्रयो विंशतिरवन्तीनां ।

२. भा. ना. १३.३७ :—'चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोक्तृभिः ।  
आवन्ती दक्षिणात्या च पाञ्चाली चोड्र-मागधी ॥

३. वहीं, १३-४२-४३ :—'आवन्तिका वैदिशिकाः सौराष्ट्रा मालवास्तथा ।  
सैन्धवास्त्वथ सौवीरा आनर्ताः सार्बुदेयकाः ॥ दशाणस्त्रैपुराश्चैव  
तथा वै मार्तिकावताः । कुवन्त्यावन्तिकीमेते प्रवृत्ति नित्यमेव तु ॥

४. वहीं, ५.१६० :—'इत्येषोऽवन्ति-पाञ्चाल-दाक्षिणात्योड्र-मागधैः ।  
कर्तव्यः पूर्वरङ्गस्तु द्विप्रमाणविनिर्मित ॥'

## आहुति : चतुर्थी उज्जयिनी माहात्म्य

सब पवित्र स्थान सभी देवताओं के भक्तों के लिए पावन हैं, यह भारतीय संस्कृति की मान्यता रही है। उज्जयिनी का पवित्र क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न देवताओं के भक्तों के लिए प्राचीन काल से अति पावन क्षेत्र रहा है। यहां सब प्रमुख देवताओं की मान्यता होने का वर्णन महाभारत, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि यहाँ पर प्राचीन काल में प्रायः सब ही प्रमुख देवताओं के विशाल मन्दिर थे।

पद्म-पुराण की एक देवता-सूची में 'पितामह' को (ब्रह्मा) उज्जयिनी का सबसे प्रमुख देवता बताया गया है<sup>१</sup>। उसी पुराण में अन्यत्र महाकाल में महेश्वर को सब देवताओं में प्राधान्य है, यह सूचित किया गया है<sup>२</sup>। वहीं देवी-पीठों की सूची में महाकाल में महेश्वरी देवी की प्रमुखता को भी इङ्गित किया गया है<sup>३</sup>।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि पद्मपुराण के अनुसार:—

(अ) उज्जयिनी एवं महाकाल-वन दोनों ही पवित्र तीर्थ-स्थान थे, एवं इन दोनों में भिन्न-भिन्न देवताओं को प्रमुख स्थानीय देवताओं के रूप में माना जाता था।

(ब) महाकाल-वन में महाकाल या महेश्वर तथा काली या महेश्वरी इनके दो प्रमुख मन्दिर थे।

महाकवि कालिदास ने भी 'मेघदूत' में सूचित किया है कि महाकाल-वन में महाकाल के मन्दिर के साथ भवानी (काली-महेश्वरी) का भी एक मन्दिर

१. पद्म-पुराण, ५.२१.१३८:—'गोनर्दे स्थविराकार उज्जयिन्यां पितामहः।'।

२. वहीं, ५.१२९.२१:—“महाकाले महेश्वरः।”

३. वहीं, ५.१७.२०५, (मत्स्य पुराण १४.४१):—‘महाकाले महेश्वरी।’



था<sup>१</sup> । महाकाल के महेश्वर तथा काली का उल्लेख दण्डी के दश-कुमार-चरित में भी पाया जाता है<sup>२</sup> । नवसाहसांक-चरित में नीलकण्ठ तथा दुर्गा का उल्लेख एक श्लोक में पाया जाता है<sup>३</sup> ।

मत्स्य-पुराण के अनुसार 'आवन्त्य' विषय में महाकाल-वन के समीप अन्ध-कासुर के साथ रुद्र-भगवान् का भयानक युद्ध हुआ । उसके द्वारा अति पीड़ित होने के कारण, भगवान् रुद्र ने यहाँ पर सप्त मातृकाओं तथा अन्य कई मातृकाओं—काली, महाकाली आदि—की सृष्टि की, और उनकी सहायता से अन्धक का दमन किया<sup>४</sup> । इससे यह संभव प्रतीत होता है कि महेश्वरी (काली, भवानी) के मन्दिर के अतिरिक्त अन्य देवियों के (मातृगणों के) भी मन्दिर महाकाल-वन में होंगे । नारदीय पुराण में निर्दिष्ट किया गया है कि महाकाल-वन में शीतला देवी का एक मन्दिर भी था<sup>५</sup> ।

महाकाल-लिङ्गः—पांच आदि लिङ्गःस्कन्द-पुराण (नर्मदा खण्ड) के 'माहिष्मती-माहात्म्य' के अनुसार, शिवजी द्वारा प्रशंसा किए हुए तथा वायु-पुराण में बताए हुए केवल पांच अति-पावन शिव-लिङ्ग हैं । यह पांच पवित्रतम लिङ्गों

१. मेघः—'नृत्तारम्भे हर पशुपतेराद्रनागाजिनेच्छां शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्ट-भक्तिर्भवान्या ॥'

२. द. कु. च., पूर्वपीठिका, उ. १:—“भानी मानसारः.....महाकालनिवासिनं कालीविलासिनं महेश्वरं समाराध्य ॥”

३. नवसाहसांकचरित, १.४३ (देखिए परिशिष्ट ४)

४. मत्स्य-पुराण, १७९.२ पश्चात्:—

‘आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भित्ताञ्जनचयोपमः ॥२॥.....’

तस्य युद्धं तदा घोरमभवत्सह शम्भुना ॥४॥

आवन्त्ये विषये घोरे महाकाल-वनं प्रति ।

तस्मिन्पुद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥५॥

५. ना. पु., २.७८.१२:—‘संपूज्य शीतलां देवीं नरः कालवने स्थिताम् । विस्फोटकभयं नैव कदाचित्तस्य जायते ॥’

की कल्पना अमरेश्वर मन्दिर (मान्धाता) के एक शिलालेख में भी पायी जाती है। महाकाल के लिङ्ग का नाम 'माहात्म्य' तथा शिलालेख दोनों में बतलाया गया है<sup>१</sup>।

चूँकि यह शिलालेख १२ वीं शताब्दी का है, पुराणों की यह कल्पना उ. पूर्व के समय की होना चाहिए। 'माहात्म्य' में स्थानों के नामों के साथ, लि. के भी नाम दिए हुए हैं। शिलालेख में केवल लिङ्गों के नाम दिए गए हैं। ऐसा भी दिखाई देता है कि उनमें अकार-मान्धाता के ही दो लिङ्ग (अकार तथा अमर) बताए गए हैं। स्पष्ट है कि पञ्चलिङ्गों की वास्तविक कल्पना विदित होने पर भी शिलालेख के कवि ने स्थानीय माहात्म्य बढ़ाने हेतु अकारेश्वर तथा अमरेश्वर बतलाए हैं।

**अष्ट गुह्य लिङ्गः**—मत्स्य पुराण तथा अग्नि पुराण में आठ पवित्रतम गुह्य लिङ्गों की दूसरी एक सूची पायी जाती है। इस सूची में (दोनों पुराणों में) कालेश या महाकाल को सम्मिलित किया गया है। अन्य लिङ्गों के नामों में कुछ समानता है, और हर एक सूची में कुछ विशेष दिखाई देते हैं<sup>२</sup>। स्यातनाम धाराधीश भोजराज ने इन अष्ट शिवलिङ्गों के स्थानों पर मन्दिर बनवाए थे, ऐसा परमार अभिलेखों में पाया जाता है<sup>३</sup>। इनमें और उपर्युक्त दोनों सूचियों के नामों में फरक है; किन्तु सम्भव है कि उनके नाम, या उनके स्थानों के नाम एक से अधिक हों।

**द्वादश ज्योतिर्लिङ्गः**—शिव-पुराण में द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की एक सूची है; उसमें भी महाकाल-लिङ्ग की गणना की गई है। उसमें यह भी लिखा हुआ है कि महाकाल की पूजा करने पर अकाल-मृत्यु से रक्षा होती है<sup>४</sup>।

१. परिशिष्ट 'ब'।

२. परिशिष्ट 'स' (१), (२)।

३. वही (३)।

४. परिशिष्ट 'द' (२)।



**वैष्णवों की पुण्य-नगरी:**—उपर्युक्त जानकारी से यह स्पष्ट होगा कि जिस प्रकार महाकाल-वन शैव सांप्रदाय के लिए अति-पवित्र तीर्थ-स्थान है उसी प्रकार उज्जयिनी भी वैष्णवों के लिए एक पावन तीर्थ-स्थान है ।

ब्रह्म-पुराण में विष्णु को उज्जयिनी का प्रमुख देवता बताया गया है<sup>१</sup> । उसी पुराण में अन्यत्र ऐसा बताया गया है कि भगवान् विष्णु यहाँ 'गोविन्द-स्वामी' नाम से साक्षात् वास करते हैं; एवं उनके समीप ही महाकाल भी स्थित है<sup>२</sup> । सम्भवतः महाकाल-वन (या महाकाल-श्मशान) एवं उज्जयिनी ये दोनों स्थान पवित्रतम माने गए थे—एक शैवों के लिए तथा दूसरा वैष्णवों के लिए । और दोनों दोनों के लिए भी; क्योंकि हरि-हरों में भेद मानना महत्पाप है ।

भारत में अयोध्या, मथुरा आदि सात अति पवित्र, अतः मोक्षदायिनी नगरियाँ हैं, यह सत्र धार्मिक हिन्दुओं की मान्यता है<sup>३</sup> । उनमें 'अवन्तिका' सम्मिलित है । बृहद्धर्म-पुराण में इनके सम्बन्ध में अंशतः गलत धारणा पायी जाती है । 'अवन्ती' समुद्र के तीर पर होने का उसमें लिखा गया है, तथा द्वारावती (द्वारका) समुद्र के मध्य में । 'माया' (या मायापुरी) हरिद्वार के समीप होते हुए भी वह कामरूप (आसाम का एक भाग) में होने का लिखा गया है<sup>४</sup> ।

सही रूप में ये सब वैष्णवों के लिए अति पवित्र स्थान थे ऐसा दिखाई देता है । श्रद्धा रखनेवाले हर एक वैष्णव के लिए उज्जयिनी अन्य छः नगरियों के साथ

१. ब्रह्म-पु. २२७.८—'अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता । तत्रास्ते भगवान् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

२. वहीं, ४३.६६ पश्चात्:—'महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः ।.... आस्ते तत्रैव भगवान् देवदेवो जनार्दनः । गोविन्दस्वामिनामासौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरिः ॥'

३. परिशिष्ट 'इ' (२) । यहाँ विष्णु कांची अभिप्रेत है ।

४. परिशिष्ट 'इ' (१) ।

मोक्ष-दायिनी है<sup>१</sup> । वैष्णवों की मान्यता है कि वे तीर्थ-स्थान भगवान् विष्णु के अलग-अलग अंगों से सम्बन्धित हैं; किन्तु अवन्तिका यह साक्षात् विष्णु-पद ही है । ध्यान में रहे कि 'विष्णु-पद' से त्रिभुवन-पावनी गङ्गाजी का उद्गम हुआ है<sup>२</sup> ।

हरिवंश ब्रह्म-पुराण, भागवत-पुराण आदि ग्रन्थों के अनुसार कृष्णावतार में स्वयं भगवान् विष्णु, अवन्ती के निवासी सान्दीपनि काश्य के पास, उनके शिष्य बनने हेतु आए। एवं उनके पास शस्त्रास्त्र तथा शास्त्रार्थ का अध्ययन किया<sup>३</sup> । अर्थात्, उन ग्रन्थों के अनुसार विष्णु-कृष्ण के साक्षात् निवास से अवन्ती नगरी पुनीत हो चुकी है ।

दुर्गा-नारायणी अर्थात् तारा :—मन्त्र महोदधि के अनुसार अयोध्या, मथुरा, काशी, काञ्ची तथा अवन्ती ये छः स्थान तारा देवी के अंगों के इष्टदायी न्यास-स्थान हैं<sup>४</sup> । अन्य ग्रन्थों में ऐसी मान्यता दिखाई देती है कि दुर्गा-देवी के सैकड़ों इष्ट नामों में अयोध्या, मथुरा आदि सातों मोक्षदायिका नगरियों के नाम भी सम्मिलित हैं<sup>५</sup> ।

१. परिशिष्ट 'इ' (३) ।

२. ऊपर, पृ. २ ।

३. परिशिष्ट 'फ' (१) ।

४. परिशिष्ट 'ग' (१) ।

५. परिशिष्ट 'ग' (२) ।



(२०)

उज्जयिनी

परिशिष्ट : 'व'

पञ्च लिङ्ग

१. अमरेश्वर मन्दिर, मान्धाता ( जिला खंडवा ) में प्राप्त शिलालेख ( हलायुध-स्तोत्र का परिशिष्ट ) :—

‘अविमुक्तश्च केदार ओङ्कारश्चामरस्तथा ।

पञ्चमं (मस्) तु महाकालः पञ्च लिङ्गाः प्रकीर्तये ॥’

(ए. इ., ग्रन्थ २५, पृ. १८५ पश्चात्)

२. स्कन्द-पुराण, नर्मदा-खण्ड, माहिष्मती-माहात्म्य :—

“तत्र वायु-पुराणोक्ता पुरः पञ्चैव कीर्तिताः ॥

पुरश्च पञ्च सामान्याः शम्भुना कीर्तिताः पुरा ।

प्रभासश्च कुरुक्षेत्रं तथा मायापुरी शुभा ॥

अवन्ती च पुरी रम्या, तथा माहेश्वरं पुरम् ।

लिङ्गानां चात्र पञ्चैव प्रभासे शशिभूषणम् ॥

कुरुक्षेत्रे तथा स्थाणुर्मर्यापुर्यां मनोहरम् ॥

अवन्त्यां च महाकालं तत्र माहेश्वरे पुरे ।

माहेश्वरमिति ख्यातं विद्धि लिङ्गान्यनुक्रमात् ॥

३. देवी-भागवत, पञ्च शिव-स्थानों के सम्बन्ध में :—

काशीपुरी च केदारो महाकालं च नासिकम् ।

त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पञ्च द्वीपा इमे भुवि ॥

परिशिष्ट : 'स'

गुह्य अष्ट लिङ्ग

१. आग्नेय पुराण ( गया-माहात्म्य ) ११६.२३-२४ :—

‘सोमनाथं च कालेशं केदारं प्रपितामहम् ॥२३॥

सिद्धेश्वरं च रुद्रेशं रामेशं ब्रह्मकेशवम् ।

अष्ट लिङ्गानि गुह्यानि पूजयित्वा तु सर्वभाक् ॥२४॥'

२. मत्स्य पुराण, १८१.२५.२६ :—

'वस्त्रप्रदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम् ।

गोकर्णं रुद्रकर्णं च सुवर्णाक्षं तथैव च ॥२५॥

अपरं च महाकालं तथा कायावरोहणम् ।

एतानि हि पवित्राणि सान्निध्याद्धि मम प्रिये ॥२६॥'

३. परमार-शिलालेख :—

'केदार-रामेश्वर-सोमनाथ-

शुण्डीर-कालानल-रुद्र-सत्कम् ।'

५११

परिशिष्ट : 'द'

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग

१. शिवपुराण, ज्ञानसंहिता, ३८ :—

'सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।

उज्जयिन्यां महाकालं डाकिन्यां भीमशङ्करम् ॥

परलयां ( चिता-भूमौ ) वैद्यनाथं च ओङ्कारममरेश्वरम् ( रे ) ।

सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।

हिमालये तु केदारं घृणेशं तु शिवालये ॥

एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

जन्मान्तरकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥'

(जः बाँ. ब्रँ. राँ. ए. सो. ग्रन्थ १०, पृ. ४५, बृहत्स्तोत्र-रत्नाकर,  
स्तोत्र ६१) .



२. बृहत्स्तोत्र-रत्नाकर, स्तोत्र ४६:२३ :—

“अवन्तिकायां विहितावतार

भक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।

अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं

वन्दे महाकालमहं सुरेशम् ॥३॥....

ज्योतिर्मयं द्वादशलिङ्गकानां

शिवात्मनां प्रोक्तमिदं प्रियेण ।

स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या

फलं तदालोचनजं भजेत् ॥१३॥”

परिशिष्ट ‘ई’

मोक्षदायिनी पुरी

१. बृहद्धर्मपुराण ५४.५-१२ :—

‘हिमालयाच्छैलराजाद्गङ्गासागरसङ्गमम् ।

देशः परमपुण्योऽसौ यत्परो नैव वर्तते ॥५॥

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।

पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥६॥

अयोध्या रामनगरी, मथुरा कृष्णपालिता ।

माया च कामरूपाख्या, काशी शिवपुरी च भूः ॥७॥

शिवकाञ्ची विष्णुकाञ्ची काञ्चीयुग्मं च संमतम् ।

अवन्ती च समुद्रस्य तीरे श्रीपुरुषोत्तमः ॥८॥

द्वारावती समुद्रस्य मध्ये कृष्णकृता पुरी ।

एतास्तु पृथिवीमध्ये न गण्यन्ते कदाचन ॥९॥

....अवन्तिका पुरी दिव्या हरेः पद्मोपरि स्थिता ॥१२॥’

२. नारद-पुराण, १६.११४ :—

‘अयोध्या मथुरा माया.....मोक्षदायिकाः ॥’

३. विष्णोः पादमवन्तिकः गुणवर्ति मध्ये च काञ्चीपुरीं  
नाभौ द्वारवतीं पठन्ति हृदये मायापुरीं योगिनः ।  
श्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासाग्रवाराणसी—  
मेतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरीं मस्तकम् ॥'

### परिशिष्ट 'फ' काश्य सान्दीपनि

१. हरिवंश, ३३ ३ पश्चात् :—  
'कस्यचिदथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ ।  
गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ॥  
धनुर्वेद-चिकीर्षार्थमुभौ तावाभिजग्मतुः ।'  
२. भागवत-पुराण, ( पूर्वार्ध ), १०.४५.३ पश्चात् :—  
'अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।  
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥'  
३. ब्रह्म-पुराण, १६४.१६ पश्चात् :—  
ततः सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ।  
अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेव-जनार्दनौ ॥'  
४. विष्णु-पुराण, ५.२१.१९ पश्चात् ।

### परिशिष्ट 'ग' देवी-पीठ

१. मन्त्रमहोदधि, ४.३१ पश्चात् :—  
'श्रुवोर्वाराणसीपीठं टवर्गाद्यं समाहितः ॥  
तवर्गपूर्विकां न्यसेदवन्तीं नयनद्वये ।  
पवर्ग-पूर्वकं मायापुरीपीठं मुखे न्यसेत् ।



कण्ठे तु मथुरापीठं यवर्गाद्यं प्रविन्यसेत् ।  
अयोध्यापीठकं नाभौ शवर्गादिकमुत्तमम् ॥  
कटयोः काञ्चीपुरीपीठं दशमं तु प्रविन्यसेत् ।  
षोढा न्यासास्तु तारायाः प्रोक्तास्त इष्टदायकाः ॥'

२. बृहद्धर्म-पुराण, ५० ६९ :—

'अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।  
द्वारका ज्वलदग्निश्च केवला केवलत्वरा ॥'  
(दुर्गा के नामों में)

आहुति : पञ्चमी

## पौराणिक इतिहास तथा आदिम जातियाँ

बुद्ध-पूर्वकाल एक दृष्टि से पौराणिक काल कहा जा सकता है। पुराणों में उस काल विषयक जो घटनाएँ बतलायी हैं, वे सम्भवतः अनुश्रुतियों के आधार पर ही बतलायी होंगी। साथ-साथ एक विशिष्ट पद्धति भी अपनायी गयी जिसको भारत के बाहर भी कई देशों ने अपनाया था<sup>१</sup>। इस पद्धति ने पौराणिक इतिहास को जीवित तथा चैतन्य पूर्ण कर दिया। साथ-साथ भिन्न-भिन्न जातियों के,—उनके आपसी साधर्म्य, रहन-सहन आदि के आधार पर—गुट बना दिए।

ऋग्वेद-संहिता में यदु, तुर्वश, द्रुह्य, अनु एवं पुरु ( पूरु ) जातियों के नाम एक ऋचा में ग्रथित हैं। उपर्युक्त पद्धति के अनुसार पुराणों ने इन्हीं नामों के आदि पुरुष बतलाए; एवं उनसे इन जातियों की, अथवा इनसे सम्बन्धित अन्य जातियों की उत्पत्ति होने का निर्दिष्ट किया है।

इसी पद्धति के अनुसार, मालवा में तथा आसपास रहनेवाली प्रागैतिहासिक जातियाँ भी पुराणों में 'अवन्ति', तालजङ्घ', 'वीतिहोत्र' आदि जैसे पुरुषों के नामों के साथ निर्दिष्ट की गई है<sup>२</sup>।

ये सब जातियाँ कैसे निर्माण हुई, इस विषय में पुराणों के रचयिताओं ने कुछ कल्पनाएँ भी की। अथवा, उनकी उस विषयक कुछ धारणाएँ बनी। उनके अनुसार पहले उन जातियों के नामों के कुछ आदिम पुरुष रहे; और बाद में उनसे उन्हीं या सदृश नामों की जातियाँ उत्पन्न हुई।

पुराणों के रचयिताओं को यह भी विदित था कि कुछ जमातियाँ एक दूसरे से संलग्न प्रदेश में रहती हैं। अन्य कुछ जमातियाँ उनसे बहुत दूरी पर फैली

१. देखिये लेखक की पुस्तक 'दि मदर गाँडेस्' (१९४३) पृ. २३२.

२. देखिए नीचे पृ. २७ पदटीप १.



हुई है। कुछ आपस में अच्छे सम्बन्ध रखती हैं। अन्य कुछ में वैरभाव हमेशा का जैसा बना रहा है। कुछ में वंशपरंपरागत सम्बन्ध दिखाई देता है। कुछ की चाल-चलन, रीति-रिवाज, रहन-सहन एक सी दिखती है। अन्य कुछ की भिन्न-भिन्न है।

उपरोक्त पुरुषों के माध्यम से पौराणिक वंशावलियाँ बनाते समय इन्हीं वस्तु-स्थितियों पर पुराण-लेखकों को ध्यान देना पड़ा। पड़ोसी जनपदों में बन्धुत्व रहा, एवं उनके उसी नाम के पूर्वज सगे भाई माने गए। इनमें से कुछ प्रमुख जनपदों को पितृत्व, पितामहत्व आदि का स्तर दिया गया। इस प्रकार सब प्रमुख क्षत्रिय जातियों का एक दूसरे से रिश्ता माना गया। अर्थात्, सामाजिक विचार में भी, उनके राजाओं के आवाह-विवाहादि में कोई दिक्कत नहीं रही।

इस प्रकार की वंशावलियाँ महाभारत, रामायण, व हरिवंश में तथा मत्स्य, वायु, विष्णु, मार्कण्डेय, अग्नि, पद्म, ब्रह्म आदि प्रमुख पुराण-ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं। इनमें से किसी की भी वंशावली दूसरे से पूर्णतया मिलती नहीं है। तथापि इन सबका मूल स्रोत एक ही होना प्रतीत होता है। किसी किसी में कुछ त्रुटियाँ एवं परिवर्तन मिलते हैं। फिर भी इनका आपसी सादृश्य दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता।

इनके अनुसार हैहय वंश में सहस्रार्जुन नामक एक पराक्रमी राजा हुआ, जिसने माहिष्मती को अपनी राजधानी बनाया। उसके सौ पुत्र थे, जिनमें शूरसेन, शूर, वृषण, मधु एवं जयध्वज प्रमुख थे। जयध्वज अवन्ति का राजा बताया गया है। शूरसेन से मथुरा के आस-पास की शूरसेन नामक जाति; शूर से, सौराष्ट्र की शूर या शौरि नामक जाति<sup>१</sup>; वृषण से वृष्णि, जो काठियावाड़ में रहती थी तथा मधु से माधव आदि जातियाँ उत्पन्न हुई। जयध्वज से तालजङ्घ उत्पन्न हुआ। तालजङ्घ से पांच जातियों की उत्पत्ति हुई, जिनके नाम थे वीति-

१. देखिए त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित, ८.२-५.

होत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डिकेर एवं तालजङ्घ<sup>१</sup> । स्पष्ट है कि ये सब जातियाँ हैहयों से सम्बन्धित एवं एक दूसरे के समीप रहनेवाली मानी जाती थीं एवं इनमें हैहय व तालजङ्घ प्रमुख थीं । इन दोनों का आपस में निकट का सम्बन्ध भी माना गया था ।

महाभारत तथा पुराण ग्रंथों में अन्यत्र भी जातियों की एक सूची पायी जाती है । उसमें संभवतः समीप रहनेवाली जातियाँ बतलाई गई हैं । उसके अनुसार इस प्रदेश में 'अनूप', 'तुण्डिकेर', 'वीतिहोत्र', एवं 'अवन्ति' नामक जातियाँ (या जनपद) एक दूसरे के सांनिध्य में रहती थी, एवं सम्बन्धित थीं । अनूप निमाड़ में रहते थे । तुण्डिकेर उनके पूर्व में तथा त्रिपुरी (तेवर) के

१. मत्स्य ४३.४० पश्चात्; वायु. ९४.४८ पश्चात्;  
पद्म ५.१२.१४४ पश्चात्; ब्रह्म २३.१९९ पश्चात्;  
हरिवंश, ३३.४८ पश्चात्; अग्नि. २७५.८ पश्चात् आदि :—

“तस्य पुत्रशतं त्वासीत्पञ्च तत्र महारथाः ॥

शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुरेव च ।

जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।

तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥

तेषां पञ्च कुलान्येव हैहयानां महात्मनाम् ।

वीतिहोत्राश्च संजाता भोजाश्चावन्त्यस्तथा ।

तुण्डिकेराश्च विख्याता तालजङ्घाश्च कीर्तिताः ॥

विष्णु. ४.१० :—तस्य पुत्रशतप्रधाना पञ्च पुत्रा बभूवुः । शूर-शूरसेन-  
वृषण-मधु-जयध्वज-संज्ञाः । जयध्वजात्तालजङ्घः पुत्रोऽभवत् । तालजङ्घस्य  
तालजङ्घाख्य-पुत्रशतमासीद्येषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रः..... ।’

२. उपरोक्त मत्स्यादि पुराणों की (संशोधित) पङ्क्ति :—

‘अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्त्यः ।’



पश्चिम में नर्मदा नदी के कछार में—तुण्डखेरा ( जिला दमोह ) के आसपास के प्रदेश में—रहते थे । वीतिहोत्रों का ठीक-ठीक पता नहीं लगता । वे वेदादि ग्रन्थों में वैतहव्य या वीतहव्य कहलाते हैं । यहां एक प्रश्न विचारार्थ है । क्या यही लोग बाद में ऋषिक नाम से अधिक ख्यात हुए ? महाभारत, मत्स्यादि पुराण ग्रन्थों में जहाँ एक नाम पाया जाता है, वहाँ दूसरा अनुल्लेख रहता है । असीर-गढ़—जो अनुश्रुतियों के अनुसार आसा अहीर से सम्बद्ध है—संभवतः ऋषिकों का प्रमुख दुर्ग रहा । सम्भवतः इसी के आसपास वीतिहोत्र रहते थे । यह ऋषिकों का प्रदेश अश्मक-देश<sup>१</sup> से बिलकुल संलग्न है ।

**मालवा की आदिम जातियाँ :**—जैसी की कथा-सरित्-सागर आदि ग्रन्थों की मान्यता है, भिल्ल-पुलिन्दों की आवादी प्रमुखतः लाटदेश, अवन्ति, अश्मक, आटविक आदि राज्यों<sup>२</sup> में रही । प्रो. सित्वाँ लेवी ने दिखला दिया है कि तोलेमी के भूवर्णन में भी पुलिन्दों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की स्थिति दृष्टि गोचर होती है । मालवा, गुजरात का कुछ प्रदेश, बुन्देल-खण्ड का दक्षिण भाग, सतपुड़ा-विन्ध्य की पहाड़ियों का पश्चिमी भाग आदि में उनकी आवादी दिखायी देती है । तोलेमी में ऐसी ही स्थिति है ।

इनसे सम्बन्धित कोरकू, कोल ( कोल्ल ), गोल्ल या गोलक ( गोला ), गोंड, खोंड आदि जमातियाँ हैं, जो कि विन्ध्याचल तथा सतपुड़ा की पहाड़ियों के पूर्वार्ध में बिखरी हुई दिखाई देती हैं । कोल्ल, गोल्ल, गोंड, खोंड आदि भाषाशास्त्र दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित हैं<sup>३</sup> । संभवतः किसी मूल नाम के ये प्रादेशिक भेद मात्र हैं ।

पुराणकारों की भी यह मान्यता रही है कि भिल्ल समूह कोल्ल समूह से सम्बन्धित है । कॅ. ल्युअड् द्वारा किसी पुराण से उद्धृत एक श्लोक के अनुसार

१. नासिक-पैठण के आसपास का प्रदेश ।

२. केन नदी के आसपास का प्रदेश ।

३. देखिए काव्यशास्त्र का नियम :—‘रलयोर्डलयोश्चैव’

मुपहन्ता ( बंगाल-विहार के मुपाहर ), कोल्ल एवं भिल्ल यह तीनों भाई-भाई थे<sup>१</sup> । स्पष्ट है कि पुराण-कर्ताओं को इनके रहन-सहन, वांशिक-स्वरूप ( racial features ) आदि का साधर्म्य विदित था । कई स्मृति-ग्रन्थों में “पितामह” का एक वचन बार-बार उद्धृत किया गया है, जिसके अनुसार भिल्ल एवं गोलक १८ प्रकृतियों के<sup>२</sup> अन्तर्गत हैं । यह भी विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि बंगाल व विहार के मुपाहरों में एवं मालवा व राजस्थान के भिल्लों (भीलों) में “सोपान-यज्ञ” ( Ladder Sacrifice ) की एक असाधारण प्रथा थी<sup>३</sup> ।

१. ‘प्रथमं मुपहन्तारं द्वितीयं कोल्लमेव च ।

तृतीयं भिल्ल-संख्या(ज्ञा)तमित्येते समुदाहताः ॥’

—कॅप्टन सी. ई. ल्युअर्ड, जंगल ट्राइब्ज् ऑफ मालवा, पृ. १८.

२. इन्हें अठारह हीन जातियाँ भी कहा गया है ।

३. क्रुक्, ट्राइब्ज् अँड कास्ट्स् ऑफ सेन्ट्रल प्रॉविन्सेस् ।



## आहुति : षष्ठी बुद्ध-पूर्व राज्यस्थिति

बुद्ध के पूर्व अवन्ति देश की ही नहीं, बल्कि भारत की राजनैतिक स्थिति क्या होगी, यह निश्चय-पूर्वक नहीं बताया जा सकता। इस विषय पर प्राचीन साहित्य में जो कुछ पाया जाता है, वह केवल अङ्गुलि-निर्देश के रूप में ही है। फिर भी पुरातत्वीय उत्खनन से प्राप्त अवशेषों का साहित्यिक जानकारी से उचित सामञ्जस्य करने पर कुछ ऐतिहासिक सत्य अवश्य प्राप्त होते हैं।

**गणराज्य :—**प्रागैतिहासिक भारत में लोह-युग<sup>१</sup> का विकास प्रारम्भ में छोटे-छोटे गणराज्यों के विकास के साथ ही हुआ। ऐसे गणराज्य कई गण-राजाओं के अधीन होते थे। इनमें से कुछ गणराज्य औरों की अपेक्षा अधिक-बढ़ने लगे एवं सामर्थ्यशाली होने लगे। साथ-साथ कुछ गणराजाओं के सामर्थ्य में अन्यो की अपेक्षा अधिक वृद्धि होने लगी। छोटे-छोटे गाँवों में गाँव के मुखियाँ, 'ग्रामणी' (यानी 'पटेल'), दिखाई देने लगते हैं। सामर्थ्यशाली गणराजा ऐसे ग्रामणियों के माध्यम से आसपास के गाँवों को भी अपने अधिकार में लाने लगे। लोह-युग के संस्कृति की परिणति का यह एक राजनैतिक परिपाक था। बुद्ध-पूर्वकाल में इसी प्रकार के गणराज्य, गणराजे, ग्रामणी आदि सर्वत्र दिखाई देते थे। अवन्ति-देश में भी यही परिस्थिति रही होगी।

**जनपद :—**ऐसे गणराजाओं के गुट प्रायः देश-विशेष या परिस्थिति के अनुसार इकट्ठे होते थे, या किसी सामर्थ्यवान् राजा के द्वारा इकट्ठे लाए जाते थे। इनके अधीन सारा प्रदेश 'जनपद' बन जाता था। प्राचीनसंस्कृत एवं पाली साहित्य में ऐसे कई छोटे-मोटे जनपद दिखाई देते हैं। कालान्तर में छोटे-छोटे जनपद किसी बड़े जनपद में अन्तर्भूत होते हैं। यह स्थिति 'अपर-आकर' (पश्चिमी आकर, जो कि उज्जयिनी से बहुत समीप था) के सम्बन्ध में भी हुई। कालान्तर में वह भी अवन्ति-जनपद में अन्तर्भूत हुआ।

इन सैंकड़ों 'जनपदों' में—यानी 'जातियों' में—बुद्ध भगवान् के समय के कुछ पहले सोलह जनपद प्रमुख थे। अतः वे “पोडस महाजनपद” नाम से ख्यात हुए। बड़ी मछली छोटी-छोटी मछलियों को खा लेती है, यह ‘मात्स्य न्याय’ भी सदैव काम करता रहा है। इन जनपदों के सम्बन्ध में भी यह न्याय सक्रिय रहा।

लोह-युग का भारत में राजनैतिक विकास भी इसी आधार पर होता गया। कालान्तर में जब किसी एक महाजनपद ने औरों पर आक्रमण करके प्रभुसत्ता पायी, तब अन्य राजा उसके राजा को अपना मुखिया मानने लगे। उसका उन पर आधिपत्य या साम्राज्य बन गया। इस प्रकार बुद्ध के समय में चार प्रमुख राजा थे, जो कोसल, मगध, वत्स एवं अवन्ति देशों के अधिपति थे। इन्होंने पहले निकट में स्थित, क्रमशः काशि, अंग, चेदि आदि जनपद, या उनके राजे जीत लिए। अवन्ति के सम्बन्ध में परिस्थिति कुछ अंशों में भिन्न रही। अवन्ति जनपद अधिक सामर्थ्यवान् नहीं था। उसके निकट में स्थित वीतिहोत्र जनपद के गणराजाओं ने ही पहले अवन्ति जीत ली, एवं वे अवन्ति से ही वीतिहोत्र, अवन्ति तथा सम्भवतः अनूप जनपदों पर राज्य करने लगे। इस विषयक निम्नलिखित प्रमाण उपलब्ध हैं :—

**वीतिहोत्रों का राज्य :**—जैसा कि पुराणों से ज्ञात होता है, पहले संभवतः वीतिहोत्र एवं अवन्ति निकट में स्थित दो जातियाँ थी<sup>१</sup>। तत्पश्चात् वीतिहोत्रों के राजाओं का अवन्ति देश पर राज्य स्थापित हुआ। जिस काल-खण्ड में मगध में बृहद्रथ वंशीय राजा राज्य कर रहे थे, उसी खण्ड काल में—प्रद्योत के पूर्व-अवन्ति देश में वीतिहोत्र राजा भी राज्य कर रहे थे<sup>२</sup>। इस काल-खण्ड में

१. देखिए ऊपर, पृ. २७, पद-टीप २.

२. पुराणों में ( पार्जितर, डा. क. ए., के अनुसार ) :—

“द्वावैशच्च नृपा ह्योते भवितारो बृहद्रथाः ।.....”

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु ।

पुणिकः स्वामिनं हत्वा स्वं पुत्रमभिषेक्षति ।”



वृहद्रथ वंश के कुल वाईस राजा हुए । इसी काल में वीतिहोत्रों के बीस तथा अश्मकों के पच्चीस राजा हुए<sup>१</sup> । इस प्रकार, पुराणों के अनुसार प्रद्योत-पूर्व यानी बुद्ध-पूर्व काल में मगध, शूरसेन आदि की भाँति अवन्ति और अश्मक जनपदों में भी राजवंश राज्य कर रहे थे ।

**वीतिहोत्र=वीतहव्य :**—‘वीति-होत्र’ तथा ‘वीत-हव्य’ समानार्थक शब्द हैं । महाभारत में ‘वीत-हव्य’ राजा का नाम पाया जाता है । वृहद्रथों के ‘मूल पुरुष’ ( आदि राजा, जो इसी नाम से ख्यात है ) महाभारत में उल्लिखित है । वीति-होत्रों के बीस राजा हुए; अर्थात् वे बहुत काल राज्य कर रहे थे । महाभारत आदि ग्रन्थों में उनके उल्लेख प्राप्त होना चाहिए । ‘वीति-होत्र’ राजाओं की जगह पर सम्भवतः वे ‘वीतहव्य’ राजाओं के सम्बन्ध में उपलब्ध है । डॉ. पार्जिटर ने<sup>२</sup> भी वीतिहोत्र एवं वीतहव्य एक ही राजा के नाम मान लिए हैं ।

महाभारत में एक स्थान पर लिखा है कि एक बार वीतहव्य नामक राजा अपने पुत्रों के साथ भृगु के आश्रम गया । उसके पुत्रों के मारे जाने पर, राजा को उस आश्रम से भागना पड़ा । अन्त में उसको भृगु के शरण में ही आना पड़ा<sup>३</sup> । भृगुओं के साथ वीत-हव्य राजा का उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है<sup>४</sup> । ‘वैतहव्य’—यानी वीतहव्यों की जाति—के उल्लेख अथर्ववेद में भी पाये जाते हैं<sup>५</sup> ।

१. पार्जिटर डा. क. ए., पृ. २३ पश्चात् :—

“एतैः साद्धं भविष्यन्ति तावत्कालं नृपाः परे ।

....कलिङ्गाश्चैव द्वाविंशदशमकाः पञ्चविंशतिः ।

....शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।

एते सर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः ॥

२. पार्जिटर, ए. इ. हि. ट्रै., पृ. १५५; २६७, तथा वहीं पदटीप ७.

३. म. भा. :—‘हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ । प्राद्रवन्तगरं हित्वा भृगो-  
राश्रममप्युत ॥ ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नराधिपः ।’

४. ऋग्वेद, ५.१५. २-३.

५. अ. वे., ५.१९ १:—“भृगुं हिसित्वा सूञ्जया वैतहव्याःपराभवन् ॥”

उन उल्लेखों के अनुसार भृगुओं की हत्या करने पर वीतहव्य सृञ्जय परा-  
भूत हुए ।

महाभारत में अन्यत्र बतलाया गया है कि वीतहव्य हैहयों एवं तालजङ्घों का राजा था<sup>१</sup> । भृगुओं की हत्या करने विषयक दोषारोप कभी-कभी वीतहव्य के सम्बन्ध में, कभी-कभी हैहयों के सम्बन्ध में तथा अन्य समयों पर तालजङ्घों के सम्बन्ध में किया गया है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बतलाया गया है कि भृगुओं को पीड़ित करने पर तालजङ्घ अपने बन्धुओं के साथ नष्ट हुआ<sup>२</sup> । हरिवंश में ऐसा भी लिखा हुआ है कि एक बार हैहय एवं तालजङ्घों ने अपने एक राजा को उसके अवामिक आचरण से देश से बाहर निकाल दिया<sup>३</sup> ।

संक्षेप में, वीतहव्यों या वीतहव्यों का वंश बहुत प्राचीन समय से राज्य कर रहा था; एवं ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत आदि ग्रन्थों में उनके सम्बन्ध में अनुश्रुतियाँ पायी जाती हैं । यह भी स्पष्ट है कि इनके आधिपत्य में अन्य कई जातियाँ, तालजङ्घ, हैहय आदि रही थी ।

महाजनपद अवन्ति :—वीतिहोत्रों की अवन्ति निःसन्देह एक सामर्थ्यशाली एवं विशाल राज्य था । बुद्ध-पूर्वकाल में वह 'महाजनपद' अवश्य ही रहा होगा । चूँकि षोडश महाजनपदों में वह 'अश्मक' जनपद के साथ बार-बार बतलायी गयी है, बुद्ध-पूर्व काल में वीतिहोत्र राजाओं की अवन्ति संभवतः अश्मक देश तक

अ. वे., ५. १८.१० :—'ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वीतहव्यः पराभवन् ।'

यहाँ देखिये लेखक की पुस्तक 'दि मदर गार्डिस्' (१९४३), पृ.

१. डॉ. प्रधान, क्रोनॉलॉजी ऑफ इन्डिया, पृ. २४;

म. भा. (राय), १३-३०-४४:४५; हरिवंश, १४.१ पश्चात् ।

२. कौ. अ., १.६ :—'तालजङ्घश्च भृगुषु ।'

३. हरिवंश, १३.३१ :—'हैहयास्तान्नजङ्घाश्च निरलस्यन्ति स्म तं नृपम् ।'

देखिए विष्णु. ४.३.१६-१८; बृहन्तारदीय, ७.३० पश्चात् ।



बढ़ गयी होगी। यह तभी हो सकता है, जब कि अवन्ति नर्मदा नदी के दक्षिण को बढ़ जाय। यदि वीतहव्य ही ऋषिक होंगे, तभी उनका संयुक्त राज्य नर्मदा के दोनों तीरों पर रहेगा, एवं 'अवन्ति-दक्षिणापथ' को बौद्ध ग्रन्थ में प्राप्त उल्लेख साधार रहेगा। दूसरे किसी भी कालखण्ड में अवन्ति 'दाक्षिणापथ' में—यानी नर्मदा दक्षिण में—रही नहीं।

इतने विशाल राज्य को सम्हालने हेतु यह आवश्यक है कि उसकी राजधानी केन्द्र स्थान के समीप होवे। उन दिनों में आवाहगमन के साधनों की कमी के कारण, इसकी बहुत आवश्यकता थी। अतः किसी समय पर इस विशाल अवन्ति की राजधानी माहिष्मती में थी। नर्मदा के उत्तर में होते हुए भी यह शहर उस नदी के कछार में है। अवन्ति तथा वीतहव्य (? ऋषिक) इन दोनों जनपदों को यहाँ से सम्हाला जा सकता था। महागोविन्द सुत्त—जो कि बौद्ध ग्रन्थों के विद्वानों के मत में बुद्ध-पूर्व स्थिति बतलाता है—'माहिस्सती' को ही अवन्ति की राजधानी बतलाता है<sup>१</sup>।

१. दीघनिकाय, महागोविन्द-सुत्त, ३६ :—

“अस्सकानं च पोतनं । माहिस्सती अवन्तीनं.....॥”

डॉ. भांडारकर, का. ले. (१९१८), पृ. ५४, के अनुसार माहिष्मती दक्षिणापथ में थी। माहिष्मती या महेश्वर नर्मदा के उत्तर में स्थित है। फिर भी नर्मदा के दक्षिण में, महेश्वर के सामने थोड़ी दूर पर, प्राचीनतम माहिष्मती—जिसे अब नावदा तोली कहते हैं—इसमें इसी कालखण्ड के अवशेष पाये गये हैं। देखिये डॉ. सांकलिया, एक्स्कव्हेशन्स् अँट महेश्वर।

## आहुति : सप्तमी

## बुद्ध-पूर्व भौतिक संस्कृति

प्रद्योत वंश के पूर्व उज्जयिनी की भौतिक संस्कृति<sup>१</sup> किस प्रकार की थी, इस विषय पर प्रकाश आधुनिक उत्खनन-द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अब तक यहाँ किए गये उत्खननों द्वारा प्राप्त अवशेषों से केवल आंशिक एवं धुंधला-सा प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण पुरातत्त्व विभाग के जिन बड़े अफसरों के द्वारा यह उत्खनन कार्य कराया जाता है, वे उत्खनन-स्थान पर—समयाभाव के कारण—बहुत थोड़े काल ही रह पाते हैं। अन्य यह भी एक महत्व का कारण है कि इनका ध्यान केवल मृद्भाण्डों के प्रकारों पर रहता है, उनसे सम्बन्धित स्तरों पर नहीं। इन स्तरों में प्राप्त हर एक छोटे मोटे अवशेष की सर्वतोमुख जांच करने की आवश्यकता इन्हें अब तक प्रतीत नहीं हुई है। इनके द्वारा जो स्थूल तत्त्व पाये गये हैं, उनसे बुद्ध-पूर्व भौतिक संस्कृति की स्थिति निम्न-रूप दर्शायी जा सकती है।

प्रागैतिहासिक उज्जयिनी के उत्खनन से प्राप्त प्राचीनतम पुरातत्त्विक अवशेषों में, दो रंगीन चितकवरे<sup>२</sup> मृद्भाण्डों के खण्ड हैं, जो कि उज्जयिनी के प्राथमिक प्राकार में पाए गये<sup>३</sup>। उज्जयिनी के अन्य टीलों के उत्खनन में, प्राचीनतम स्तरों में, इसी प्रकार के और भी कुछ रं. चि., मृद्भाण्ड-खण्ड पाये गये<sup>४</sup>।

चूँकि उपर्युक्त दोनों खण्ड प्राकार की रचना के अन्तर्गत पाए गये हैं, इससे स्पष्ट है कि वे उसके पूर्व के समय के ही हैं। इस आदितम प्राकार का समय ई. पू. ५०० के करीब का होने का निर्धारित किया जा सकता है। अतः उक्त

१. Material culture.

२. Painted Grey Ware (P. G. रं. चि. मृद्भाण्ड Ware)

३. व्हीलर, अ. इ. अ. पा., पृ. १४२ पश्चात्।

४. बानर्जी, आ. ए. इ., पृ. ५ पश्चात्।



मृद्भाण्ड-खण्ड तत्पूर्व-कालीन संस्कृति के इनेगिने अवशेषों में से हैं। इस युग में लोहा अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं था।

रं. चि. मृद्भाण्ड-खण्ड (P. G. Ware) हरियाना, पूर्वी पंजाब, दिल्ली के उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग तथा राजस्थान में कई जगह उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कई स्थान महाभारत ग्रन्थ में भी ख्यात-नाम हुये। इस आधार पर भूतपूर्व एवं सद्यःकालीन पुरातत्त्वीय महानिदेशक—पद्मश्री अमलानन्द घोष तथा श्री बी. बी. लाल—इन दोनों विद्वानों के मत में उपर्युक्त सभी स्थानों पर उपलब्ध हुए रं. चि. मृद्भाण्ड उन स्थानों में आर्यों का प्रथम आगमन सूचित करते हैं<sup>१</sup>। मेरे मत में ऐसा समझने की कोई भी शास्त्रीय आवश्यकता नहीं है।

हर नये विशिष्ट मृद्भाण्ड के प्रकार का अर्थ नयी जातियों का आगमन सूचित करता है, ऐसी गलत धारणा भारत में पुरातत्त्व के कई अन्वेषकों के एवं अधिकारियों की हुई है, जो कि उनके लेखों से प्रमाणित किया जा सकता है। यह नये प्रकार किसी विशिष्ट संस्कृति से सम्बन्धित रहते हैं, एवं उस संस्कृति के स्वरूप में शास्त्रज्ञों को सहायता दे सकते हैं। वास्तविक रूप में यह केवल उस संस्कृति का एक विशिष्ट अंग होते हैं। इस अर्थ में वह किसी विशिष्ट संस्कृति का एक परिपाक, या सामाजिक आवश्यकता मानी जा सकती है।

उपर्युक्त रं. चि. मृद्भाण्डों के प्राप्ति-स्थानों में से कई स्थान ब्राह्मण-ग्रन्थों के रचना-काल में तथाकथित “आर्यों” के निवास से अवश्य पुनीत हुए थे<sup>२</sup>। वह उन्हें “यज्ञ-यंस्था” का विशाल आडम्बर रचाने के लिए अवश्य ही पर्याप्त समर्थ भी प्राप्त हुआ।

इससे यह स्पष्ट होगा कि उनका आगमन वहाँ उसके बहुत ही पूर्व हो चुका था। अधिक से अधिक यह माना जा सकता है कि रं. चि. मृद्भाण्ड उपर्युक्त ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना के समय पर ही बनने लगे। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि रं. चि. मृद्भाण्ड सम्भवतः उसी संस्कृति के प्रतीक

१. वहीं पृ. ४; लाल, क. फो., पृ. २४ पश्चात्।

२. लाल, वहीं; लाल, ऐ. इ. (१९५४-५५), पृ. १५१.

३. देखिये व्हीलर, आ. इ. पा., पृ. १४२ पश्चात्.

रूप हैं, जिसका दूसरा प्रतीक यज्ञादि विषयक कर्म-काण्ड है। आर्यों का भारत में आगमन निश्चित रूप से इन रं. चि. मृद्भाण्डों के आगमन के—या उत्पत्ति के—पहले ही हुआ।

यज्ञ-सम्बन्धित जनमेजय पारिक्षित विषयक कथाएँ, ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा महाभारत का प्रारंभिक भाग, इनमें किस प्रकार सामञ्जस्य स्थापित करती हैं; एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों की संस्कृति की भूमि एवं उनमें उल्लिखित प्रमुख शहर महाभारत कथा में क्यों महत्व पाते हैं, यह लेखक ने अन्यत्र दिखाया है<sup>१</sup>। संक्षेप में, महाभारत के बहुत पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई, यह भी उसमें स्पष्ट रूप दर्शाया है। इस स्थिति में केवल महाभारत की कथा के आधार पर—चूँकि महाभारत की कथा में निर्दिष्ट देश-विशेषों में एवं प्रमुख नगरों में रं. चि. मृद्भाण्ड पाए जाते हैं, इसलिए—उन मृद्भाण्डों को “आर्यों” के भारत में आगमन का प्रथम प्रतीक मानना असाधारण धृष्टता है।

रं. चि. मृद्भाण्डों का प्रयोग किसी विशिष्ट काल-खण्ड की ही विशेषता सर्वत्र रही होगी, यह भी निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकेगा। उसी प्रकार किसी भी प्रदेश में—उदाहरण के लिए अवन्ति-देश में—उसका आगमन “आर्यों” का आगमन सूचित करता है, ऐसा भी निश्चित रूप नहीं कहा जा सकेगा। वह केवल किसी विशिष्ट संस्कृति का द्योतक है। जैसा कि संभव है, यदि वह यज्ञ-संस्कृति का सूचक है, वीतिहोत्रों (या वीतहव्यों) के राज्य के साथ साथ वह यज्ञ-संस्कृति अवन्ति देश में आयी होगी<sup>२</sup>, एवं रं. चि. मृद्भाण्ड अवन्ति-देश में उसी संस्कृति की द्योतक होंगे।

१. देखिए प्रा. भा. सं., पृ. १२०-१२२.

२. ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में वीतिहोत्र अग्निवाचक शब्द है। (देखिये ऋ. १.८४.१८ २.२८.१; ३.२४.२.५.२६.३.८.३१.९ आदि। वेदिक इन्डेक्स भा. २, पृ. ३१६; वैदिक पदानुक्रमकोष, २.९३८; शब्दार्थ-चिन्तामणि ४.४०८; आदि)। महाभारत (सभापर्व, सहदेव दिग्विजय-पर्व), पुराण-ग्रन्थ आदि के अनुसार अग्निदेव उनकी राजधानी माहिष्मती का नगर-देवता था।



यज्ञ-संस्कृति के परिणाम-स्वरूप कई प्रकार के मृत्पात्रों की आवश्यकता होती थी। उपर्युक्त रं. चि. मृद्भाण्डों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के मृद्भाण्ड इस काल-खंड में बनाए गए। पुरातत्त्वीय भाषा-विशेष<sup>१</sup> में इसका मतलब मृद्भाण्डों<sup>२</sup> की बनावट, रंग-रूप आदि से होता है। फिर भी मृत्पात्रों<sup>३</sup> के आकार-प्रकार इन्हीं मृद्भाण्डों की विविध बनावटियों से साध्य होते हैं। इस प्रकार, किसी एक मृद्भाण्ड से, उपयुक्तता<sup>४</sup> के अनुसार, दस-बीस प्रकारों के छोटे-मोटे आकारों के कई बर्तन बन सकते हैं। मृद्भाण्डों के प्रकारों की वृद्धि से मृत्पात्रों की विविधता आँकी जा सकती है। उज्जयिनी में रं. चि. मृद्भाण्डों के साथ पाए गए मृद्भाण्डों में (१) कृष्ण व रक्त मृद्भाण्ड<sup>५</sup>, (२) कृष्णीकृत रक्त मृद्भाण्ड<sup>६</sup>, (३) अस्नात रक्त मृद्भाण्ड<sup>७</sup>, (४) कणान्वित मृद्भाण्ड<sup>८</sup> आदि को प्रमुख माना जा सकता है।

कृष्णीकृत रक्त मृद्भाण्ड पतला, मुलायम एवं सुन्दर<sup>९</sup> होता है। इसके थालियाँ एवं कटोरियाँ<sup>१०</sup> उज्जयिनी के उत्खनन में उपलब्ध हुई हैं। अहिच्छत्र (रामनगर, जिला बरेली) की खूदाई में भी इसी प्रकार की एक थाली रं. चि. मृद्भाण्डों के स्तर में ही प्राप्त हुई थी।

इनके अतिरिक्त, उज्जयिनी में इसी स्तर में चटाई वाले मृद्भाण्ड भी पाए गये हैं। ऐसे ही मृद्भाण्ड हस्तिनापुर के द्वितीय काल-खंड के अवशेषों में भी उपलब्ध हुए हैं। इन दो स्थानों में उक्त काल-खंडों में कीचड़ के बने मकानों (Mud-houses) के अवशेष भी पाये गये।

- 
- |                                                                                       |                       |
|---------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------|
| 1. Terminology.                                                                       | 2. Wares.             |
| 3. Pottery.                                                                           | 4. Utility.           |
| 5. Black and Red ware.                                                                |                       |
| 6. Black-slipped Red ware. : इसे Double-slipped ware. (द्विःस्नात-भाण्ड) भी कहते हैं। |                       |
| 7. Unslipped Red ware.                                                                | 8. Granulated ware.   |
| 9. Thin, soft and fine.                                                               | 10. Dishes and bowls. |

इस प्रकार के चटाई छाप वाले मृद्भाण्ड एवं कीचड़ के बनाये हुए मकान केवल प्राचीन जातियों में ही नहीं, बल्कि अर्वाचीन पिछड़ी हुई जातियों में भी साथ साथ पाए जाते हैं। मोहनजो-दड़ो, हाड़प्पा, चानहु-दड़ो आदि कांस्य-युगीन नगरों में पक्के एवं पक्की ईंटों के बनाये हुए मकान मिले हैं। प्राथमिक लोहयुग में भी पक्के मकान अवश्य प्रचलित थे।

अतः उज्जैन के आदिम स्तरों में कीचड़ के बनाए हुये मकानों की उपलब्धि का तात्पर्य यही है कि उत्खनन करनेवाले प्रागैतिहासिक उज्जयिनी के प्रगत ( या पुरोभूत ) मोहल्लों में उत्खनन नहीं कर पाये थे। वे केवल किसी पिछड़े हुए मोहल्ले में ही उत्खनन करते रहे।

उज्जयिनी में रं. चि. मृद्भाण्डों के काल-खंड में लोह-निर्मित शर-मुख<sup>१</sup>, भल्ल-मुख<sup>२</sup>, वितस्तिका ( विछिया )<sup>३</sup>, छुरिका ( छुरी )<sup>४</sup> आदि शस्त्रास्त्र एवं उपकरणों का निर्माण हुआ, यह उनके स्तरों की उपलब्धियों से स्पष्ट हो जाता है। उन्हीं स्तरों में यह प्रथम पायी गई।

उज्जयिनी के आदिम प्राकार की भीतियों में रं. चि. मृद्भाण्डों के खंडों के साथ, लोहे की एक सब्बल<sup>५</sup> एवं गैती<sup>६</sup> भी पायी गयी है। उस जमाने की राजकीय सत्ता इसी प्रकार के शस्त्रास्त्रों एवं उपकरणों पर अधिष्ठित रही इन्हीं उपकरणों के आधार पर आधारित थी।

ऐसे मृद्भाण्ड और उनके साथ के उपकरण तथा शस्त्रास्त्र हस्तिनापुर, आलमगीरपुर, कौशांबी आदि स्थानों में भी प्राप्त हुए हैं।

1. Arrow-heads.

2. Spear-heads.

3. Daggers.

4. Knives.

5. Crow-bar.

6. Pick-axe : Spade.



आहुति : अष्टमी

प्रद्योत ( ई. पूर्व ५००-४७५ )

“बाह्रद्वयेष्वतीतेषु वीतीहोत्रेष्ववन्तिषु ।

पुणिकः स्वामिनं हत्वा स्वं पुत्रमभिषेक्ष्यति ।

मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः (?).....”

—पुराणोक्त वंशावलि

वीतिहोत्र वंश के राजा अवन्ति में राज्य करते थे । अन्तिम राजा की पुणिक नामक उसके सेवक ने हत्या कर डाली । रक्त-रञ्जित हाथों से वह स्वयं उसके गद्दी पर नहीं बैठ सकता था । सम्भवतः इसी कारण उसने अपने पुत्र प्रद्योत की बाल्यावस्था होते हुए भी, उसे उज्जयिनी की राजगद्दी पर बिठाया । अन्य क्षत्रिय (राजे) यह घटना देखते ही रह गये ।

इसी प्रकार की एक घटना उत्तर भारत में तीन सौ वर्षों के पश्चात् हुई, जब अन्तिम मौर्य राजा की हत्या के पश्चात् सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने, स्वयं सेनापति ही रहकर, अपने पुत्र अग्निमित्र को राजगद्दी पर बिठाया<sup>१</sup> । प्राचीन काल में हिन्दुओं में यह एक अच्छी प्रथा थी, कि यदि राजा बहुत बुरा हो एवं उसकी हत्या आवश्यक हो, तब उसकी हत्या करने पर, उसे मारनेवाला स्वयं उसकी गद्दी नहीं अपना सकता था । यदि अपनाता, तो वह लोभ की परिसीमा हो जाती । राजा लोभी नहीं होना चाहिए; वह ‘सर्वभूतहित में रत;’ होना चाहिये<sup>२</sup> ।

प्रद्योत एक महत्वाकांक्षी एवं पराक्रमशाली राजा था । प्रकृति से क्रोधी होने के कारण ही सम्भवतः उसका ‘चण्ड’ नाम लोगों में तथा साहित्य में प्रच-

१. ‘पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथम् ।

कारयिष्यति वे राज्यं.....’—पुराणोक्त वंशावलि

२. ‘नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु हितं प्रियम् ।’ यह ध्येय (motto) था ।

लत हुआ<sup>१</sup> । अवन्ति-राज्य का विस्तार करने हेतु उसने अपनी सैनिक-शक्ति  
हुत बढ़ा दी । इसी से सम्भवतः उसे “महासेन” नाम दिया गया<sup>२</sup> ।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण से विदित होता है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का  
नागवन उसके राज्य से अति निकट था<sup>३</sup> । पाली साहित्य से यह भी पता  
चलता है कि काकपुर (काकपुर, जिला विदिशा) के काकों पर उसी का स्वा-  
म्यत्व था<sup>४</sup> । वत्सराज नर्मदा नदी तक गया था, तब तक उसे कोई भय नहीं  
था । उसको पार करने पर खतरा रहा । वत्सराज लौटते समय किसी काक ने भी  
उसका पीछा किया था । प्रायः वह विदिशा के समीप एवं धसान नदी तक ही  
चला होगा । इस प्रकार यह सम्भव है कि प्रद्योत के अधिपत्य में पहले वीति-  
मित्र ( ऋषिक ), अनूप, दशार्ण, काक, आकर आदि जनपद थे ।

इस समय कौशाम्बी के वत्सों पर पौख-वंशीय उदयन राज्य कर रहा था ।  
वत्सों का राज्य वत्सों के राज्य में पहले ही मिल चुका था, और वत्स-राज्य  
एवं धसान नदी के पूर्व में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था<sup>५</sup> ।

जब मालवा की प्रायः सभी जातियाँ एवं नर्मदा के दक्षिण की कुछ  
जातियाँ महासेन का आधिपत्य मानती थी, तब केवल ‘पौरव-वंशीय’<sup>६</sup> वत्सराज

१. विनय-पिटक, १.२७६ पञ्चात् । मनोरथ-पूरणि ( अङ्गुत्तरनिकाय पर  
टीका ), १.२१६; आदि ।

२. स्वप्न० २:—‘अत्थि उज्जिणीओ राभा पज्जोदो नाम ।  
तस्स बलपरिमाणणिवुत्तं णामहेअं महासेणो त्ति ।’

३. प्रतिज्ञा० १ :—‘वालुका-तीर्थेन नदीं नर्मदां तीर्त्वा.....नागवनं प्रयातो  
भर्ता ।’

४. देखिये हमारा लेख ‘माइक्रोलिथ्स अण्ड हिस्टरी ऑफ काकपुर’

५. प्रतिज्ञा १ :—‘न खलु गतः स्वामी नागवनम् ।’  
देखिये ऊपर टिप्पणी ३ ।

६. प्रतिज्ञा १ :—‘उत्सेकयत्येन.....’



उदयन उसको कुछ भी नहीं गिनता था; एवं उसके राज्य की सीमा पर प्रद्योत का शासन खण्डित हो जाता था। उदयन को अपने बल एवं पराक्रम पर पूर्ण विश्वास था। नागवन से हाथी पकड़ कर लाना यही उसका शौक था। “हाथी यही राजाओं के विजय का प्रमुख साधन है<sup>३</sup>।” यह बात उसने निःसंशय विदित थी। वीणा-वादन से ही हाथियों को वश में लाने की कला उदयन को साध्य थी।

पराक्रम से असाध्य बात साध्य करने हेतु प्रद्योत को कूट नीति का आश्रय लेना पड़ा। पुराण-ग्रन्थों के संक्षिप्त विवरण से विदित होता है कि वह न केवल अपनी विशाल सेना की सहायता से पास-पोड़स के जनपदों पर आधिपत्य जमाने में सफल हुआ, बल्कि इसके लिए वह कूट-नीति का भी सफल प्रयोग करता रहा<sup>३</sup>।

वत्सराज उदयन को अपने अधीन कर लेने के लिए उसकी मृगयासक्ति का उसने पूरा लाभ उठाना चाहा। वीणा-वादन के लिए उसने एक ऐसा कृत्रिम हाथी बनवाया, कि जिसके पेट में बीसों सैनिकों को वह छिपाकर रखा सका।

इस प्रकार विशाल कृत्रिम हाथी के पेट में सैनिक छिपाकर रखने की कल्पना भारत के इतिहास में बिलकुल अभिनव एवं असाधारण थी। यह असम्भव नहीं। इस कल्पना को उसने पाश्चात्य जगत् में प्रचलित त्रोजा के घोड़े की कहानी से अपनाया था। पाश्चात्य देशों से भारत का व्यापार समुद्र-मार्ग से बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। पुरातत्व शास्त्र इस विषयक अधिकाधिक ज्ञान

१. ह. च., पृ. १९८ पश्चात् :—‘नागवन-विहारशीलं.....’

२. कौ. अ. :—‘हस्ति-प्रधानो हि विजयो राज्ञाम्।’

३. ‘.....’ बालकः (?) पुणिकोद्भवः।

स वै प्रणत-सामन्तो भविष्योऽनयवर्जितः।

त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः।’

—पौराणिक वंशावली।

४. उदेन-वत्स्य के अनुसार इसमें ६० आदमी छिपे हुए रह सके।

कारी प्रति वर्ष उपलब्ध करा रहा है। उज्जयिनी का इस व्यापारी जगत् से घनिष्ठ सम्बन्ध प्राचीनतम काल से रहा होगा। केवल उपर्युक्त सादृश्य के कारण, त्रोजा के घोड़े की कल्पितकथा जैसी, इस घटना को भी कपोल-कल्पित किंवदन्ती मानना उचित नहीं होगा<sup>१</sup>।

उक्त हाथी को नागवन में रखवा कर उसके आसपास अन्य सैनिकों को तैनात कर दिया गया। अपने ही गुप्तचरों के द्वारा वत्सराज को इस नीले हाथी की सूचना दिलवाई। उसको पकड़ने के लिए वत्सराज स्वयं केवल थोड़े सैनिकों के साथ निकला। उसने सेनापति रुमण्वान् की सलाह नहीं मानी। नर्मदा नदी पार कर के वह उस बनावटी हाथी के शिकार के लिए “नागवन” में चला गया। उसके सामने उसका वीणा-वादन विफल बना।

उस “माया-मातङ्ग” को वत्सराज पहचान पाया,<sup>२</sup> उसके पहले ही, उसके समीप छिपे हुए तथा हाथी के पेट से बाहर निकले हुए सैनिकों ने उसे घेर लिया था<sup>३</sup>। दिन भर युद्ध करने के पश्चात्, थक जाने पर वत्सराज उनसे पकड़ा गया<sup>४</sup>। आहत अवस्था में ही उज्जयिनी लाकर बन्दी-गृह में डाल दिया गया।

१. इस कहानी को विन्टरनिट्स जैसे अधिकारी पंडित एवं इतिहास-लेखक केवल त्रोजा की कथा से बनायी हुई एक कल्पित कथा ही मानते हैं। लेखक को यह मूल्यांकन उचित नहीं प्रतीत होता है। (देखिए विन्टरनिट्स, हि. इ. लि., ग्रन्थ २. पृ. १६४)

२. प्रतिज्ञा. १:—‘महामात्रोत्तरायुधी याधिष्ठितः प्रत्युद्गतः स कृतको हस्ती।’

३. ह. च., पृ. १९८ पश्चात्:—“नागवन-विहार-शीलं च माया-मातङ्गाङ्गान्निर्गता महासेन-सैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः।”

त्रि. श. पु. च. ११:—‘प्रद्योतायुक्त-सुभटा निस्सृत्य द्विरदोदरात्। पातयित्वा गजस्कन्धाद् वत्सराजमबन्धयन् ॥’

४. प्रतिज्ञा.



प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, कथा-सरित्-सागर, बृहत्कथा-मञ्जरी, त्रिपष्टि-शलाका-  
 पुरुष-चरित आदि पुस्तकों में, इस सब कूट-नीति में चण्ड-प्रद्योत को 'भरत' या  
 'भरत-रोह' नामक अमात्यवर की सहायता हुई, ऐसा बताया गया है । राँकहिल  
 द्वारा संगृहीत तिब्बती बौद्ध अनुश्रुतियों में भी एक स्थान पर "राजा चण्ड प्रद्योत के  
 भरत नामक अमात्य के लिए बनाए हुए एक कृत्रिम हाथी की कथा" को उल्लेख  
 मिलता है <sup>१</sup> ।

### १. राँकहिल्, "दि लाइफ ऑफ दि बुद्ध"

## आहुति : नवमी लोके हारि च वत्सराजचरितम्

“.....अन्यदालानमुन्मूल्य पातयित्वा निषादिनम् ।

स्वरं नलगिरिभ्राम्यन् क्षोभयामास नागरात् ॥

गीतं नलगिरेरग्रे कुर्वित्युक्तोऽथ भूभुजा ॥

जगबुदयनस्तत्र समं वासवदत्तया ॥”<sup>१</sup>

वत्सराज उदयन का रोचक चरित्र एवं उसकी वंशावली से सम्बन्धित जानकारी—ललित-विस्तर, पुराणग्रंथ, मेघदूत, कथासरित्सागर, बृहत्कथा-मञ्जरी, नेपाली बृहत्कथा, तिथोगली पद्मत्रय, त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित तथा प्रतिज्ञा-योगंधरायण आदि ग्रंथों से प्राप्त होती है । इन सब ग्रन्थों का परामर्श लेना न यहाँ उचित है, और न आवश्यक ही । केवल अंगुलि-निर्देश स्वरूप ही इस विषय को दर्शाया जा सकेगा ।

मेघदूत में उदयन कथा के विषय में बतलाते समय कालिदास ने लिखा है कि, उज्जयिनी के जानकार निवासी अपने सम्बन्धियों को बतलाते हैं कि नलगिरि यहाँ उद्भ्रान्त हुआ एवं उसने अपना बन्धन-स्तम्भ यहाँ तोड़ डाला । किंतु वह किस कारण उद्भ्रान्त हुआ, इसके सम्बन्ध में केवल उपरोक्त छंद से ही ज्ञात होता है ।

इन ग्रंथों के अनुसार कौशाम्बी नरेश शतानीक का पुत्र उदयन एक सुन्दर युवक होने के साथ-साथ पराक्रमी तथा सामर्थ्यशाली वीर था । उपरोक्त वर्णन के अनुसार उसको धोखे से पकड़कर प्रद्योत के सैनिक उज्जयिनी लाए । वत्सराज को जीतने पर भी, प्रद्योत ने अमात्य को आदेश दिया कि उसे राजकुमारोचित सम्मान के साथ पेश किया जाय<sup>२</sup> । लड़ते हुए उदयन पर बहुत प्रहार पड़े हैं, यह सुनते ही उसका मन अनुकम्पा से स्पन्दित हो जाता है, और राजा उसका इलाज

१. त्रि. श. पु. च. (हेमचन्द्राचार्य)

२. प्रतिज्ञा. दो-‘कुमारविधिविशिष्टेन सत्कारेण वत्सराजमग्रतः कृत्वा प्रवेश्यता-ममात्यः।’



ठीक से करने की आज्ञा देता है<sup>१</sup> । गर्मी से उसे अधिक ताप न हो, इसके लिए उसे 'मणि-भूमिका' में रखने विषयक आज्ञा भी प्रदान की जाती है<sup>२</sup> ।

चण्ड प्रद्योत अपनी प्रिय पुत्री वासवदत्ता<sup>३</sup> की गान्धर्व विद्या सीखने की अभिलाषा भी पूरी करना चाहता था । जब वह वीणा वादन सिखाने वाले योग्य आचार्य की खोज में था, उसी समय वत्सराज की घोषवती-वीणा प्रद्योत के हाथों में पड़ गई । उसे यह बात याद आई कि हाथियों को भी केवल वीणा-वादन से मोहित करने वाले वत्सराज के समान योग्य शिक्षक और कौन हो सकता है ? उदयन और वासवदत्ता के बीच एक परदा रखकर, दोनों को एक दूसरे के असली व्यक्तित्व से भ्रांति में रखते हुए वीणा-वादन सिखाने की योजना बनाई गई ।

एक दिन जब उदयन ने कुछ कठिन शब्दोच्चारण के लिए वासवदत्ता को प्रेरित किया, वह उच्चारण वह ठीक ढंग से नहीं कर सकी, तब जैसे कि उदयन को बताया गया था, उसने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—“कुब्जे तुम्हारी जिब्हा जड़ सी दिखाई देती है ।” वासवदत्ता ने आवेश में उत्तर दिया—“हे कुष्ठिन् ! राजकन्या को कुब्जा कहने में तुम्हें शर्म नहीं आती<sup>४</sup> ?”

आश्चर्य में कुतूहलवश, वस्तुस्थिति ज्ञात करने हेतु वत्सराज ने बीच का परदा हटा दिया । इस दृष्टावलि को नागार्जुन-कोण्डा के एक शिल्प पर आकर्षित

१. प्रतिज्ञा. २:—‘हा धिग्, बहुप्रहारः । ..... क्रियातामस्य व्रणप्रतिकर्म ।’
२. प्रतिज्ञा. २:—‘आतपप्रातिकूल्यार्थं मणिभूमिकायां प्रवेशय ।’
३. ‘उदेनवत्थु’ आदि पाली ग्रंथों में इसका नाम वासुलदत्ता बताया गया है । साँची के स्तूपों पर उज्जयिनी-वासियों के दान विषयक शिलालेखों में ‘वासुल’ नाम कई बार आया है । अतः इस प्रकार का नाम यहाँ प्रचलित रहा होगा ।
४. कथा-सरित्सागर-आदि । हेमचन्द्राचार्य के ‘त्रिशष्टिशलाका-पुरुष-चरित’ के अनुसार प्रद्योत ने वत्सराज को यह बतलाया था कि उसकी पुत्री कानी है अतः संमुख आने में वह लज्जित होगी ।

डंग से उत्कीर्ण किया गया है<sup>२</sup>। दोनों ने एक दूसरे को असली रूप में देखा और पहचान गए। वस्तुस्थिति ज्ञात होते ही राग की जगह अनुराग प्रादुर्भूत हुआ। वत्सराज समझ गया कि चण्ड-प्रद्योत का यह एक दूसरा कपट-प्रयोग ही था।

पहले कपट-प्रयोग द्वारा प्रद्योत ने वत्सराज को बंदी बनाया था। इसका बदला लेने का अच्छा मौका उसे इस दूसरे कपट-प्रयोग में नजर आया। उसने इसके लिए अपने अमात्य यौगन्धरायण की सहायता चाही<sup>३</sup>। वह उन दिनों उज्जयिनी नगरी में ही सुविख्यात महाकाल मंदिर में एक पागल (उन्मत्तक) के कपट भेष में रहता था। उसने भी प्रतिज्ञा करके उसका साथ दिया—

“अर्जुन लेकर गया सुभद्रा, हाथी जैसे पद्मलता को।

वासवदत्ता को वैसे ही, हर ले राजा यही प्रतिज्ञा ॥

उस वीणा को, उस हाथी को, वासनदत्ता को, राजा को।

साथ-साथ नहि लेकर जाऊं, यौगंधर वन कर मैं न रहूँ<sup>४</sup>।”

कृतक हाथी के कपट का बदला नलगिरि<sup>३</sup> एवं भद्रवती नामक हाथी और स्थिनियों के माध्यम से लिया गया। भद्रवती पर बैठकर जब वत्सराज वासवदत्ता के साथ जा रहा था, तब प्रद्योत के सैनिकों ने उसका पीछा किया। उस समय साथ में लाई हुई सोने की मुहरों को रास्ते में बिखेरा गया। सैनिक अपने अपने घोड़े से उतर कर जब तक उन मुहरों को बीनते रहे, तब तक भद्रवती आगे बढ़ती गई और अन्त में वह वत्सदेश पहुंच गई। इस क्षण का एक रोचक चित्रण

. प्रतिज्ञा०-३-“समाने गमने, प्रद्योतस्यावमानविशेषश्चिन्त्यते”

. प्रतिज्ञा०-३-८-९:—

“सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव । यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥ अपि च—यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम् । नाहरानि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥

. इस हाथी का नाम कालिदास के मेघदूत तथा हेमचन्द्राचार्य के ‘त्रिशष्टि-शला-पुरुष-चरित’ में नलगिरि, भास के प्रतिज्ञा ‘यौगंधरायण’ में नलगिरि तथा पाली ग्रंथों में नालागिरि बताया गया है।



नागार्जुन-कोंडा की एक तक्षण कृति में प्राप्त हुआ है। इस शिल्प-खण्ड में अघोषवती वीणा के साथ वत्सराज उदयन, वासवदत्ता तथा दासी काञ्चनस और वसन्तक को हाथी पर बैठे हुए उत्कीर्ण किया गया है<sup>१</sup>।

इस सारे कथानक को बीते हुए १००० वर्ष हो चुके थे; फिर भी कादास के जमाने में उज्जयिनी के लोगों को यह 'उदयन-कथा' ज्ञात थी। गुणादय भी इस कथानक को पैशाची (भूतभाषा) या अवन्ति प्राकृत में ग्रथित किया था। सोमदेव के 'कथा-सरित्सागर' और क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथामञ्जरी' आदि में भी कथा विस्तार तथा संक्षेप में प्राप्त होती है। लोक भाषा में लिखी हुई इस कथा से उज्जयिनी के आस-पास के वयोवृद्ध ग्रामीण भी पूर्ण रूपेण परिचित थे।

१. कथासरित्सागर के अनुसार पालक भी इनका पीछाकर रहा था; किन्तु गोपालक ने उसको पिता की राय बतलाकर वापिस किया। क. स. सा. २. व. ३०—'ततः स पालको भ्रात्रा पश्चादेत्य न्यवर्तत। गोपालकेन वाक्यज्ञः पालकं कार्यानुरोधतः ॥

त्रि. प. पु. च.—११,—“वत्सराजो घोषवती-पाणिः प्रद्योतनन्दना। काञ्चनमाला वसन्तश्चारोहंस्तामथ द्विपीम् ॥”

## आहुति : दशमी

## वत्सराज का लौटने का मार्ग

उदयन वत्सराज वासवदत्ता के साथ उज्जयिनी से कौशाम्बी चला गया। वह उस मार्ग से गया यह एक खोज का विषय है, क्योंकि यह निश्चित रूप विदित नहीं। फिर भी कुछ उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कुछ अंशों में निर्धारित किया जा सकता है। इन प्रमाणों को निर्दिष्ट करने के पहले, इस विषय में कुछ बन्धित नियम भी निर्दिष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

१. प्राचीन काल में, सर्वत्र बड़े-बड़े एवं भयानक जंगलों के कारण, रास्ता बनाना ही एक समस्या रहती थी; किन्तु एक समय बना हुआ रास्ता हमेशा के लिए बनाया हुआ रखना यह भी एक समस्या रहती थी। एक शहर से दूसरे शहर को जाने वाले रास्ते पर, पेड़-पौधे किसी एक रेखा में काट कर, सही अर्थ में 'रास्ता' यानी 'रथ्या' (अर्थात्, जिस पर रथ चलाया जा सकता है) बनाया जाने पर, उस पर बारिस में तथा पश्चात् कोई नए पेड़-पौधे न उग जायें, यह देखना पड़ता था।

२. प्राचीन काल में समीप की नगरियाँ, तथा नजदीक के राज्यों की या जनपदों की राजधानियाँ, एक दूसरे से व्यापारिक मार्ग द्वारा जोड़ दी जाती थीं। नागर संस्कृति की वृद्धि में इस प्रकार का व्यापारिक मार्ग एक महत्वपूर्ण अंग था।

३. दूसरे जनपद या राज्यों पर आक्रमण करते समय यही व्यापारिक मार्ग राजकीय मार्ग बन जाता था। साम्राज्यों की वृद्धि में भी इस प्रकार का मार्ग एक महत्वपूर्ण अंग था।

**उज्जयिनी राजगृह मार्ग :—**उज्जयिनी से राजगृह का रास्ता प्रद्योत के समय काफी उपयोग में लाया जाता था। इस विषय में पाली भाषा में उपलब्ध कई कथाओं में पर्याप्त मात्रा में इंगित किया गया है।



एक कथा में बताया गया है कि चण्ड-पञ्चोत (चण्ड-प्रद्योत) के बीमार पर उसकी शुश्रूषा हेतु जीवक कौमारभृत्य उज्जैन गया था। उसे बीमारी हेतु पेट साफ करने वाली दवा देना आवश्यक था। फिर भी चण्ड प्रद्योत तामसी प्रकृति के कारण, उससे अपनी जान बचाने हेतु, उसको उज्जयिनी से लेकर शीघ्र ही मगध देश की राजधानी पहुँचना आवश्यक था।

दूसरी एक कथा के अनुसार बिम्बिसार के समय में उज्जयिनी में 'पदुमावती' (पद्मावती) नामक एक नगर की शोभा (गणिका) रहा करती थी<sup>१</sup>। उसे अपुरोहित की मदद से बिम्बिसार किस प्रकार उज्जयिनी से अपनी राजधानी रागृह ले गया, यह भी एक रोचक कहानी है।

**उज्जयिनी से कौशाम्बी का मार्ग :—**ऊपर की दोनों कथाओं में जो अपनाया गया है, संभवतः वही मार्ग वत्सराज उदयन का उज्जयिनी से वा लौटते समय का होगा।

कथा-सरित्-सागर के अनुसार वत्सराज जिस रास्ते से वापिस लौट गया वह उसके मित्र 'भिल्लराज पुलिन्दक' के राज्य में से होकर गया था; तथा रास्ते उन दोनों की मुलाकात हो गयी थी। संभवतः यह मुलाकात पुलिन्द-राज के राजधानी में ही हुई; अर्थात् वत्सराज वापिस लौटते समय उस राजधानी से हो आगे बढ़ गया। यह विन्ध्याचल के जंगल में था, इस बात को भी कथा-सरित्-सागर आदि ग्रन्थों में स्पष्ट दर्शाया गया है<sup>२</sup>। गुप्त-सम्राटों के समय में भी पालव्राजक वंश के 'हस्ती' तथा 'संक्षोभ' नामक राजाओं के अभिलेखों में आटवि राज्य तथा पुलिन्द-राज-राष्ट्र आदि के उल्लेख पाए जाते हैं<sup>३</sup>।

१. परमत्थ-दीपनी:—'उज्जेनियं पदुमावती नाम नगर-सोमनी अहोसि। रा बिम्बिसारो तस्सा रूप-संपत्ति-आदिक-गुणेहि।"

२. क. स. सा., २. ५. ३२. पश्चात्। २. ४. १४ पश्चात्, २. ४. ४४-४५. २. १३. ४२४३।

३. गुप्त अभिलेख (पली), पृ. ११४ पश्चात्। तथा एं. इ., ग्रन्थ २१. १. १२४ पश्चात्।

उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि पर, बौद्ध पाली ग्रन्थ सुत्तनिपात में, बावरी की कहानी के बन्ध में जो एक प्राचीन व्यापारिक मार्ग बतलाया गया है, वह ध्यान में रखने योग्य है। वह मूलक देश के समीप, गोधावरी (गोदावरी) तीर पर स्थित अस्सक (अश्मक) देश से निकल कर, माहिस्सति (माहिष्मती), उज्जेनि (उज्जयिनी), गोनद्ध (गोनर्द), वेदिसा (विदिशा), वन-सह्वय (? वनपुर, वन्यक), सावत्थि (सावस्ती) होते हुए आगे चला गया था<sup>१</sup>।

इससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि उज्जयिनी एवं कौशाम्बी के बीच बावरी का ही मार्ग सबसे नजदीक का, अतः सरल (Direct) था। इस मार्ग पर वत्सराज पूर्व-प्रथम गोनर्द होकर विदिशा चला गया। जैसा कि उपर सूचित किया गया है, प्रद्योत के राज्य की पूर्व-सीमा धसान (दशार्णा) नदी द्वारा निर्धारित की गई थी। उसके पूर्व में वत्सराज का मित्र 'भिल्लराज पुलिन्दक' का राज्य प्रारम्भ होता था। वत्सराज को अपने मित्र के राज्य की ओर हथिनी पर जाने के लिए यही सबसे लाभदायी रास्ता था। विदिशा के नजदीक रहने वाले कागपुर (काकपुर) के काकों के एक अधिपति ने—संभवतः धसान नदी तक—वत्सराज का पीछा भी किया था। इस विषयक पाली ग्रन्थों में प्रमाण भी मिलता है।

उसके आगे—विदिशा तथा कौशांबी के बीच—पुलिन्दराज की 'वनसाह्वय' नामक राजधानी कहाँ होगी ? 'नाग-साह्वय' या 'हस्ति-साह्वय' का मतलब 'हस्तिनापुर' नामक नगरी से है, यह सुप्रसिद्ध है। उसी प्रकार 'वनसाह्वय' यह 'वन-पुर' भी हो सकता है, 'अरण्यपुर' या 'अटविपुर' भी हो सकता है। या इसका नाम 'वनक' या 'वन्यक' जैसा भी हो सकता है। यहाँ निम्नलिखित बातें ध्यान में रखी जाय :—

१. 'पुलिन्द-राज-राष्ट्र' केन नदी के आसपास पन्ना-सतना के घने जंगलों में कहीं था।

२. संक्षोभ परिव्राजक के अभिलेख में उल्लेखित 'अटवि-राज्य' भी यहीं था।

१. सुत्त-निपात, ९६७ पश्चात् । भाण्डारकर, अ. हि. इ., पृ. ४-५.



३. समुद्रगुप्त के इलाहाबाद शिलालेख में उल्लेखित 'आटविक-राज्य' भी प्रदेश में था ।
४. वं. काशीप्रसाद जायसवाल ने स्पष्ट रूप निर्दिष्ट किया है कि पन्ना के पास किलकिला नदी है, एवं पुराणों में उल्लेखित 'कैलकिल' वंश यहीं का-  
का-है<sup>१</sup> ।

उपर्युक्त विवेचन करते समय, इन्दौर संग्रहालय के अधिकारी, मेरे मित्र राम सेवक गर्ग द्वारा एक उपयुक्त मार्ग-दर्शन हुआ, जिसके कारण मात्र वत्सर का मार्ग ठीक-ठीक निर्धारित करने में अधिक कठिनाई नहीं रही । उन्होंने सूच दे दी कि विदिशा से कौशाम्बी जाने का मार्ग चित्रकूट होकर जाना चाहिए । इसके पुष्टिकरण में उन्होंने यह भी बताया कि चित्रकूट से कौशाम्बी का रा एकदम सरल है, और वह सीधा पभोसा की पहाड़ी के समीप होकर जाता ।

भगवान् रामचन्द्रजी का चित्रकूट जाने का रास्ता यही रहा होगा, रामायण के वर्णन से प्रतीत होता ।

इस विषय पर अधिक सोचने पर यह ध्यान में आया कि: १. पन्ना से चित्रकूट जाने का एक सीधा रास्ता है । २. यह रास्ता शरभङ्गाश्रम होकर ही जा है, जैसा कि रामायण में बताया है<sup>२</sup> ।

अब सवाल यह उठता है कि क्या पन्ना जो कैलकिलों की राजधानी 'वन्यक' या 'वनक' नामक नगरी से उद्भूत है ? 'वनक' या 'वन्यक' का 'प' में अपभ्रंश रूप भाषाशास्त्र के नियमों के विरुद्ध नहीं है । फिर भी यहाँ पुरात्वीय अवशेषों की खोज का संबन्ध अवश्य आवेगा ।

१. जायसवाल, इ. हि. इ.

२. देखिए रामायण, २. ५६. ९५; ३. ५. १३, आदि ।

## आहुति : एकादशी मुद्राओं में महाकाल

उज्जैन की कुछ प्राचीन मुद्राएँ :—प्रश्न उठता है कि क्या उज्जयिनी में ऐसा कोई ठोस प्रमाण प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अति प्राचीन काल में भी यहाँ पर महाकाल-शिव की पूजा होती थी। इस प्रश्न के उत्तर के लिए प्रमाण स्वरूप उज्जयिनी से प्राप्त प्राचीन 'आहुत' प्रकार की रजत-मुद्राओं का नाम लिया जा सकता है। इन पर एक दण्डधारी पुरुष देवता की प्रतिमा दिखाई देती है। उस जमाने की पद्धति के अनुरूप वह इस नगर का संरक्षक देवता होना चाहिए। इसके हाथ का दण्ड, 'काल-दण्ड' है। यमराज स्वयं भी तो महाकाल का ही एक रूप है जिसका आयुध दण्ड नाम से विख्यात है। सब से महत्व की एवं रोचक वस्तुस्थिति यह है कि गोनर्दीय पतञ्जलि ने अपने महा-भाष्य में शिव-भागवतों का उल्लेख करते हुए बताया है कि वे दण्डधारी थे<sup>१</sup>। गोनर्द या गोनद्ध नामक स्थान उज्जयिनी एवं विदिशा के मध्य स्थित था। पतञ्जलि को, जो अवन्ति का निवासी था, उज्जयिनी के शिवभक्तों की अच्छी जानकारी थी। ऐसे भक्त देवताओं के भेष का अनुकरण करते हुए जटा एवं दण्ड आदि धारण किया करते थे; अतः यह अधिक सम्भव है कि मुद्राओं में प्राप्त उपर्युक्त दण्डधारी देवता शिव-महाकाल ही हो।

इस प्रकार की कुछ मुद्राओं पर उपर्युक्त दण्डधारी देवता का ऊँचा जटामुकुट स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अन्य कुछ मुद्राओं पर यद्यपि वह इतना अधिक ऊँचा नहीं है फिर भी उसे जटामुकुट के रूप में पहचाना जा सकता है। जटामुकुट स्वयं भगवान् शिव और उनके गणों से सम्बन्धित है। इस प्रकार जटामुकुट धारण करने वाली यह प्रतिमा भगवान् महाकाल की ही होनी चाहिए।

१. महाभाष्य:—भाग २, पृ. ३८७ पश्चात् 'किं चातः। शिवभागवते प्राप्नोति।' यही शिव-भागवत आगे लकुलीश बने। देखिए नीचे।
२. डा. दे. रा. भाण्डारकर के अनुसार कुपाण मुद्राओं पर भी शिव का ही रूप प्राप्त होता है। देखिए—भाण्डारकर, लेक्चर्स—१९१८, पृ. १६-२०.



उज्जयिनी के कुछ अन्य सिक्कों पर तीन मुँह वाले एक अन्य देवता को अंकित किया गया है। चतुर्मुखी देव की प्रतिमाओं के अंकन में प्रायः इसी प्रकार से तीन मुखों को उत्कीर्ण किया जाता है। जनरल कनिंघम ने भी उज्जयिनी से प्राप्त मुद्राओं में चतुर्मुख मूर्ति को महाकाल की ही प्रतिमा कहा है<sup>१</sup>।

ऐसी प्राचीन काल की भगवान् महाकाल या शिव की मूर्तियाँ अविज्ञात न होने के कारण डा० अलन ने ऐसी दण्डधारी मूर्तियों को षण्मुख कार्तिकेय कहा है। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने लायक है। बाद में प्रायः चतुर्मुख शिव के स्थान पर चतुर्मुख शिवलिंग पाया जाता है। चतुर्मुख शिव की पुरुषाकृति मूर्ति इन्हीं मुद्राओं पर पाई जाती है, जब कि लिंग रूप में भी शिव की आराधना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। मूर्ति विज्ञान के लिये शिव के स्वरूपांकन में इस प्रकार की प्रगति आश्चर्य जनक जरूर है। इससे आश्चर्य जनक बात आहत प्रकार की इन रजत मुद्राओं पर भगवान् शिव 'कल्याण-सुन्दर' रूप का अंकन है<sup>२</sup>। उज्जयिनी की एक त्रुटित मुद्रा का चित्र अलन की सूची में छपा है। उसमें दो आकृतियाँ—एक पुरुष तथा एक स्त्री की दिखाई देती हैं। इसमें भी जैसा कि 'कल्याण सुन्दर' प्रतिमाओं में प्रायः दिखाया जाता है। देवी पार्वती की प्रतिमा भगवान् शिव के दक्षिण में उत्कीर्ण है। विवाह के पक्ष में स्त्री पुरुष के दक्षिण में रहती है और विवाहोपरान्त ही वह उसकी वामांग बनती है। इस मुद्रा के अवलोकन से पता चलता है कि देवी पार्वती का अंकन उस स्थिति में हुआ है जब वह सप्तपदी हेतु चल रही थी। साथ पार्वती के शिव के विवाह का यह दृश्य ही उनका 'कल्याण सुन्दर' रूप है।

महाकाल की पत्नी का नाम काली या कालिका है<sup>३</sup>। जैसा कि ऊपर देखें

१. कनिंघम—काँ. ए. इण्डि.—पृ.-६७; अलन, कैटलॉग (१९३६) प्रस्तावना पृ. १४२-४४, पाठ्य पृ. २४५ इत्यादि, फलक-३७-१७; ३८-३, ६, ७, आदि। अलन ने इसे षण्मुख कार्तिकेय की प्रतिमा कहा है।
२. अलन, कैटलॉग, फलक ४४-२२।
३. "काल : काल्या सह बहुकल : क्रीडति प्राणिसारै : "।

जा चुका है कभी-कभी पुराणों में महाकाल की महेश्वरी एवं कालिका को महेश्वरी कही गयी है<sup>१</sup> । कल्याण-सुन्दर के साथ महेश्वरी की मूर्ति आहत मुद्राओं पर उपलब्ध है । महाकाल वन में भी महेश्वरी का उल्लेख है । इन सब संदर्भों को ध्यान में रखने पर मेघदूत में कालीदास का यह वाक्य कि—‘नृत्तारम्भे हरमशु-पते:.....दृष्टभक्तिर्भवान्या, स्पष्ट हो जाता है । इसके आधार से यह सम्भव प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में महाकाल वन में महाकाल मंदिर के समीप ही चामुण्डी कालिका या महेश्वरी का गुप्त (या गुप्तपूर्व) कालीन कोई ख्यात-नाम मंदिर अवश्य रहा होगा ।

पुरातन अवशेषों से प्रमाणित होता है कि प्राचीन उज्जयिनी सद्यःकालीन इमशान के उत्तर में, एवं महाकाल का इमशान सद्यःकालीन उज्जैन नगरी में स्थित थे । यह बात प्रथम बार श्री. मो.ब. गर्दे, भूतपूर्व संचालक, पुरातत्त्व विभाग, ग्वालियर ने निर्दिष्ट की । प्राचीन नगरी के अवशेषों के टीलों को ‘गढ़’ कहा जाता है । वहीं पर कालिका देवी का प्रसिद्ध मंदिर है जो आज भी ‘गढ़-कालिका’ कहलाता है । कालिका का पुराना मंदिर यह नहीं है, क्योंकि मंदिर में अथवा उसके आसपास कहीं भी कोई गुप्तकालीन शिल्प खण्ड उपलब्ध नहीं होते हैं । चामुण्डी का मन्दिर महाकाल वन में ही था ।

१. देखिए ऊपर पृ. १६.

मन्त्राङ्क—व्याख्यानम् (प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण की टीका):—‘देवकुल-पीठिकायां उज्जयिन्यां महाकालमिति प्रसिद्धस्य चामुण्डीपतिमन्दिरस्य परिसरवर्तिनः शून्यशिवालयस्य पीठिकायां अलिन्दे



## आहुति : द्वादशी प्रद्योत के वंशज

प्रद्योत को गोपालक, पालक<sup>१</sup> तथा कुमारसेन नामक तीन पुत्र, एवं वावदत्ता नामक एक पुत्री हुई, यह बात संस्कृत साहित्य से विदित होती है। पा. साहित्य में 'वासवदत्ता' का नाम 'वासुलदत्ता' के रूप में ही पाया जाता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सांची में प्राप्त शिलालेखों में, उज्जयिनी स्त्री एवं पुरुष दाताओं के नाम 'वासुला,' 'वासुल' आदि रूपों में पाए जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'वासुलदत्ता' यह उसका घरेलू नाम था, एवं क. अवन्ति-देश में अधिक प्रचलित था।

हर्षचरित से प्राप्त जानकारी के अनुसार, उज्जयिनी में महाकाल के महोत्सव में महामांस के विक्रय को लेकर जब विवाद उत्पन्न हुआ, तब उसमें अधिवाचालता के कारण प्रद्योत के कनिष्ठ पुत्र कुमारसेन की किसी वेताल तालजङ्घ ने हत्या कर डाली<sup>२</sup>। कथा-सरित्सागर से विदित होता है कि उज्जयिनी के शान से किसी तालजङ्घ नामक 'भूताधिपति' का संबन्ध था। 'भूताधिपति' का अर्थ सम्भवतः 'वेताल' ही है<sup>३</sup>। कुमारसेन की हत्या होने के कारण, उसका उल्लेख प्रद्योत के पुत्रों में साधारणतया नहीं पाया जाता।

१. क. स. सा., ११.७१ पश्चात्:—'जातौ द्वौ तनयौ चण्ड-महासेनस्य भूपतेः एको गोपालको नाम द्वितीयः पालकस्तथा ॥' स्वप्न. ६:—'मम वा महासेनस्य वा गोवल्लभ-वालभा.....'। संभवतः केवल छन्द के कारण प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण २. ३१ में 'पालक' का नाम 'अनुपालक' में बदल दिया है।

२. ह. च., पृ. १६८ पश्चात्:—'महाकाल-महे महामांस-वाद-विक्रय-वातुल वेतालस्तालजङ्घो जघान जघन्यजं प्रद्योतस्य पौर्णिकं कुमारं कुमारसेनम् ।'

३. क. स. सा., १०८.७८ पश्चात्:—'उज्जयिन्या.....(श्मशाने)। तालजङ्घ इति ख्यातः भूताधिपतिरभ्यधात् ॥'

प्रद्योत महासेन के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र 'गोपालक' उज्जयिनी के गद्दीपर नहीं बैठ पाया । वह गद्दी उसके अनुज 'पालक' को मिल गयी । पालक ने अपने पश्चात् अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाना चाहा । किन्तु, जैसा कि मृच्छ-कटिक नाटक से विदित होता है, वह गद्दी उसके बाद 'आर्यक' नामक गोपाल के पुत्र को मिली<sup>३</sup> । आर्यक को बन्दी-गृह में रखकर, उसको राजगद्दी न मिल जाय, ऐसे भी प्रयत्न पालक ने किए<sup>४</sup>; किन्तु उसके सब प्रयत्न विफल होकर वह स्वयं मारा गया<sup>५</sup> ।

पालक के संबन्ध में जैन साहित्य से विदित होता है कि वह उसी समय गद्दी पर बैठा, जिस समय तीर्थंकर महावीर की मृत्यु हुई<sup>२</sup> । प्रतिज्ञायोगन्धरायण से विदित होता है कि व्यायाम से उसे विशेष प्रेम था<sup>६</sup> । कथा-सरित्सागर के अनुसार, वत्सराज और वासवदत्ता के पलायन से समय पालक ने उनका पीछा किया था<sup>७</sup> । कौटिलीय अर्थशास्त्र पर लिखी गई टीका के अनुसार नीतिशास्त्र-कर्ता

१. तित्थो गाली पइन्नय, श्लोक ६२० पः—जा रयणिं सिद्धगओ अरहा तित्थं-करो महावीरो । तं रयणिमवंतीए अभिसित्तो पालओ राया ॥ पालगरण्णो सव्वी.....॥'

२. पुराणों के अनुसार प्रद्योत के पश्चात् पालक ही राज्य करता है ।

३. मृच्छ. २:-'आर्यकनामा गोपाल-दारकःसिद्धादेशेन समादिष्टःराजा भविष्यति।'।'

४. वहीं, ४:-'कथं राजा पालकेन प्रियसुहृदार्यको में बद्धः ।'

वहीं, १०:-'योऽसौ पालकेन..... निष्कारणं कूटागारे बद्ध आर्यकनामा त्वया मोचितः.....।'

१. मृच्छ. १०. ५१:-'आर्यकेनार्यवृत्तेन कुलं मानं च रक्षता । पशुवद् यज्ञ-वाटस्थो दुरात्मा पालको हतः ॥'

५. देखिए ऊपर तित्थोगाली पइन्नय—पदटीप १ ।

६. प्रतिज्ञा. २.१३:-'गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चाप्यनुपालकः ।

७. क. स. सा. १३.२० पश्चात्.



पिशुन स्वयं पालक को नीतिविद्या पढ़ा रहा था<sup>१</sup> ।

पुराणों की वंशावलि में 'आर्यक' के स्थान पर 'सूर्यक' 'अजक' आदि अपभ्रंश रूप प्राप्त होते हैं । इसका कारण यह दिखाई देता है कि एक समय प्राचीन लिपि में 'अ' तथा 'सु' समान-रूप लिखे जाते थे । इसी प्रकार का सम्भ्रम अन्यत्र भी देखा जा सकता है<sup>२</sup> । मुद्राशास्त्र में आधुनिक विद्वानों का भी इस प्रकार का सम्भ्रम सुविदित है<sup>३</sup> ।

पौराणिक वंशावलियों के अनुसार, आर्यक के पश्चात् 'नन्दिवर्धन' या 'वन्तिवर्धन' नामक राजा हुआ । कथा-सरित्-सागर, नेपाली बृहत्कथा आदि ग्रन्थों में इसका नाम 'अवन्तिवर्धन' बताया गया है । संभवतः यही सही नाम है, जिसके अपभ्रंश रूप पुराणों में पाए जाते हैं । नेपाली बृहत्कथा में 'अवन्तिवर्धन' को गोपाल के वंश का माना गया है, वह सही दिखाई देता है । कथा-सरित्-सागर के अनुसार इसकी राजधानी उज्जयिनी ही थी ।

पुराणों से विदित होता है कि प्रद्योत वंश में पांच राजा हुए, जिन्होंने कुल १३८ वर्ष राज्य किया । प्रद्योत कुल के सब राजाओं के राज्य-काल की यह जोड़ मात्र होने से,<sup>४</sup> एवं कुछ राजाओं के राज्य-काल की वर्ष-संख्या अधिक बताया जाने से कुल वास्तविक जोड़ अधिक हो सकती है; यानी संभवतः इस वंश ने कुल १५० वर्ष तक राज्य किया<sup>५</sup> । इस राज-वंश का अस्त सम्भवतः नन्दराज महा

१. श्रीमूल:-'पिशुनो नामाचार्य उज्जयिन्यां प्रद्योतस्य पुत्रं पालकं नीतिविद्यामध्यापयाम्बभूव ।'
२. महाभारत (भा. ओ. री. इ.), ५.२३.१०१; ५.६६.७१; आदि ।
३. स्मिथ्, कॅटलॉग, पृ. १४५
४. प्रद्योत (२३), पालक (२४), विशाखयूप (५०) आर्यक (२१), अवन्तिवर्धन (२०)=कुल १३८ वर्ष ।
५. इनके वर्ष-संख्या की कुल योग देते समय पुराणों ने केवल ५२ वर्ष ही कहा है । संभवतः वह १५२ वर्ष होगा । "द्विपञ्चाशत्ततो ( त्शतं ? ) भुक्त्वा प्रणष्टा : पञ्च ते नृपा : ।"

पद्म के समय में हुआ, जो कि 'सर्व-क्षत्रान्तक' था। महापद्म का समय करीब ई. पू. ३५० का होने से प्रद्योत का समय ई. पू. ५०० का माना जा सकता है।

इस मान्यता की पुष्टि अन्यत्र भी होती है। प्रद्योत भगवान् बुद्ध तथा तीर्थ-कर महावीर का समकालीन था। भगवान् बुद्ध के संवोधि-दिन से जो संवत् भारत में चल रहा था, उसकी गणना अशोक ने "व्युष्टि" (वियुथ) के (संवत्) २५६, २६०, २६५, २६६ आदि अंकों से बतायी है<sup>१</sup>। अशोक के शिलाशासन महा-पद्म नन्दराज के पश्चात् करीब १०० वर्ष बाद लिखे गए। व्युष्टि के वर्षों से १०० वर्ष हटाने पर करीब उतने ही वर्ष आते हैं, जितने प्रद्योतवंश के बताए गए हैं।

**पुरातत्त्वीय अवशेषः—**प्रद्योत का वंश ई. पूर्व ५०० से ३५० तक का माना जाय, तो मानना पड़ेगा कि इस समय के पुरातत्त्वीय अवशेषों के संबन्ध में पर्याप्त जानकारी अब भी उपलब्ध नहीं हुई है। फिर भी जो उपलब्ध है, उससे यह ज्ञात होता है कि इस कालखण्ड में उज्जयिनी नगरी के वैभव की नींव पड़ गयी थी। उज्जयिनी के प्राकार की नींव, जो उत्खनन-शास्त्र<sup>२</sup> द्वारा निश्चित ज्ञात हो सकी, उसका प्रारम्भ भी इसी काल-खण्ड में हुआ। स्तर-विद्या<sup>३</sup> के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उज्जयिनी के प्राकार<sup>४</sup> के निर्माण के समय वहाँ कृष्ण एवं रक्त मृद्भाण्डों (Black and Red ware) का निर्माण प्रारम्भ हुआ था। इसके साथ साथ ही लौह युगीन संस्कृति भी विकसित हुई थी।

इस विकास की परिणति के फलस्वरूप पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, उज्जयिनी जैसे बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ, एवं जन-साधारण के भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि

१. 'व्युष्टि' का सही मतलब लेखक ने 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' (१९६०) पृ. १४५, १८९, आदि में, तथा 'नन्द और मौर्य' नामक अंग्रेजी (अप्रसिद्ध) ग्रन्थ में दिखलाया है।

२. Excavation.

३. Stratigraphy

४. उज्जयिनी के प्राकारों का उल्लेख बाद के पुराणों में भी पाया जाता है।



हुई। पत्थरों द्वारा निर्मित तथा पकी हुई ईंटों से बनाए हुए मकान अधिकाधिक उपलब्ध होने लगे। राजाओं के महलों के परिमाण, मजबूती आदि में सर्वथैव वृद्धि होने लगी। राज्य-संस्था अधिकाधिक समृद्ध होती रही। लौह-युगीन शस्त्रास्त्र के कारण युद्ध-शास्त्र ने नयी मोड़ ली। राज्य-विस्तार हेतु संघर्ष बढ़ने लगे। युद्ध व्यापक परिमाण में होने लगे। शत्रुओं से बड़े-बड़े एवं समृद्ध शहरों का संरक्षण करने हेतु विशाल एवं मजबूत तटबन्दियाँ बनाना आवश्यक हो गया। पाटलिपुत्र की तटबन्दी बाद के काल-खण्ड में बहुत ही विख्यात हो गयी<sup>१</sup>। उज्जयिनी आदितम तटबन्दी की नींव-जो कि कीचड़ से बनायी गयी थी-इसी काल-खण्ड में डाली गयी।

सर् मॉटिमर वीलर के अनुसार इस काल-खण्ड में उज्जयिनी १ मील लम्बा तथा ३ मील चौड़ी नगरी थी। इसके तटबन्दी की चौड़ाई नींव में २०० फीट एवं चोटीपर ४० फीट थी<sup>२</sup>। लकड़ी के बड़े-बड़े लट्टों को मिलाकर बनायी गयी जुड़ाइयों से इस प्राकार को अधिक मजबूत किया गया था<sup>३</sup>। जिस ओर नदी नहीं थी, उस ओर प्राकार के बाहर ८० फीट चौड़ी एवं २० फीट गहरा परखा उसे घेर रही थी<sup>४</sup>।

१. देखिए मेगॅस्थेनीज का 'पालिम्बोथ्रा' (पाटलिपुत्र) का वर्णन एवं महाभाष्य २.३२१:—'पाटलिपुत्रकाः प्रासादाः । पाटलिपुत्रकाः प्राकाराः ।'
२. ई. पू. ५०० के करीब, यानी बुद्ध व प्रद्योत के समय शस्त्रास्त्र शायद इतने बढ़ गये होंगे कि २०० फीट नींव के तटबन्दी की आवश्यकता पड़े हो। लेखक को यह असम्भव प्रतीत होता है। सम्भवतः यह प्राकार बाद के काल-खण्ड में का (? विक्रमादित्य के समय में) पुनर्निर्माण (Renovation) करने से बना होगा।
३. वीलर, अ. इ. पा., पृ. १४२ पश्चात्:—

The rampart was reinforced against the flow of the river by transverse barriers of interlocked timbers."

४. वहीं।

उज्जयिनी में सर्व-प्रथम बड़ा उत्खनन ग्वालियर रियासत के पुरातत्त्व-विभाग के प्रमुख श्री मो. व. गर्दे द्वारा किया गया। उनके अनुसार इस नगरी के पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण दिशाओं में कच्ची ईंटों का प्राकार बना हुआ था। शहर के पश्चिमी विभाग में, क्षिप्रा नदी के कारण कच्ची ईंटों का प्राकार ठहर नहीं सकता था<sup>१</sup>।

उत्खनन-शास्त्र से इस समय की संस्कृति का एक विशेष, विशेष-रूप से दृष्टि-गोचर होता है। वह है भिन्न-भिन्न प्रकार की मणियों की उत्कृष्ट बनावट आदि के ज्ञान विषयक<sup>२</sup>। उज्जयिनी में यह मणि उत्तरोत्तर अधिक संख्या में पाए जाते हैं।

१. देखिये अ. अ. रि. आ. डि., ग्वा. स्टेट, संवत् १९९५ पृ. १७. स्थापत्य-शास्त्र की दृष्टि से ऐसे प्राकार पश्चिम में होना असम्भव नहीं है। आवश्यक मजदूरी के बाद वे ठहर सकते हैं। उपरोक्त लकड़ी के लठ्ठों की जुड़ाई इसमें काफी सहायता दे सकती है।

२. बी. बी. लाल, इण्डियन् आर्किऑलॉजी सिन्स इन्डिपेन्डन्स, पृ. ३३—नीचे देखिए आहुति सप्तविंशा।



आहुति : त्रयोदशी

“उज्जैन चिह्न”

प्रद्योत स्वयं महासेन नाम से ख्यात था । उसके एक पुत्र का नाम कुमार सेन था । महाकाल का महोत्सव प्रद्योत वंश द्वारा मनाया जाता था । इसी वंश में विशाख-यूप नामक अन्य राजा भी हुआ । इस सब वस्तु-स्थिति से प्रतीत होता है कि सम्भवतः यह राजवंश शिव-भक्त था; एवं वे आहत रजत-मुद्राएँ जिन पर शैव देवताओं का अंकन है, अथवा जिन पर उनके चिह्न चित्रित हैं वे सम्भवतः प्रद्योत-वंश के राजाओं द्वारा ही प्रसारित किये गये थे<sup>१</sup> ।

नन्दी :—उज्जैन के कुछ प्राचीनतम मुद्राओं पर नन्दी अंकित है<sup>२</sup> । नन्दी महाकाल का वाहन है; तथा महाकाल उज्जैन की प्रमुख देवता है । इस कारण यह प्रतीत होता है कि नन्दी से अङ्कित मुद्राएँ किसी शैव राजवंश से सम्बन्धित हैं । उज्जयिनी के प्राचीन राजवंशों में अन्य कोई भी राजवंश शैव पंथ का अनुयायी होने का निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है । अतः नन्दी से अङ्कित कुछ अतिप्राचीन सिक्के प्रद्योत वंश के समय के माने जा सकते हैं ।

“उज्जैन चिह्न”<sup>३</sup> :—उज्जैन की मुद्राओं में अन्य चिह्नों की अपेक्षा एक चतुःशीर्षक चिह्न—जिसे मुद्रा शास्त्र में ‘उज्जैन चिह्न’ कहते हैं—सबसे अधिक पाया जाता है । यह चिह्न आड़ी-खड़ी रेखाओं के चार हाथों को प्रत्येक को एक वृत्त लगाने से बनता है । चूँकि यह चिह्न उज्जैन के सिक्कों में सबसे अधिक पाया जाता है, इसलिये जनरल अ. कनिंघम द्वारा इसका “उज्जैन चिह्न”

१. इसी वंश में ‘गोपाल’ नाम भी पाया जाता है; किन्तु ‘गोपाल’ कभी राजा नहीं हुआ । उज्जयिनी में विष्णु भगवान् का जो प्रसिद्ध मन्दिर था, उसके सम्बन्ध में देखिए ऊपर आहुति ४ पृ. १८

२. अल्लन्, कॅटलॉग, प्रस्तावना पृ. १४२ पश्चात् ।

३. Ujjain Symbol.

नामकरण किया गया<sup>१</sup>। इसी प्रकार एक अन्य चिह्न—जो कि तक्षशिला की मुद्राओं में सबसे अधिक पाया जाता है—जनरल कनिंघम द्वारा “तक्षशिलाङ्क” (Taxila mark) कहलाया गया।

**चिह्न का स्थान :**—मुद्राओं के प्रकारों का अध्ययन करके प्रा. रॅप्सन् ने प्रमाणित किया है कि “भारतीय मुद्राओं के प्रकार वास्तविक रूप में स्थानीय प्रकृति से सम्बन्धित माने जा सकते हैं”<sup>२</sup>।

विशुद्धि-मग्न में बुद्ध-घोष ने भी इसी प्रकार का सूचित किया है कि मुद्राओं के चिह्न स्थान-निर्देशक होते हैं। उसमें कहा गया है कि किसी भी मुद्रा के चिह्नों को गौर से देखकर, मुद्राओं का जानकार यह बता सकता है कि अमुक मुद्रा कहाँ से आयी है, वह किस नगर अथवा जनपद अथवा पहाड़ी की है<sup>३</sup>।

अमुक चिह्न अमुक नगरी का ऐसे जब माना जाता है, तब उसका मतलब यह होता है कि वह उस नगरी के प्रमुख देवता का चिह्न है। उज्जयिनी में प्राप्त मुद्राओं में “उज्जैन चिह्न” सबसे अधिक पाया जाता है, अतः वह उस नगरी के प्रमुख देवता महाकाल का चिह्न होना चाहिए। अतः यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या यह चतुःशीर्षक चिह्न चतुर्मुख महाकाल का रूप सूचित करता है ?

**स्थान-निर्णय :**—“उज्जैन चिह्न” उज्जयिनी के अतिरिक्त विदिशा, एरण, कौशाम्बी तथा गुजरात, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश के कई स्थानों में प्राप्त मुद्राओं में उपलब्ध होता है। ऐसी परिस्थिति में यह सर्व-प्रथम उज्जयिनी का ही चिह्न था, यह किस आधार पर निर्णीत किया जा सकता है ? उत्तर में यह बताया जा सकता है कि—(१) मुद्रा-शास्त्र में अन्य कई प्रमाण उपलब्ध होते

१. ज. कनिंघम, कॉ. ए. ई., पृ. ९५ पश्चात्; माण्डारकर, लेक्चर्स, (१९२१), पृ. १०७; स्मिथ्, कॅटलॉग, पृ. १५२; आदि।

२. प्रो. रॅप्सन्, कॅटलॉग, प्रस्तावना, पृ. ११-१२ :—

“Indian coin types are essentially local in character.”

३. माण्डारकर, लेक्चर्स (१९१८), पृ. ६६-१००।



हैं, जिनके आधार पर पौर्वापर्य निर्णीत किया जा सकता है। (२) स्तर-शास्त्र के आधार पर भी अब यह अन्य रूप से निर्णीत करना सम्भव हो गया है। (३) किसी भी अन्य नगरी में यदि राजकीय कारणों से ऐसा कोई चिह्न किसी समय प्रचलित हो जाता है, तो वह राजकीय कारण हट जाने से वह चिह्न भी वहाँ से हट जाता है।

(४) इनके अतिरिक्त एक अन्य घटना भी इस प्रकार के निर्णय में सहायक होती है। वह यह है कि “उज्जैन चिह्न” के बीसों प्रकार उपलब्ध है। कुलस्थान के विशेष प्रकार वर्जित करने पर दिखाई देता है, कि उज्जैन में प्राचीन—इनमें उज्जैन से इन्दौर मार्केट में आए हुए भी शामिल हैं—सिक्कों पर “उज्जैन चिह्न” के सब प्रकार उपलब्ध होते हैं। अन्यत्र वे वैसे नहीं होते हैं।

रूस के ख्यातनाम वनस्पति-शास्त्रज्ञ प्रा. वाविलोफ़ (Vavilov) ने किसी वनस्पति के प्रकारों की संख्या से उसका मूल उत्पत्ति स्थान खोजने हेतु नियम बताये हुए हैं, उनका उपयोग सिक्कों के चिह्नों के प्रकारों से उनके मूल स्थान को खोजने हेतु भी किया जा सकता है। किसी भी चिह्न के प्रकार जहाँ स्थान पर सबसे अधिक संख्या में उपलब्ध हों, एवं अधिक काल से प्रचलित हों, वह स्थान उस चिह्न का उद्गम स्थान या मूल स्थान होगा, या उस स्थान के समीप के क्षेत्र में स्थित होगा। इस न्याय के अनुसार भी उज्जैन को “उज्जैन चिह्न” का मूल स्थान या उद्गम स्थान माना जा सकता है।

उज्जैन के अतिरिक्त, “उज्जैन चिह्न” विदिशा एवं एरण से प्राप्त मुद्राओं में अधिक संख्या में पाया जाता है। मुद्राशास्त्रज्ञों के अनुसार यहाँ भी कई प्रकार के “उज्जैन चिह्न” पाये जाते हैं। हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टि-शलाका पुरुष-चरित्र के अनुसार विदिशा प्रद्योत के अधिकार में थी<sup>१</sup>। जैसा कि अनेक आहुतियों में निर्दिष्ट किया है, अन्य काल-खण्डों में भी विदिशा नगरी उज्जयिनी के अधिपतियों के अधीन रही।

माहिष्मती (महेश्वर) के समीप कसरावद के विहार के उत्खनन में पाये

ये सिक्कों पर भी यह चिह्न मिला है<sup>१</sup>। जैसा कि ऊपर देखा गया है, माहि-  
मती तथा निमाड़, जो पहले वीतिहोत्रों के आधिपत्य में रहे, प्रद्योत महासेन के  
अधीन हुए।

कौशाम्बी की रजत-मुद्राओं में “उज्जैन चिह्न” अनेक रूपों में अंकित  
किया हुआ दिखाई देता है। वत्सराज को बन्दी बनाने के बाद प्रद्योत के  
साम्राज्य का विस्तार कौशाम्बी तक हो गया हों, तो आश्चर्य की बात नहीं है।  
जिज्ञिम निकाय नामक पाली ग्रन्थ के अनुसार चण्ड-प्रद्योत के भय से मगधराज  
जातशत्रु ने एक बार राजगृह की तटबन्दी मजबूत करायी थी<sup>२</sup>। यह तटबन्दी  
इस समय बनी होगी, जब अवन्ति एवं मगध राज्यों के बीच वत्स-राज्य नहीं  
रहा था।

डॉ. अ. स. आलतेकर महोदय ने, कौशाम्बी की एक आहत मुद्रा पर पाये गए  
“उज्जैन चिह्न” के एक प्रकार के सम्बन्ध में लिखते हुए, पूर्व में ही उचित तर्कों  
के साथ बताया है कि यह मुद्रा-प्रकार संभवतः उज्जयिनी से कौशाम्बी चला गया  
था<sup>३</sup>। यह प्रकार ‘द्विवृत्तात्मक’ है, यानी इस प्रकार में “उज्जैन चिह्न”  
के भुजाओं के अन्त में दो वृत्त बने हुए रहते हैं।

यह “द्विवृत्तात्मक उज्जैन चिह्न” “काड” अक्षरों से युक्त कुछ सिक्कों पर भी  
पाया जाता है। ‘काड’ का अर्थ ‘काल’ यानी ‘महाकाल’ है। इससे यह निश्चित  
होता है कि यह मुद्रा-प्रकार उज्जैन का है। कसरावद, एरण आदि कुछ अन्य  
स्थानों में प्राप्त कुछ मुद्राओं पर भी यह “द्विवृत्तात्मक उज्जैन चिह्न” पाया  
जाता है।

१. लेखक के कसरावद उत्खनन (१९३८-३९) के समय लिखी हुई नोट्स के  
आधार पर।

२. मललसेखर, डि. पा. प्रॉ. ने., भाग २ : ‘राजगृह।’

३. देखिये ज. न्यू. सो. इ., ग्रन्थ ८, भाग १, पृ. १३.

४. “Ujjain symbol with double circles.”



अवन्ति में बौद्ध धर्म का उदय एवं प्रसार :—महाकाल का भक्त होते भी प्रद्योत ने भगवान् बुद्ध के उपदेश समझ लेना चाहा । इसके लिये अपने कंचुकी के पुत्र “कच्चान” ( कात्यायन ) को भगवान् बुद्ध को निर्मा करने हेतु भेज दिया । वहाँ वह एक बड़ा शिष्य होकर “महा-कच्चा” ( कात्यायन ) के नाम से विख्यात हुआ । स्वयं भगवान् बुद्ध ने उसे ‘अवन्ति-राष्ट्र’ ( अवन्ति-राष्ट्र ) में अपने तत्त्वों का प्रचार करने हेतु अपना प्रमुख प्रतिनिधि बनाकर देश को वापिस भेजा ।

उसने भी अवन्ति-देश में कुरुर-गृह में विहार स्थापित करके अपना जीवन इस कार्य में लगा दिया । यह कुरुर-गृह वही है जो कि सांची के शिलालेखों में ‘कोररघर’, ‘कुररघर’, ‘कोरघर’, ‘कुरघर’ आदि नामों से उल्लिखित है<sup>१</sup> । उन अभिलेखों में ऐसे दानविषय ४० उल्लेख हैं । किसी भी अन्य नगर इतने उल्लेख नहीं हैं । इससे यह स्पष्ट है कि यह कुरुरगृह उस समय महत्वपूर्ण स्थान था । उन उल्लेखों में कई उल्लेख ‘भिक्षु’ तथा भिक्षुओं के दानों के सम्बन्ध में हैं । इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुरुरगृह में महाविहार था । इस महाविहार की स्थापना सम्भवतः महाकच्चान ने स्वयं की थी । उसकी प्रार्थना पर ही भगवान् बुद्ध ने भी अवन्ति देश के भिक्षुओं के लिए कुछ नियमों में स्थानीय परिवर्तन स्वीकृत किये<sup>२</sup> ।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् करीब १०० वर्ष बीत जाने पर बौद्धों में आचरण के नियम विषयक कुछ मतभेद हुए । जैसा कि विनय-पिटक में लिखा हुआ है, काकन्दक-पुत्त यश नामक एक स्थविर (बूढ़ा माननीय भिक्षु) ने देखा कि वैशाली के वज्रियों के भिक्षु-संघ में भिक्षु भगवान् बुद्ध ने बतलाए भिक्षुओं के आचरण विषयक दस नियमों के विरुद्ध आचरण कर रहे थे ।

१. लेखक ने कुरुरगृह विषयक एक लेख में यह दर्शाया है कि यह नगरी अब ‘कोरावर’ (या ‘कुरावर’) नाम से ख्यात है ।

२. मल्लसेखर, डि. पा. प्राँ. ने., भाग १, कुरुरगृह, भाग २, महाकच्चान

उसने स्थविर रेवत (? रैवतक) की सहायता से वैशाली में सब बौद्ध आचार्यों की 'द्वितीय संगति' (दूसरी बैठक) बुलवायी।

इस बैठक की तैयारी करने हेतु वह प्रथम कौशाम्बी वापिस लौट गया<sup>१</sup>। वहाँ से उसने पहले अवन्ति-देश के बड़े-बड़े स्थविरों को अपनी सहायता हेतु बुलवाया। आखिर में इन दस नियमों (दस वत्थु) विषयक निर्णय रेवत एवं यश के मतानुसार हुआ। जैसा कि सिंहलीय अनुश्रुतियों से विदित होता है, यह संगति तब बुलवायी गयी थी जब शैशुनाग वंश का 'कालासोक'<sup>२</sup> (यानी 'काक-वर्ण') राज्य कर रहा था। इन्हीं अनुश्रुतियों के अनुसार कालाशोक के पश्चात् मगध-राज्य नंदराज महापद्म के अधिकार में चला गया<sup>३</sup>। इस प्रकार यह द्वितीय संगति सम्भवतः ई. पू. ३७५ के समय की विदित होती है। अर्थात् यह प्रद्योत-वंश के अन्तिम समय की बात है।

काकन्दक-पुत्र यश की सहायता हेतु अवन्ति से गये हुए स्थविरों ने जो मदद दी, उससे वज्रियों के भिक्खु-संघ को हार खाना पड़ी; एवं उन्हें अपना आचरण नियमानुसार करना पड़ा। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रद्योत-वंश के अन्तिम समय में अवन्ति देश के बौद्ध स्थविरों का आदर्श अन्य स्थविरों को अपनाना पड़ा। इस विषयक सम्यक् स्थिति की जानकारी के लिये यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि 'काकन्दक' का अर्थ 'काकन्दी का रहनेवाला' तथा काकन्दी यही अभी की कागपुर (या काकपुर) है, एवं वह विदिशा के उत्तर में केवल २० मील है। कुरावर, कागपुर, उज्जैन आदि मालवा के स्थविरों को प्रद्योत वंश के अन्तिम काल में काफी मान्यता थी।

१. महावग्ग, ४.१७:—थेरो उग्गम नभसा गत्वा कोसम्बियं द्वितो। पावेयकां वन्तिकानं भिक्खूनं सन्तिकं लह् ॥
२. कालासोक के पश्चात् नन्दवशीय महापद्म ने मगध की गद्दी अपनायी। पाटलिपुत्र उस कालखण्ड में नगर कहलाता था। हर्ष-चरित से विदित होता है कि 'काकवर्ण शैशुनागि' की (पाटलिपुत्र) नगर के परिसर में हत्या कर दी गयी।
३. देखिये एच्. कर्न, 'मॅन्युअल् ऑफ़ इंडियन् बुधिसम्', पृ. १०४-१०६.



(६८)

उज्जयिनी

## आहुति : चतुर्दशी नन्द और मौर्य

मगध देश में जिस काल-खण्ड में विम्बिसार, अज्ञातशत्रु आदि राजे राज करते थे, उसी समय अवन्ति में प्रद्योत, पालक आदि राजे राज्य करते थे। सौराष्ट्र नाग वंश के अन्तिम राजा से नन्दराज महापद्म ने मगध का राज्य छीन कर उस भारत के अन्य राजाओं पर आक्रमण किया। महापद्म को पुराणों में 'सर्वक्षत्रान्तक' कहा गया है<sup>१</sup>। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय नन्दराज का साम्राज्य सतलज नदी तक फैला हुआ था। ग्रीक ग्रन्थकारों से यह विदित होता है कि कलिङ्ग तथा प्राच्य देश (अङ्गवङ्गादि) उसके अधीन थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य-काल में एक समय सुराष्ट्र (काठियावाड़) देश अस्तित्व स्वतन्त्र राज्य के रूप में था। मेगस्थेनीज के ग्रन्थ के उपलब्ध अवशेषों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। जूनागढ़ में प्राप्त शकक्षत्रप रुद्रदामन् के शिलालेख से विदित होता है कि सुराष्ट्र पर अधिकार प्राप्त होने पर मौर्य राजा चन्द्रगुप्त ने पुष्यगुप्त नामक एक अधिकारी को उस देश पर नियुक्त किया। ग्रीक ग्रन्थकारों से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त ने अपना साम्राज्य बढ़ाने हेतु सतलज एवं सिन्धु पार करके सेल्युकस निकेटर से कुछ प्रदेश भी हस्तगत किये।

**उज्जयिनी के कुमार :—**उपरोक्त वस्तुस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्ति-जनपद पहले ही 'सर्वक्षत्रान्तक' नन्दराज महापद्म के अधीन हो चुका था—जिसने संभवतः शैशुनाग तथा प्रद्योतवंश दोनों का अन्त करके सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) तक सर्व प्रदेश अपने अधिकार में ले लिया था। चन्द्रगुप्त मौर्य सुराष्ट्र भी जीत लिया। इन सब प्रदेशों की व्यवस्था देखने हेतु संभवतः चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ही, उज्जयिनी में एक शासकीय केन्द्र निर्माण करना आवश्यक

१. 'उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः ।'

२. ए. इ., ग्रन्थ ८, पृ. ३२ पश्चात् :—(जन\*)(स्या)र्ये मौर्यस्य राजा चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं ॥

गया। पाली साहित्य से विदित होता है कि सर्वप्रथम यहाँ स्थानीय शासक  
 रूप में बिन्दुसार की नियुक्ति हुई; तथा जब बिन्दुसार पाटलिपुत्र के गद्दी  
 पर बैठ गया, तब यहाँ अशोक की नियुक्ति हुई<sup>१</sup>। अशोक के समय में भी उसके  
 किसी पुत्र की यहाँ नियुक्ति हुई थी, यह धौली (जिला गंजाम) में प्रसारित  
 एक शिलालेख से विदित होता है<sup>२</sup>। उस पुत्र ('कुमार') के साथ 'महामात्र'  
 (अमात्य) भी लगाये गये थे। सम्भवतः बाद में इसी प्रकार के महामात्रों को  
 "कुमारामात्य" कहने लगे<sup>३</sup>। अशोक स्वयं जब यहाँ का कुमार बना, तब एक  
 रोचक घटना हुई।

सेट्टि धीता :—पाटलिपुत्र से उज्जयिनी जाते समय रास्ते में विदिशा में  
 अशोक को ठहरना पड़ा। उस समय वहाँ के नगर-श्रेष्ठी के घर पर वह रुका।  
 तब उसकी लावण्यवती कन्या "देवी" को देखकर, उसके सौन्दर्य से मोहित  
 होकर कुमार अशोक ने उससे विवाह कर लिया<sup>४</sup>। पाली ग्रन्थों में देवी को  
 प्रायः 'सेट्टि-धीता' नाम से उल्लेखित किया गया है। नाम मात्र से 'देवी'  
 वास्तविक 'महादेवी' बनने से इस प्रकार का उल्लेख उन ग्रन्थों में किया  
 गया हो। उनसे यह भी विदित होता है कि कुमार अशोक के उज्जयिनी  
 में रहते हुए ही देवी (सेट्टि-धीता) से महेंद्र और संघमित्रा नामक दो अपत्य  
 उसे प्राप्त हुये।

१. महावंसो ५.३९-४०.

२. धौली का प्रथम विभिन्न अभिलेख (हुल्श, असोक, पृ. ९२-९३) :—

"उजेनिते पि चु कुमाले एताये व अठाये निखामयिस।"

३. अशोक के समय में ऐसे कुमार तक्षशिला, कलिङ्ग-नगर आदि स्थानों पर  
 भी थे। सुवर्णगिरि (महैसूर) में युवराज ही था। वैशाली में गुप्तकाल में  
 'युवराजपदीय-कुमारामात्य' की मुहर पायी गई है। संभवतः वह युवराज के  
 साथ लगाए हुए अमात्य की होगी।

४. महावंसो, दीपवंसो आदि ग्रन्थों में। फिर भी देखिये महाबोधिवंस (आर्थर  
 स्ट्रॉंग की प्रति) पृ. ९८-९९। जिसमें इसकी मान्यता नहीं है।



**वैश्या टेकड़ी :**—सेट्टि-धीता वैश्य की पुत्री होने के कारण उज्जैन में सती वतः इसे “वैश्या” नाम से सम्बोधित किया जाता था। उज्जयिनी के सती इसी “वैश्या” द्वारा सम्भवतः एक बड़ा स्तूप एवं विहार बनाया गया। स्तूप को अब “वैश्या टेकड़ी” कहा जाता है। यह उज्जयिनी की ईशान्य दिशा तीन मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ ई. १९३८-३९ में जो उत्खनन हुआ उसमें लेखक ने भी भाग लिया था।

उज्जैन के परिसर में यह विशाल स्तूप मानो एक वृत्ताकार पहाड़ी ही है। इसका व्यास ११० मीटर से अधिक तथा ऊँचाई ३२ मीटर से अधिक है। इनसे इसी भव्यता एवं विशालता आँकी जा सकती हैं। श्यामल मुरुम को कूट कर बनाये गये वृत्ताकार “ठोस” अन्तःस्तूप को ईंटों की जुड़ाई से आवेष्टित करके इसे बनाया गया था। यह स्तूप “ठोस” समझ कर इसके मुरुम की बनावट के कारण, इसकी किसी भी पार्श्व के बजाय ऊपर से बीचोबीच खुदाई करना आवश्यक समझा गया। तदनुसार कुछ ४ मीटर गहराई की खुदाई हो पर चोटी पर यकायक एक डेढ़-दो फीट व्यास का वर्तुलाकार गड्ढा बन गया। इससे स्तूप के अन्दर की जो गरम भाँप निकल आयी, उससे खुदायी करनेवाले आदमी वहीं बेहोश हुआ। १०-१५ मिनट वह भाँप निकल जा रही थी। उसके बाद लेखक जो कुछ उसके अन्दर का देख पाया, वह केवल बहुत ही दूर तक जाने वाली खाली, खोखली, अन्धेरी गहराई थी<sup>१</sup>। जैसा कि स्तूप के दीवार

१. मेघदूत के शब्दों में यह ‘स्तन इव भुवः’ बतलाया जा सकता है।

२. अ. अ. रि. आ. डि., ग्वा. स्टे. (संवत् १९९५) (१९३८-१९३९);

पृ. १४ पश्चात्।

३. वहाँ अधिक खुदाई चलाने से कर्मचारियों की जान खतरे से बाहर नहीं थी। श्री मो. ब. गर्दे साहब, सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदय, उस समय कार्यालय मुख्यालय गवालियर चले गये थे। अतः लेखक ने स्थानीय मुख्याधिकृत के माते अधिक खुदाई बन्द करा दी। पश्चात् श्री गर्दे महोदय ने उस गड्ढे की जाँच करने के बाद, उसे बन्द कराकर पूर्ववत् मिटा दिया।

विषय में इस सुराख से ज्ञात हो सका, वह अन्दर से गुम्बज जैसी गोलाकार थी। संभवतः वह लकड़ी के लट्टों से बनायी हुई अर्ध-वृत्ताकार Arches (कमान) पर आधारित रहा होगा।

इस स्तूप को बाहर से आवेष्टित करने वाली ईंटें (१)  $22\frac{3}{4}'' \times 14\frac{1}{2}'' \times 3\frac{3}{4}''$ ; (२)  $22\frac{3}{4}'' \times 14\frac{1}{2}'' \times 3\frac{3}{4}''$ ; आदि परिमाणों की हैं। इससे यह सम्भव है कि ये ईंटें मौर्य-कालीन हैं, जब इस प्रकार की बड़ी-बड़ी ईंटें बनाने की प्रथा प्रचलित थी। इस स्तूप के आवेष्टन हेतु प्रयुक्त ईंटें अच्छी तरह से चूकी हुई नहीं थी। फल-स्वरूप स्तूप के कुछ पार्श्व भाग पर वे नष्ट हो चुकी थीं और वह भाग 'अनावृत' या खुला (exposed) हो गया था<sup>१</sup>।

सम्भवतः "वैश्या टेकड़ी" (या "देवी के स्तूप") की रचना अशोक के अन्य स्तूपों से भिन्न एवं पुरातन पद्धति की थी। वास्तु-शास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि स्तूप की ऊँचाई और स्तूप का व्यास, इनका अनुपात प्रति शताब्दी बदलता जाता है। व्यास की तुलना में ऊँचाई प्रति शताब्दी बढ़ती जाती है। इस स्तूप में यह ऊँचाई बहुत ही कम पायी जाती है। इससे भी इसकी प्राचीनता तथा मौर्य-कालीन अस्तित्व की बात प्रमाणित होती है<sup>३</sup>।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं। 'देवी स्तूप' के उत्खनन में एक पार्श्व पर एक मृष्ट (Glazed) रंगीन मृदभाण्डे-खण्ड पाया गया था। इसका रंग एक ओर से सफेद था, तथा इस पर लाल रंग की शंख की विचित्र आकृति थी<sup>२</sup>। यदि यह उसी युग का हो, तो मृदभाण्डों की बनावट में की गयी प्रगति का यह खण्ड द्योतक माना जा सकता है।

इसके अलावा इस स्तूप के ऊपर रजत की एक आहत मुद्रा<sup>४</sup>, तथा ढाली

१. अ. अ. रि. आ. डि. ग्वालियर स्टेट् (संवत् १९६५), पृ. १४ पश्चात्।
२. चीनी यात्री हुएन सांग ने उज्जयिनी समीप अशोक के स्तूप का उल्लेख किया है। देखिये वॉटर्स, यु. ट्रे. इ., भाग २, पृ. २३५.
३. अ. अ. रि. आ. डि. ग्वा. स्टे. (१९९५) पृ. १४ पश्चात्।
४. Silver punch-marked coin.



हुई एक अवन्ती-मुद्रा<sup>१</sup> भी प्राप्त हुई थी<sup>२</sup>। अवन्ति-मुद्रा पर हाथी एवं बौद्ध वृक्ष (?) अङ्कित थे। हाथी 'गजतम' श्वेतकेतु<sup>३</sup> का तथा बोधि-वृक्ष सम्बोधित-द्योतक है। यदि यह माना जाय तो, सम्भवतः उक्त मुद्रा अशोक के समयमि अथवा उसके थोड़े बाद की मानी जा सकती है। अतः "वैश्या टेकड़ी" ति स्तूप अशोक की रानी 'देवी' का बनवाया हुआ हो सकता है।

पाली साहित्य में देवी अधिकतर 'सेठि-धीता' (सेठ की लड़की) नाम से प्रसिद्ध है। इसीके उपलक्ष में स्थानीय बोली में वह "वैश्य-पुत्री" या "वैश्य" कही गई होगी। सम्भवतः इसी कारण देवी के स्तूप को "वैश्या टेकड़ी" रूप स्थानीय मान्यता मिली।

अशोक जब पाटलिपुत्र की गद्दी पर बैठा, तब उसके ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र<sup>४</sup> प्रायः उज्जयिनी के 'कुमार' के रूप में उज्जयिनी में ही उसका प्रतिनिधि निरूपित किया गया। उज्जैन के कुमार का उल्लेख—जो प्रथम विभिन्न धौली शिलालेख शासन में पाया जाता है—सम्भवतः उसीके सम्बन्ध में हों। कुछ लेखकों अनुसार अशोक को सेठि-धीता से दो पुत्र हुए, जिनके नाम 'उजेनिय' व 'महेन्द्र' थे<sup>५</sup>। किन्तु वास्तविकता यह दिखाई देती है कि 'उजेनिय' यह महेन्द्र का विशेषण है। राजपुत्रों के केवल 'उजेनिय' जैसे स्थान निर्देशक नाम इस कालखण्ड में नहीं रखे जाते थे<sup>६</sup>। महेन्द्र जब उज्जैन में अपनी माता के साथ रह रहा था, तब उसकी माता ने "टेकड़ी" जैसा यह विशाल स्तूप बनवाया हो, य

१. Cast Ujjain coin.

२. अ. अ. रि. आ. डि., ग्वा. स्टे. (संवत् १९९५) पृ. ७५ पश्चात्।

३. यह बोधिसत्त्व का जन्म के पूर्व का रूप था, जिस रूप में माया देवी के उदर में उसने प्रवेश किया था।

४. महावंसो, ५.१५० पश्चात्

५. मार्शल, ए गाइड टु सांची, पृ. ७

६. महावंसो ५.१६८-२७३.

सम्भव नहीं है। सम्राट् अशोक के समय में बौद्धों में फिर मतभेद होने लगे। उनके शिलालेखों में इस विषयक पर्याप्त प्रमाण मिलता है। इन मतभेदों को मटाने के लिए एवं संघ को एकरूपता प्रदान करने हेतु, अशोक ने मोगगलिपुत्त तिसस की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में “तीसरी बैठक” बुलवायी।

फलस्वरूप दूर दूर के स्थानों तथा विदेशों में धर्म-प्रचार करने हेतु धर्म-सहामात्र एवं बौद्ध आचार्य भेजे गये—जैसे कि सम्राट् अशोक के शिलालेखों से एवं पाली साहित्य से विदित होता है। सम्राट् अशोक का पुत्र महेन्द्र इसी समय मोगगलिपुत्त तिसस का शिष्य बन गया था। उसकी बहन संघमित्रा भी बौद्ध धर्म स्वीकृत करके कालान्तर में ‘भिक्षुनि’ बन गयी। महेन्द्र तथा संघमित्रा दोनों सिंहलद्वीप भेजे गये। सिंहलद्वीप जाने के पहले महेन्द्र ने अपनी माता देवी को भी, वह विदिशा में रहती थी तब, बौद्ध धर्म की दीक्षा देकर ‘भिक्षुनि’ बनाया, ऐसा पाली ग्रंथों से दिखाई देता है<sup>१</sup>।

चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसका पुत्र बिन्दुसार के समय मौर्य साम्राज्य की सीमा अरब सागर तक, तथा दक्षिण में चोळ पाण्ड्य, केरळ आदि द्राविड़ देशों तक पहुँच गयी। फलस्वरूप दक्षिण से सम्राट् के खजाने के लिए सोना, रत्न आदि बड़े तादाद में आने लगे, तथा परदेशों से भी व्यापार बहुत ही बढ़ गया। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस वस्तुस्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। उसी ग्रन्थ से यह भी विदित होता है कि वैडूर्य-पहाड़ी से उपलब्ध होने वाले वैडूर्य मणि<sup>२</sup> (Agate) पाटलिपुत्र आदि उत्तर भारत के शहरों को जाते थे।

१. कर्न्, मॅ. ड. बु., पृ. ११६.

२. कौ. अ., २.११ : यहाँ गोमेदक, गोमूत्रक, पुष्यराग आदि वैडूर्य के भेद बताये गये हैं। वैडूर्य की पहाड़ी नर्मदा नदी के पास थी। जैसा कि स्कन्द-पुराण से विदित होता है, वह मान्धाता के समीप कहीं थी। यहाँ से वैडूर्य प्रथम उज्जैन जाते थे। वहाँ वे उचित रूप बनाएँ जाने के बाद उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत को भेजे जाते थे ऐसा विदित होता है।



(७४)

उज्जयि  
ति

दक्षिण के वैदूर्य आदि रत्न, सोना आदि उत्तर को जाने का उस समय प्रमुख रास्ता उज्जयिनी होकर ही जाता था। उत्तर भारत से आने वाले अन्य प्रकार के रत्न इसी मार्ग से दक्षिणापथ को जाते रहे। 'दि पेरिप्लस एरिथ्रियन् सी' नामक ई. ८० के करीब लिखे हुये ग्रंथ के अनुसार गोमेद (Onyx) उज्जयिनी से बड़ी मात्रा में भरकच्छ (भड़ोच) तथा आगे दक्षिण में अन्य स्थानों को या परदेशों को भेजे जाते थे। मेघदूत में दिये हुये उज्जयिनी के वर्णन में कालिदास कवि (ई. ४००) ने विभिन्न प्रकार के मणियों का वर्णन किया है—उस समृद्धि का उद्गम इसी काल-खण्ड में है।

## आहुति : पञ्चदशी कुम्हार टेकड़ी

ग्राहम ऐतिहासिक टीला ( Early historic mound ) : देवी के स्तूप 'वैश्या टेकड़ी' के पूर्व में करीब १ किलोमीटर की दूरी पर दूसरा एक रातत्त्विय टीला, ई. १९३८-३९ में पाया गया। यह कुल ५ से ६ मीटर चौड़ा, करीब २५ मीटर लंबा, तथा ८ से १२ मीटर चौड़ा था। यह एक ओर ढोड़ा ढालू, तथा दूसरी ओर ऊँचा था। मृद्भाण्ड बड़ी तादाद में पाये जाने के कारण, इसे 'कुम्हार टेकड़ी' नाम प्राप्त हुआ था। इसके उत्खनन किये गये अवशेषों से यह बात स्पष्ट थी कि यह एक श्मशान-भूमि थी। इसके ऊपर, तथा इसके ऊपर के स्तरों में प्राप्त मुद्राओं से यह बात स्पष्ट हुई कि यह टीला ई. पू. २ वीं शताब्दी के पूर्व का था।

कुम्हार टेकड़ी के कंकाल :—इस टीले का उत्खनन, गवालियर रियासत के पुरातत्त्व विभाग के अधीक्षक श्री मो. ब. गर्दे साहब के निर्देशन में लेखक ने स्वयं ई. १९३८-३९ में प्रारम्भ से अन्त तक किया<sup>१</sup>। इसमें कुल ४२ कंकाल अथवा अन्य अवशेष उपलब्ध हुए। प्रथम अवशेष उपलब्ध होने के बाद, तृतीय सप्ताह में ही इनकी उपलब्धि के विषय में भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण को अवगत कराया गया। उनके एक अधिकारी उक्त स्थान पर पहुँचने के लिये और एक या डेढ़ सप्ताह लग गया। उस वक्त सब कंकाल अनावृत हो गये थे। जैसा कि उक्त अधिकारी महोदय ने बताया, इनमें से कई कंकाल दीर्घ काल अनावृत (exposed) होने के कारण विशीर्ण (disintegrated) होने लगे थे। अच्छा यह होता कि वे कंकाल आवृत किये जाने के पश्चात्, सर्वेक्षण के कार्य हेतु शीघ्रतम मिट्टी में पूर्ववत् ढँके जाते।

४२ कंकालों में से १८ कंकाल सर्वेक्षण द्वारा अच्छी हालत में कलकत्ता लिये गये। अन्य कुछ ले जाने की हालत में नहीं पाए गए, तथा कुछ ले जाने

१. अ. अ. रि. आ. डि. (गवालियर स्टेट) (संवत् १९९५), पृ. १४



के पश्चात् भी अध्ययन हेतु अपूर्ण माने गये । सर्वेक्षण के अधिकारी स्थापित करने के पश्चात् भी शहर के बाहर कुछ मील दूरी पर, उन सब को ले जाकर शहर से उचित साहित्य ले जाना, उनका ठीक-ठीक पँकिंग आदि करना आदि किया था । फिर भी सर्वेक्षण के अधिकारी ने जो भागीरथ प्रयत्न किये, उनके स्वरूप उज्जैन के आदि ऐतिहासिक मानव के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी हुई है<sup>१</sup> ।

**शवों की स्थिति :**—प्राप्त कंकालों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उनमें उनके शव एक दूसरे से १ से २ फीट की दूरी पर—प्रायः उत्तर-दक्षिण दिशा में—दफनाए गये थे । साधारणतया इनके सिर उत्तर की ओर, तथा पैर दक्षिण की ओर रखे जाते थे । इनमें से बहुत से अपने पीठ पर लिटाये गये थे । थोड़े पार्श्व की ओर झुके थे । कुछ ऐसे भी थे, जो उपरोक्त की उलटी दिशा में लिटाये गये थे,—उत्तर की ओर पैर एवं दक्षिण की ओर सिर की स्थिति में और अन्य कुछ ऐसे भी थे, जो अपने सीने से जमीन छू रहे थे । कुछ तो घुटने पर मुड़े हुए भी थे ।

चूँकि इन कंकालों की यथोचित जाँच होना आवश्यक था, इस लिये टीले—कुम्हार टेकड़ी—का उत्खनन अधिक नहीं कराया गया । कंकाल निकालने हेतु सर्वेक्षण के अधीन करने पर यहाँ का उत्खनन बन्द कराया गया । फिर भी यहाँ पायी जानेवाली रक्षा की सतहें, मृदभाण्डों की संख्या, जलीय हड्डियाँ आदि से स्पष्ट हुआ कि यह एक मरघट एवं कब्रस्तान स्वरूप आदि ऐतिहासिक श्मशान है<sup>२</sup> ।

- 
१. यह जानकारी भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण ( Anthropological Survey of India ) के वरिष्ठ अधिकारियों ने लेखक को दे दी । विषयक लेखक के हार्दिक धन्यवाद ।
  २. Early historic "Burial-cum-Cremation ground." अ. रि. आ. डि., ग्वा. स्टे. १९९५, पृ. १४

**मरघट की मुद्राएँ:**—कुम्हार टेकड़ी पर तथा उसकी ऊपरी सतहों में उज्जैन के “हाथी और चैत्य” ( या ‘मेरु पहाड़’ )<sup>१</sup> के चिह्नों से अंकित मुद्राएँ पायी गईं। यह तांबे की था तथा ढली हुई थीं। इन्हीं के अनुकरण में ‘सिरि सातकर्णि’ नामक सातवाहन राजा ने अपने सिक्कों पर उसी पार्श्व में “हाथी एवं चैत्य” अंकित किया हुआ है। सातकर्णि द्वारा प्रचलित किया गया यह मुद्रा-प्रकार “मालवा प्रकार” कहलाया जाता है। इसके आधार पर उपर्युक्त, कुम्हार टेकड़ी की मुद्राएँ ई. के पूर्व दूसरी शताब्दी की, या उसके पूर्व की मानी जा सकती हैं। सम्भवतः यह अशोक के समय की ही हैं।

**पुरातत्त्वीय अवशेष :**—इसलिए कुम्हार टेकड़ी के कंकालों का समय मौर्य-कालीन या तत्पूर्व-कालीन होना चाहिये। इसके पूर्वोक्त भागों की खुदाई में प्राप्त प्रमुख पुरातत्त्वीय अवशेषों में मृद्भाण्डों के कुल्हड़, दोनी, तश्तरी, लोटा, जार जैसे बड़े वर्तन आदि प्रकार, तथा शंख, मणि, कर्णपूर, ताटङ्क, एवं खिलौने आदि मुख्य हैं।

उपर्युक्त मानव-कंकालों के साथ सीपों के तथा अन्य प्रकार के मणि काफी मात्रा में पाये गये। उनके मस्तकों के पास सीपों के बनाये हुए कर्णकुण्डल भी कई व्यक्तियों के सम्बन्ध में उपलब्ध हुए। एक कंकाल के मुंह में दाँत मौजूद थे, जो रक्तवर्ण—यानी सदा के लिये लाल रंग से रंजित—किये हुए, दिखाई देते थे। अन्य दो कंकाल ऐसे भी थे, जो किसी मुद्रा में पैर रखकर गुजरे हुए आदमियों के जैसे लगते थे।

**दफनाने के प्रकार :**—ये कंकाल इनके पूर्व में जलाये गये सैंकड़ों शरीरा-वशेषों के तथा रक्षा के साथ सहस्रों के तादाद में पाये जाने वाले मृद्भाण्डों के (शराव, कटोरियाँ आदि के) ढ़कड़ों के बीच प्राप्त हुए थे। कुछ कंकालों के कुछ भाग पहले ही विध्वस्त (disturbed) हो चुके थे, या ढालू भूमि पर से ढल चुके थे। यहाँ के एक बड़े मृद्भाण्ड (हाण्डा) के अन्दर कुछ हड्डियाँ, कुछ



शराव, कई कटोरियाँ आदि के खण्ड, जली हुई जैविक वस्तुएँ (Organic substance), राख आदि उपलब्ध हुए। यह घड़ा पूर्णवस्था में प्राप्त हुआ। इस प्रकार के अन्य तीन-चार घड़े—जो कि थोड़ी बहुत भग्नावस्था में प्राप्त हुए—उनमें भी इसी प्रकार हड्डी, राख, जली हुई जैविक वस्तुएँ आदि पायी गयी थी।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि कंकालों के पूर्व के शव पूर्णवस्था में न दफनाते हुए, जलाकर अंशतः दफनाए गये। यानी जली हुई हड्डियाँ इकट्ठी कंकालों में दफनाये गये। कंकालों की उत्तर-क्रिया को पूर्ण संवरण (full burial) तथा घड़ों के साथ की गई उत्तर-क्रिया को घट-संवरण (pot-burial) कहा जा सकता है। कुम्हार टेकड़ी का अधिक उत्खनन किया जायगा, तो अन्य प्रकार की उत्तर-क्रियाएँ भी यहाँ प्रचलित थी, यह बात सम्भवतः स्पष्ट हो जावेगी। सम्भवतः, यह मरघट मिश्रित संस्कृति का द्योतक माना जा सकता है। नीचे स्तर स्थानीय जनता से सम्बन्धित रहे हों, एवं उपरोक्त कंकाल वाले नये स्तर बाहर से आयी हुई नई जातियों से सम्बन्धित हो, यह भी सम्भव है।

**सर्वेक्षण की जाँच :—**जैसा कि ऊपर लिखा गया है, भारतीय मानक शास्त्रीय सर्वेक्षण द्वारा, कुल ४२ में केवल १८ कंकाल निरीक्षण, जाँच तथा अभिवेदन (रिपोर्ट) के लिए योग्य पाये गये। उनकी जाँच का सारांश निम्न प्रकार है :—

Anthropological Survey of India के कुछ अधिकारियों ने लिखा है—  
हुए “Human Crania from the Historical Site at Ujjain” नामक लेख से उद्धृत :—

“...from the craniological data, it appears that the basic cranial type of the Ujjain series is long-headed. There is no evidence of a bracycranial skull in either sex.....The fact emerges that with the only exception of palatal index, all other cranio-facial proportions are notably identical in the two sexes

Considered as a whole, we find the Ujjain crania possessing the following characters : Vertical contour of the skull is ovoides to byrsoides or ellipsoides in form, moderate parietal eminences, and with the slope outward the parietal eminences, not very steep.

Forehead is vertical or slightly inclined; the parietooccipital slope is gradual and occipital squama moderately projecting. Face is of medium height with moderate mid-facial width, slender zugomatic arches, oblong or square orbits, medium to broad nasal aperture and occasionally with slight degrees of subnasal prognathism. It is a point of interest that sexual demorphism is reflected only in dimensions and not in proportions."

The Report goes on to state : "in some important characters and indices, Ujjain skulls are virtually identical with those of the Punjabi and Rajput skulls with possible exception of the wide nasal aperture of the Ujjain crania.....In L-B index the mean value of the male Ujjain material coincides fairly closely with those for the Punjabi and Rajput males. Among the Ujjain skulls, the 70-71 indices, so typical for the Indo-Aryans, are not so frequent, but majority of the skulls lie in the cranial index group of 68-74. There are also few hyperdolichocranic skulls in the Ujjain series (65-69) index, a feature occurring also with the Churha Punjabi or with Indo-Aryans or Caspians."

सर्वेक्षण द्वारा जाँच किये गये कुल १८ कंकालों में से ११ पुरुषों के एवं ७ स्त्रियों के थे। ऊँचाई में वे मध्यम आकार के थे। भाल-पट्टिका सीधी, या किञ्चिन्मात्र पीछे झुकने वाली थी। यह जाति लंबशीर्षक होकर, इसके शीर्ष का अनुपात (औसत) ७३.०० था, जिसमें साधारण अन्तर (variations) भी थे।



इस जाति की नासिका ऊँची एवं पतली थी, जिसका अनुपात (औसत) ५३ के आसपास का था। सद्यःकालीन राजपूतों के तथा पंजाबियों के यही अनु होते हैं। अतः कुम्हार टेकड़ी की जाति इनसे सम्बन्धित, अतः रिस्ले के “आर्यन्” वंश की मानी जा सकती है।

यही उपर्युक्त कंकाल अवन्ति-देश के लोगों का वंश-विषयक सर्वप्रमाण है। स्थानीय जनता में सम्भवतः यह आर्यों का स्तर रह रहा है। बौधायन धर्म-सूत्र में ‘अवन्ति’ विषयक भाल्लवियों की एक पुरानी गाथा उद्धृष्ट की गई है। उसके अनुसार अंग, मगध, सुराष्ट्र, दक्षिणापथ आदि प्रदेशों के लोग (भाल्लवियों के काल-खण्ड के पूर्व में ही) मिश्रित-वंश के बन गये थे। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है, कि बौधायन धर्म-सूत्र यही उन ग्रन्थों आद्य ग्रन्थ है, जो कि राशियों के नाम बतलाते हैं<sup>२</sup>, एवं यवन (Greek) संस्कृति का परिचय दिलाते हैं।

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्भवतः अवन्ति को मिश्रित देश-स्वरूप मौर्य-काल के पूर्व में ही मिल चुका था। पुणिक, प्रद्योत, गोपाल आदि प्रद्योत वंश के राजाओं के नामों से भी यही स्पष्ट होता है। फिर भी कंकाल के “आर्यों” के विषय में कई बातें अनिर्णीत रहती हैं। चूँकि समीप के महत्त्वपूर्ण वसति स्थान नहीं है, इसलिए यह सम्भव है<sup>३</sup>, कि यह श्मशान

१. बौ. ध. सू., १.१.२७ :—‘अथापि भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति।

अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथः। उपावृत्तिस्सन्धु-सौवीरा एते संकीर्णयोनयः॥’

२. दीक्षित, भा. ज्यो. इ.

३. अ. अ. रि. आ. डि. ग्वा. स्टे. (१९९५), पृ. १७ :—

Possibly these people constituted a distinct sect and had their separate ground for the disposal of the dead, away from the city, as no traces of habitation have been traced so far, within a reasonable distance from this site.

समीप के विहार के भिक्षु तथा भिक्षुणियों से ही सम्बन्धित था<sup>१</sup> ।

चूँकि यहाँ इनके पूर्व के कई स्तर प्राप्त हैं, इस लिये यह भी संभव है कि इस विहार की नींव देवी के आगमन के बहुत पूर्व—प्रायः बुद्ध के काल में ही—डाली गयी थी ।

- 
१. यहाँ के पुरुष एवं स्त्रियों के कंकाल सम्भवतः बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के होंगे ।



## आहुति : षोडशी

## शुङ्ग

उज्जयिनी की शुङ्ग कालीन समृद्धि आंशिक रूप में, सांची एवं भरहुत के स्तूपों पर प्राप्त उज्जैन के लोगों से सम्बन्धित शिलालेखों से, आंकी जा सकती है। सांची शिलालेखों अध्ययन करने के पश्चात् डॉ० व्यूलर ने लिखा है कि यहाँ पर उज्जयिनी निवासियों के दान विषयक कुल ३५ लेख मिले हैं। उनके अनुसार उज्जैन लेख अन्य किसी भी नगर-निवासियों की अपेक्षा अधिक है<sup>१</sup>। मेरे मत से उज्जैन का क्रम दूसरा है<sup>२</sup>। उज्जैन जो सांची से अधिक दूरी पर है, वहाँ इतने अधिक दानोल्लेखों का प्राप्त होना भी आश्चर्य-जनक बात है। विदिशा की अपेक्षा-जो सांची के निकट है, उज्जयिनी से सम्बन्धित संख्या अधिक है। सांची के स्तूप क्र० १ और तत्सम्बन्धित विहार का निर्माण-कार्य मौर्य काल में प्रारम्भ हुआ। उससे सम्बन्धित वेदिका सम्भवतः सात-वाहन काल में बनी होगी। उज्जैन से सम्बन्धित अधिकांश दानोल्लेख इसी काल-खण्ड के हैं। यह भी सम्भव है कि मौर्यकाल के समान, शुंग-सातवाहनों के समय में भी, उज्जैन उनके विभिन्न साम्राज्यों का एक प्रमुख प्रशासकीय केन्द्र बना रहा था।

उज्जयिनी के व्यक्तियों द्वारा सांची स्तूपों के लिए दिए गए दानोल्लेखों से यह स्पष्ट होता है, कि इस समय यहाँ धनिकों की कमी नहीं थी। लेखों की जाँच करने पर प्रतीत होता है कि उनमें से एक तिहाई हिस्से से अधिक लेख बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के हैं, जो संभवतः उज्जैन के किसी विशाल विहार से आए हुए थे। यह भी स्पष्ट होता है कि भिक्षुओं की अपेक्षा में भिक्षुणियाँ (या तापसियाँ) उज्जैन में

१. ए. इ. भाग-५, पृ. ९७ इत्यादि।

२. कुररगृह ग्राम के भिन्न-भिन्न रूपों में कुल ४० दानोल्लेख हैं। अतः इसका स्थान प्रथम है।

संख्या का अनुपात कुछ भी हो—दुगुना या अधिक दान करती थीं<sup>१</sup>। इससे यह कहना भी सम्भव हो जाता है कि उज्जयिनी में भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिए अलग-अलग संधाराम रहे होंगे।

उत्तर भारत में प्रायः हर एक राजधानी के समीप कुछ दूरी पर बौद्धों के विहार एवं उनसे संलग्न छोटे बड़े स्तूप अशोक के समय में, तथा उससे आगे भी, बनते गए। माहिष्मती के समीप कसरावद, विदिशा के समीप सांची, तथा उज्जयिनी के समीप 'वैश्या टेकड़ी' आदि स्थानों पर ऐसे ही स्तूप तथा विहार निर्मित किए गए थे।

शुङ्गों के समय में साम्राज्य की क्या स्थिति थी, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इसकी कम से कम दो प्रमुख शाखाएँ थीं। शुंगों की एक शाखा अयोध्या में और दूसरी विदिशा में राज्य कर रही थी। भर-हुत का प्रदेश शुंगों के राज्य के अन्तर्गत अवश्य था; लेकिन किन शुंगों के अधीन था, यह कहना कठिन है। इस विषयक तर्क के लिए वहाँ से प्राप्त तोरण पर उत्कीर्ण एक लेख सहायक हो सकता है।

इस लेख के अनुसार "शुंगों के राज्य में राजा गार्गीपुत्र विश्वदेव के पौत्र गोतीपुत्र आगरज के पुत्र वात्सीपुत्र धनभूति द्वारा यह तोरण बनवाया गया एवं उस पर निर्मित कलाकृति उत्कीर्ण करवाई गई<sup>२</sup>"। इसमें किसी एक शुंग राजा के राज्य विषयक न बताकर 'शुंगों के राज्य' का उल्लेख किया गया है। संभव है कि उस समय कई शुंग राजे साथ-साथ ही राज्य कर रहे थे।

इनमें 'भिक्षुणियों' के मिता, वसुमिता, सिंहदत्ता, काड़ी (काली), तथा 'ताप-सियों' के-नुसामिता, इसिमिता धमदत्ता, सिंहदत्ता; और उपासिकाओं के सिरिका आदि नाम पाए जाते हैं। 'धमदत्ता' नाम उज्जयिनी की भिक्षुणी एवं तापसी दोनों के साथ मिलता है। 'भिक्षुनी=तापसी' समीकरण मानने पर दोनों एक ही प्रतीत होती हैं।

'सुगानं रज्जो रज्जो गागिपुतस विसदेवस पोतेन गोतिपुतस आगरजस पुतेन वाछिपुतेन धनभूतिना कारितं तोरणं सिलाकमांतो उपनो।'।



सांची में बड़े स्तूप के एक लेख में उत्कीर्ण है—“उज्जयिनी से आई विश्व की पत्नी प्रजावती मूला का दान”<sup>२</sup> । विश्वदेव स्वयं भी उज्जयिनी से आया या नहीं यह ज्ञात नहीं होता, किन्तु उसकी पत्नी उसी के साथ सांची आई होगी अतः यह सम्भव है। साथ ही उज्जयिनी का विश्वदेव और भरहुत तोरण वाले विश्वदेव का एक ही होना असम्भव नहीं है। सांची से (यानी विदिशा से) आगे भरहुत (यानी शुक्तिमती के समीप) आया होगा यह कहना उक्त दोनों उत्कीर्ण लेखों की अक्षर-वाटिका से सम्भाव्य प्रतीत होता है।

भरहुत के लेख में विश्वदेव को ‘राजा’ की उपाधि से विभूषित किया है, किन्तु सांची लेख में वैसा नहीं है। भरहुत के लेख में आगरज और धन में से किसी को भी राजा नहीं कहा गया है; तथापि कौशाम्बी आदि स्थानों में आगरज के सिक्के प्राप्त हुए हैं। भरहुत के एक अन्य शिला-लेख में ‘राजा भूति के पुत्र कुमार वाघपाल’ का उल्लेख अवश्य है<sup>२</sup> ।

डा० आलतेकर का ऐसा मत है कि आगरज के सिक्के अक्षरवाटिका अनुसार ई० पू० प्रथम शताब्दी के न होकर द्वितीय शताब्दी के होना चाहिए। इससे, भरहुत तोरण के अक्षरवाटिका का, समय के दृष्टि से, इन सिक्कों के सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है, तथा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उज्जयिनी के सिक्कों के कुछ चिह्न कौशाम्बी के सिक्कों पर भी शुंग-काल में क्यों उपलब्ध होते हैं। आगरज के स्वयं के सिक्कों पर भी ‘उज्जैन चिह्न’ प्राप्त होता है।

- 
१. ‘उज्जैनिया विसदेवस प्रजावतिया मुलाया दानं’ सांची स्तूप-१, लेख (व्यूलर)
  २. ‘धनभूतिस रजनो ‘पुतस कुमारस वाघपालस’ कनिधेमः भरहुत, पृ. १२४, ५४; एन. जी. मजुमदार—स्कल्पचसं इन इण्डियन म्यूजियम् (कलकत्ता) भाग—१.

आहुति : सप्तदशी

शुङ्गों का राज्य

शुङ्ग कालीन मुद्राएँ :—यह तो निश्चित है कि शुङ्गों के साम्राज्य में पाटलिपुत्र, अयोध्या एवं विदिशा यह तीन महत्वपूर्ण नगर अन्तर्भूत थे । पुष्यमित्र शुङ्ग ने शाकल-नगरी ( सिवालकोट, प. पंजाब ) भी अपने आधिपत्य में लायी थी । विदिशा से उज्जयिनी अधिक दूर न होने के कारण यह भी संभव है कि विदिशा से उज्जयिनी पर भी अधिकार चलाया जाता था । क्या इस विषयक कोई प्रमाण उपलब्ध हैं ?

संभवतः इस विषयक कुछ प्रमाण स्पष्ट स्वरूप में उज्जयिनी में पायी जाने-वाली मुद्राओं में उपलब्ध हैं । इनमें से एक प्रकार की मुद्राएँ—जिनकी एक ओर “स्वस्तिक मय तौरस” चिह्न हैं, तथा दूसरी ओर ‘नन्दी एवं महाकाल, हैं—उज्जयिनी में तथा आसपास काफी पायी जाती हैं । “स्वस्तिक मय तौरस” विदिशा-एरण के प्रदेशों के सिक्कों की विशेषता मानी जाती है । फिर भी प्रा. रॅप्सन् ने इस प्रकार से संबन्धित अन्य सिक्कों को एरण-विदिशा के न मानते हुए, उज्जैन तथा पश्चिम मालवा के माना है । इन पर “स्वस्तिक मय तौरस” के साथ ‘महाकाल और उज्जैन चिह्न’ पाए जाते हैं<sup>१</sup> । इन पर ‘रत्रोज’ अक्षर पढ़े जा सकते हैं । अन्य प्रमाणों के अभाव में प्रा-रॅप्सन् ने इनको सातवाहन-कुल की मुद्राएँ माना है । किन्तु उनके पढ़े हुए अक्षरों का उस कुलके किसी भी राजा के नाम से मेल नहीं होता है । प्रा.रॅप्सन् ने इन्हें—बनावट, अक्षर-वाटिका आदि के आधार पर—ई. पू. दूसरी शताब्दी का माना हुआ है । ‘नन्दी एवं महाकाल’ वाली मुद्राएँ भी इसी प्रकार उज्जैन की हैं, यह स्पष्ट है । संभवतः वे भी ई. पू. दूसरी शताब्दी की ही हैं ।

१. रॅप्सन्, कॅटलॉग, पाठ्य, पृ. २. “स्वस्तिक मय तौरस” किसी अन्य सातवाहन के सिक्कों पर दिखाई नहीं देता है ।



अन्य प्रकार की कुछ मुद्राओं पर भी ई. पू. दूसरी शताब्दी की अक्षरवालि में 'उजेनिये' लिखा हुआ पाया है<sup>१</sup> । इन पर उज्जैन-चिह्न के अतिरिक्त 'हाथी' पाया जाता है । उपरोक्त मुद्राओं से इस प्रकार की मुद्राओं का संबंध स्पष्ट है । 'हाथी' यह संभवतः 'गजतम श्वेतकेतु' से संबन्धित है, एवं इस युग वह बौद्ध धर्म का प्रतीक माना जा सकता है । इस आधार पर सम्भवतः अशोकादि बौद्ध-धर्म-प्रवण मौर्य सम्राटों की राजसत्ता इङ्गित करता है ।

बौद्धों द्वारा विपक्ष को मदद करने पर पुण्यमित्र शुङ्ग बौद्धों पर चिढ़ गया। उन्हीं दो अश्वमेध भी किए। इसके समय में हिन्दु-धर्म-प्रवण राजसत्ता प्रस्थापित होने का कारण मुद्राओं पर भी 'गजतम' का चिह्न विशेष उपयुक्त नहीं रहा होगा। शुंग सत्ता के समय में, 'हेलिओडोरस्' जैसा यवन-दूत भी भागवत-धर्म के प्रभाव में आया एवं शुंगों की राजधानी विदिशा में ही उसने वासुदेव (विष्णु-भगवान्) की मूर्ति ध्वज के रूप में (?) स्थापना की । घोसुंडी जैसे अन्य, इसी काल-खण्ड (ई. पू. दूसरी (शताब्दी) के अभिलेखों में भी संकर्षण-वासुदेवों के मन्दिर स्थापित हुए<sup>२</sup> । संभवतः शुङ्ग वैष्णव पंथ के या भागवत धर्म के अनुयायी थे । उज्जयिनी की कुछ मुद्राओं पर 'गजतम' की जगह 'लक्ष्मी के अभिषेक' ने ले ली है, किन्तु हाथी लक्ष्मी का अभिषेक कर रहे हैं<sup>३</sup> । 'गज-लक्ष्मी' से अंकित मुद्राएँ संभवतः शुङ्ग-वंश-कालीन हैं ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वैष्णव चिह्न भी उज्जयिनी की प्राचीन मुद्राओं पर पाए जाते हैं । इनमें से कुछ "अष्टार-चक्र" से अंकित हैं । वेद, ब्राह्मण-

१. स्मिथ, कॅटलॉग, पृ. १३३; ज. स. ए. सो. वे. ( न्यू. नं. ), लेटर्स, प्र. (१९३६), भा. ३. पृ. ५१; ६३.

२. पतञ्जलि के महाभाष्य में भी बलगम (=संकर्षण) तथा केशव (=वासुदेव) के मन्दिरों का उल्लेख है । महा., १ पृ. ४३५:- 'प्रासादा धनपति-केशवानामित्येतन्न सिध्यति ।'

३. अल्लन्, कॅटलॉग, फलक ३६, क्र. ४-५.

आदि के अनुसार “अष्टार-चक्र” सूर्य-विष्णु से सम्बन्धित हैं। “उज्जैन-चिह्न” से अंकित कुछ अन्य सिक्कों पर ई. पूर्व पहिली-दूसरी शताब्दी की अक्षर वाटिका में “काड़” शब्द लिखा गया है। यह ‘उज्जैन-चिह्न’ विशेष प्रकार के, यानी ‘द्विवृत्तात्मक’ हैं<sup>१</sup>। इन सिक्कों पर कभी-कभी घोड़े की एक प्रतिमा भी प्राप्त होती है<sup>२</sup>। क्या यह घोड़ा केवल सूर्य-भगवान् का निदर्शक है, या पुण्यमित्र शुंग के अश्वमेध का निदर्शक है? पुण्यमित्र से जो अश्वमेध याग कराया गया, वह महाभाष्यकार पतञ्जलि अर्थात् ‘गोनर्दीय’ के द्वारा कराया गया<sup>३</sup>। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है—‘इह पुण्यमित्रं याजयामः’ (=हम यहाँ पुण्यमित्र से याग करवा रहे हैं।) “यहाँ” का क्या अर्थ है? पाटलिपुत्र में, अयोध्या में, विदिशा में या उज्जयिनी में? अथवा उसने जो दो अश्वमेध यज्ञ किए थे, उनमें से एक यदि अयोध्या का माना जाय, तो क्या दूसरा उज्जयिनी का था<sup>४</sup>?

उज्जयिनी के द्विवृत्तात्मक कुछ अन्य सिक्कों पर “कपर्दी” शिव ध्यान-मुद्रा में बैठे हुए हैं। उनके हाथ में दण्ड या “लकुट” है। संभवतः यही लकुलीश (लकुलीश) शिव का अन्य रूप है। इसी प्रकार की एक, ध्यान मुद्रा तथा पद्मासन में बैठी हुई, ई. १० वीं शताब्दी की लकुलीश की प्रतिमा, चौबीस खंवा के समीप, टाउन् इम्प्रुवमेंट ट्रस्ट की योजना के अन्तर्गत किए हुए, ‘योजना-बाह्य’ उत्खनन में १९६३-६४ में निकल आयी थी। इसे पश्चात् लेखक ने “महाकाल-

१. ज. न्यू. सो. इ., ग्रन्थ ८, भाग १. पृ. १३. (Ujjain Symbol with double circles).

२. इस प्रकार का घोड़ा माहिष्मती तथा कौशाम्बी के सिक्कों में, तथा कसरावद स्तूप के समीप प्राप्त सिक्कों में पाया गया है।

३. गोनर्द यही गोनद्ध है, जो उज्जयिनी तथा विदिशा के बीच व्यापारिक मार्ग पर था।

४. अयोध्या अभिलेखः—‘द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुण्यमित्रस्य.....’ तथा मालविकाग्निमित्र, अंक ५.



मन्दिर संग्रह" में रखवा दिया था। कापालिक शैवों के जैसे लकुलीश-पाशु भी उज्जयिनी के महाकाल के भक्त थे, एवं उनका पंथ भी उज्जयिनी में था। ऐतिहासिक काल से दृष्टि-गोचर होता है, यह अब माना जा सकेगा।

**उज्जयिनी के व्यापार-मार्गः—**उज्जयिनी से व्यापार-व्यवहार हेतु जो मान्य शहरों को ले जाते थे, उनमें से कुछ इस काल-खण्ड के साहित्य में उल्लेख पाए जाते हैं। वह तथा अन्य मार्ग पुराने होते हुए भी साहित्यिक उल्लेखों में अभाव में उनके संबन्ध में पूर्व-कालीन स्थिति, पश्चात् होने वाले स्थित्यन्तर आदि विषयक अधिक जानकारी नहीं पायी जाती। इस समय लिखे हुए महाभाष्य नामक व्याकरण ग्रन्थ से विदित होता है, कि "उज्जयिनी से (रात होते ही) निकला हुआ (आदमी), माहिष्मती (=महेश्वर) में सुबह (होगी, ऐसी) कल्प करता है<sup>१</sup>।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'उज्जयिनी से महेश्वर, तक पुराना सीधा रास्ता था, जिसे एक रात में काटा जा सकता था<sup>१</sup>। यह सीधा रास्ता धार के कुछ पूर्व से निकल कर माहिष्मती को चला जाता था, और इससे दोनों के बीच का अन्तर केवल ७०-७५ मील मात्र था<sup>२</sup>। रथ या घोड़े से एक रात इसे काटना मुश्किल नहीं है।

महाभाष्य में पाटलिपुत्र को जाने वाले रास्ते को बार-बार उल्लेख किया जाता है। महाबोधिवंश नामक पाली ग्रन्थ के अनुसार भी उज्जयिनी से पाटलिपुत्र को एक रास्ता जाता था, जो विदिशा होकर चला जाता था।

१. महाभाष्य; ग्रन्थ २.पृ. ३५:—"एष तस्याभिप्रायः—उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योदयनं सम्भावयेयेति। तं चास्याभिप्रायमादित्यो निर्वर्तयति। यदिह वर्तमानकालता युक्ता, स्यादुज्जयिन्याः प्रस्थिते माहिष्मत्यां सूर्योदयं सम्भावयते, सूर्यमुद्गमयतीति....।"

पतञ्जलि स्वयं गोनर्द का निवासी होने के कारण यहाँ की स्थिति अच्छी जानता था।

२. इस विषयक मेरे मित्र श्री गर्ग द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार, यह रास्ता मराठों ने भी उपयोग में लाया। यह जानकारी भी उन्हीं से प्राप्त हुई।

सुत्तनिपात नामक अन्य पाली ग्रन्थ में भी पैठण से पाटलिपुत्र (पटना) तक जाने वाला एक राजमार्ग बताया गया है। सुत्तनिपात का पूर्वार्ध अशोक के समय में विदित था, ऐसा अशोक के अभिलेखों से सम्भव होता है। उक्त राजमार्ग पर पतिट्टान, माहिष्मती पुरी, उज्जयिनी, गोनद्ध, वेदिस, वनसह्वय, कोसंबि, साकेत, सावत्थिपुर, सेतव्य, कपिलवत्थु, कुसिनार, पाव, भोगनगर, वेसालि एवं अन्त में मागधपुर (?पाटलिपुर) चला जाता था<sup>१</sup>। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि उज्जयिनी से एक ओर माहिष्मती एवं पैठण को, तथा दूसरी ओर गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी एवं पाटलिपुत्र को जाने वाले राजमार्ग थे।

१. सुत्तनिपातो, पारायणवग्ग, वत्थुगाथा ३६-३८—

अलकस्स पतिट्टानं पुरिंमं माहिस्सति तदा ।

उज्जेनिं चापि गोनद्धं वेदिसं वनसह्वयं ॥

कोसंबिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं ।

सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं ॥

पावं च भोगनगरं वेसालिं मागधं पुरं ।

पासाणकं चेतियं च रमणीयं मनोहरं ॥



## आहुति : अष्टादशी काण्व तथा आद्य सातवाहन राजे (ई० पू०-१०० से ई० ५० तक)

**काण्व राजे:**—पुराणग्रन्थों से विदित होता है कि शुङ्गों के पश्चात् काण्व वंशीय राजाओं ने ४५ वर्षों तक राज्य किया; तथा बाद में उनकी और अर्धशुङ्गों की सत्ता आंध्र ( या सातवाहन ) वंश ने छीन ली<sup>१</sup>। शुङ्गों की सत्ता कुछ जगह शेष रही, किन्तु काण्व ( या काण्वायन ) वंश का राज्य न केवल अल्पकालीन रहा, बल्कि उत्तर भारत में भी वह विशाल नहीं बन सका। उज्जयिनी उनके अधीन थी या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

काण्व राजाओं के नामों के अन्त में प्रायः 'मित्र' या 'देव' शब्द पाया जाता है। वे ब्राह्मण थे तथा ब्राह्मण धर्म के अनुयायी भी थे। डॉ० विसेन्टि ने अपने कॅटलॉग में एक मुद्रा प्रकाशित की है, जिस पर एक ओर नन्दी दूसरी ओर 'उजैन चिह्न' के साथ वट (? सिद्धवट) अंकित है, तथा उसके नीचे '[व] 'रुनमित' लिखा हुआ है<sup>२</sup>।

**आदि आन्ध्र=सातवाहन** (ई. पू.-६० से ई. ५० तक)

काण्वों के पश्चात् पुराणों के अनुसार भारत की प्रभु सत्ता आंध्रों के हाथ चली गई। इनका पहिला राजा सिमुक था जिसे नानाघाट शिलालेख में 'सातवाहन' नाम निर्दिष्ट किया गया है। इसके बाद पुराणों के अनुसार 'सातवाहन' नामक राजा हुआ। नासिक में प्राप्त शिलालेख से पता चलता है कि 'सातवाहन' कुल में कण्व (कृष्ण) राजा हुआ<sup>३</sup>।

१. पार्जिटर्, डा. क. ए., पृ. ३५.

२. स्मिथ, कॅटलॉग, फलक-२० (३०); पृ० १५४ (२७)। स्मिथ ने 'मिस' पढ़ा है। इन अक्षरों में प्रथम तीन स्पष्ट हैं। अंत में 'स' के स्थान पर 'त' अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

३. ए. इ., ८, पृ. ९३; आ. स. वे. इ. ४, पृ. ९८; बाँ. गं. १६, पृ. ५९३ आदि।

**प्रथम शातकर्णिः**—इसके पश्चात्-पुराणों में पाई गई वंशावली के अनुसार-शातकर्णि नामक राजा हुआ जिसने १८ वर्षों तक राज्य किया। नाणेघाट शिलालेख में इसे “दक्षिणापथपति शातकर्णि” कहा गया है<sup>१</sup>। डा. अ. स. आलतेकर के अनुसार—“रैप्सन के कॅटलॉग में प्रकाशित सिक्कों से भी अधिक प्राचीन ‘मालव-प्रकार’ के सिक्के उपलब्ध होते हैं। उनमें ‘राजा सिरिसात’ का नामांकन” स्पष्ट है। इनके मत के अनुसार यह मुद्रा राजा सातकर्णि द्वारा ‘अवन्ति’ देश पर अधिकार करने के बाद शीघ्र ही प्रसारित की गयी मुद्राओं में से एक है<sup>२</sup>।

सांची में सबसे बड़े स्तूप की वेदिका कई महत्वपूर्ण शिलालेखों से अंकित है। उनमें से एक पर “राजा सिरि सातकर्णि” के समय में किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा किये गये दान का उल्लेख है।

उस अधिकारी का नाम ‘वासिठिपुत आनन्द’ दिया हुआ है, एवं उसे ‘आवेशनि’ कहा गया है<sup>३</sup>। स्पष्टतया यह राजा श्री शातकर्णि का ‘आन्तर्वेशिक’ या कञ्चुकी था। डॉ. व्यूलर के अनुसार नाणेघाट शिलालेख में जिस ‘दक्षिणापथपति सातकर्णि’ का उल्लेख है, सांची का यह शिलालेख उसी के समय का

१. आ. स. वे. इ. ५, पृ. ६०, वाँ. गँ. १४, पृ. २८७, खण्ड १६ पृ. ६११ आदि।

२. ज. न्यु. सो. ई. ग्रन्थ ३, भाग (१९४१) पृ. १२८.

३. इस शिलालेख के गलत अर्थ के सम्बन्ध में देखिये—प्रो. रैप्सन—कॅटलॉग प्रस्तावना—पृ. २३-२४; ६४-४७ आदि। यहाँ प्रो. रैप्सन द्वारा न केवल जनरल कनिंघम द्वारा किये गये शिलालेख के मूल वाचन को तोड़-मरोड़ कर पढ़ने का सुझाव दिया गया है, बल्कि ‘आवेशनि’ का अर्थ ‘कारीगरों’ का मुखिया किया गया है। ‘आवेशनि(क)’—‘आन्तर्वेशिक’ (आन्तर्वेशिक) का रूप है। ‘आन्तर्वेशिक’ या ‘आन्तर्वेशिक’ शब्द कौटिलीय, पंचतंत्र आदि ग्रंथों प्राप्त होता है। बाद में यही शब्द ‘कञ्चुकिन्’ के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।



होना चाहिये । उनके मत में दोनों अभिलेखों की अक्षरवाटिका दूसरी की है तथा एक जैसी है<sup>१</sup> । नाणेघाट के शिला-लेखों से यह स्पष्ट जाता है कि श्री शातकर्णि राजा सिमुक सातवाहन का पुत्र था, और उसने द्वारा बौद्ध विहारों को पर्याप्त सहायता दी जाती थी । 'आन्तर्वेशिक' आनन्द दानोल्लेख से भी यह विदित होता है कि सांची-विदिशा का प्रदेश पहले ही उस अधिकार में आ चुका था, और उसके बड़े अधिकारियों में भी बौद्ध धर्म के प्रति विशेष आस्था थी ।

**खारवेल का आक्रमण :—**इसी प्रथम शातकर्णि के राज्य-काल में कर्लिग देश में महामेघवाहन<sup>२</sup> खारवेल<sup>३</sup> नामक एक पराक्रमी जैन राजा राज्य करता था । हाथीगुंफा से प्राप्त उसके एक उत्कीर्ण लेख में शातकर्णि राजा का उल्लेख है । उसमें कहा गया है कि राजगद्दी पर बैठने पर दूसरे वर्ष में शातकर्णि को न गिनते हुए उसने पश्चिम की ओर आक्रमण किया । उसने उसकी सेना कृष्ण-त्रेण्णा (कृष्णा नदी) तक बढ़ गई और उसने असक नगर (अश्मक नगर=पैठण) को भी संव्रस्त कर दिया । इससे एक बात स्पष्ट होती है कि सर्व प्रथम उसने शातकर्णि के साम्राज्य के दक्षिणी भाग पर हमला किया । उस समय शातकर्णि विदिशा, सांची, उज्जयिनी आदि प्रदेश जीतने के लिए उत्तर दिशा की ओर चला गया होगा । दूसरी बात यह है कि खारवेल

१. लेखक के अनुसार यह प्रथम शताब्दी के मध्य का है ।

२. मेघवाहन का अर्थ इंद्र है । अतः महामेघवाहन का अर्थ 'महेन्द्र' । आधार पर कर्लिग देश के अत्यधिक पूज्य एवं महत्त्व के स्थान पर्वत से इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है । महाभारत, पुराण ग्रन्थ रघुवंश के अतिरिक्त शिलालेखों से भी स्पष्ट होता है कि यह स्थान पावन था ।

३. यह स्वयं को कर्लिगाधिपति कहलाता है । यथा—'ऐरेन महाराजेन महाराजा वाहनेन चेतिराजवसवधनेन कर्लिगाधिपति-सिरि-खारवेलेन'

## इतिहास व पुरातत्त्व

(१३)

‘असक-नगर’ पर कभी प्रशासन नहीं किया। केवल उस पर आक्रमण कर के व्रस्त किया था। उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहना सम्भव प्रतीत होता है कि, इस समय तक पैठण (अश्मक नगर) सातकर्णि की राजधानी बन चुकी थी।

**प्रथम शातकर्णि का काल :—**कलिगाधिपति खारवेल का समय उसके हाथी गुंफा शिलालेख से निश्चित होता है। अपने राज्य-काल के पंचम वर्ष में वह (उसके ३०० वर्ष पूर्व नन्दराज द्वारा निर्मित) एक विशाल तालाब की पनालियाँ कलिंग-नगर (मुखलिंगम्) नामक राजधानी तक ले गया। नन्दराज का समय लगभग ई० पू० ३५० है; अतः खारवेल का राज्यकाल ई० पू० (लगभग) ५५ माना जा सकता है। अर्थात् ई० पू० ६० के करीब प्रथम शात-कर्णि पैठण में राज्य करता था। इसके पहले काण्वों का राज्य था, जो इस दृष्टि से ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में होना चाहिए।

**दूसरा श्री शातकर्णि :—**उज्जैन में उपर्युक्त ‘सिरि सात’ (प्रथम श्री शात-कर्णि) के सिक्कों से भिन्न अन्य कुछ सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं। उन पर एक ओर ‘रजो सिरि सातस’ (=राजा श्री सातकर्णि का) तथा दूसरी ओर हाथी (= ? श्वेतकेतु) अंकित है। इन पर प्राप्त अक्षर-वाटिका प्रो० रैप्सन् के अनुसार दूसरी सदी की है। लेकिन जैसा कि डा० आलतेकर ने बतलाया है, वह पूर्वोक्त ‘सिरि सात’ (प्रथम शातकर्णि) के सिक्कों से बाद के होने से उनका समय ईस्वी प्रथम शताब्दी मानना उचित होगा।

पुराणों में प्राप्त वंशावली के अनुसार दूसरा शातकर्णि आंध्र कुल का छठा राजा था, जिसने कुल ५५ से अधिक वर्षों तक राज्य किया। सम्भवतः इसी कारण उज्जयिनी में इसकी मुद्राएं अधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। पुराणों में भी विदित होता है कि प्रथम शातकर्णि के पश्चात् वह करीब ३५ वर्षों के बाद राजगद्दी पर बैठा। अतः यदि प्रथम शातकर्णि का समय ई० पू० ६० से ४० तक माना जाय तो द्वितीय शातकर्णि सम्भवतः ई० पू० ५ से ई० ५० तक राज्य करता रहा। कथासरित्सागर आदि ग्रंथों में ग्रथित अनुश्रुति के अनुसार



महाकवि गुणाढ्य प्रतिष्ठान (पैठण) में किसी सातवाहन वंशीय शातकर्णि राजा का मित्र बन कर अपना जीवन व्यतीत करता रहा<sup>१</sup>। यह शातकर्णि सम्भवतः द्वितीय शातकर्णि होगा, क्योंकि इसी के राज्यकाल में सातवाहन साम्राज्य को कुछ स्थिरता प्राप्त हुई थी। गुणाढ्य अवन्ती में रहने वाला था; अतः उसने अवन्ति-प्राकृत में ही प्राकृत भाषा के आधार पर सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य की रचना की, जिसका नाम 'बृहत्कथा' रखा गया। इसके पूर्व भारत के दोनों ही महाकाव्य—रामायण व महाभारत—संस्कृत भाषा में लिखे गए थे।

१. क० स० सा०-१६ पश्चात्—'नाम्ना गुणाढ्यः सेवित्वा सातवाहनं भूपतिम् ।'

२. वहीं :--८: ३३ "अथोवाच स तं भूपं गुणाढ्यः सातवाहनम् । राज्ञः पत्रं ग्रन्थलक्षाणि मया दग्धानि षट् कथाः । लक्षमेकमिदं त्वस्ति कथायाः गृह्यताम् ॥... अथ तां गुणाढ्य-दत्तामादाय कथां बृहत्कथां नाम नृपतिरगान्निजनगरं नरवाहनदत्त-चरितमयीम् ॥"

## आहुति : एकोनविंशा वृहत्कथा एवं उसकी भाषा

सात प्राचीन भारतीय भाषाएँ:—भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं के नाम सर्व प्रथम भरत-मुनि के नाट्यशास्त्र में दिए गए हैं—जैसे मागधी (पाली), अवन्तिजा (अवन्ति देश की बोली), प्राच्या, शूरसेनी, अर्धमागधी (जैन ग्रन्थों की भाषा), 'वाल्हीकी' (?बल्लू की भाषा) तथा दाक्षिणात्या (=महाराष्ट्री) <sup>१</sup> ।

इनके नामों से स्पष्ट होता है कि भरत का किसी भी संस्कृतेतर भाषा गुट से यहाँ कोई तात्पर्यार्थ या मतलब नहीं था । <sup>२</sup> इन भाषाओं में 'वाल्हीकी' यानी बल्लू देश की एक भाषा बतलायी गयी है । यह प्रायः दरद् देश (दादिस्तान) की भाषा संबन्धित होगी । निरुक्त, महाभाष्य आदि व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थों में कम्बोज जाति के बोली विषयक कुछ उदाहरण पाए जाते हैं । कम्बोज एवं दरद् देश एक दूसरे के अति निकट थे । उनके दूसरी ओर वंक्षु (Oxus) नदी के पास वाल्हीक देश था, जिसकी बोली उक्त कम्बोज बोली से सम्बन्धित थी । इस प्रकार ग्रीसरसन् की दादी भाषा, व्याकरण-कारों की कम्बोजी भाषा तथा भरत मुनि की वाल्हीकी भाषा संभवतः एक ही गुट की थी <sup>३</sup> ।

१. "मागध्यवन्तिजा प्राच्या शूरसेन्यर्धमागधी ।

वाल्हीकी दक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः ॥—भ. ना., २. १७.४६.

२. भ. ना. २.१७.३० में 'जातिभाषाओं, में म्लेच्छ तथा आभीरादि अन्य 'नीच भाषाओं, का उल्लेख किया गया है ।

३. उपरोक्त लिखने के पश्चात्, छपते-छपते नाट्यशास्त्र पुनः देखा गया । उसमें सम्भवतः 'वाल्हीकी' यह 'वाहीकी' की जगह पर गलती से लिखा गया है, एवं भारत-मुनि का मतलब वाहीकी से ही है, ऐसा प्रतीत होता है । भ. ना. २.१७.५३ में 'वाल्हीक भाषादीच्यानां' पाया जाता है । ओदीच्यां का, यानी पृदूदक (पहोवा) के उत्तर के लोगों का, देश वाहीक था, अतः उनकी भाषा वाहीकी ( जो पंजाबी की मूल बोली है ) थी, यह स्पष्ट है ।



अन्य भाषाएँ किन किन प्रदेशों की थीं, यह स्पष्ट है ।

तीन प्राकृत भाषाएँ :—वररुचि के प्राकृत-प्रकाश नामक ग्रन्थ में केवल प्रमुख भाषाएँ मानी गयी हैं :—महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची एवं शौरसेनी । इनमें से पैशाची शौरसेनी से अधिक सम्बन्धित है, तथा उसके नियम शौरसेनी से ही बनते हैं । केवल उनमें अंशतः फरक है, यह उसने स्वीकार किया है । उसने यह भी लिखा है कि महाराष्ट्री शौरसेनी की प्रकृति है, एवं महाराष्ट्री इसमें केवल कुछ ही नियम भिन्न हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराष्ट्री यही सर्वोत्कृष्ट प्राकृत मानी जाती थी, एवं शूरसेनी तथा पैशाची उससे निचली वाली भाषाएँ थीं ।

बहुधा इसी कारण से दण्डी ने भी कहा है कि महाराष्ट्री भाषा सब प्राकृत भाषाओं में श्रेष्ठ है<sup>१</sup> । उसी को बहुधा प्राकृत माना था । वृहत्कथा-मञ्जरी गुणाढ्य द्वारा की गई प्रतिज्ञा बताई है, इसमें भी चार भाषाओं का उल्लेख है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पैशाची । वृ. क. मञ्जरी के अनुसार गुणाढ्य प्रतिज्ञा के अनुसार पहली तीन भाषाएँ वर्जित की । केवल पैशाची भाषा उसने काव्य रचना की<sup>२</sup> । पैशाची का यह सर्वप्रथम महाकाव्य ।

पैशाची=भूतभाषा :—दण्डी के काव्यादर्श में लिखा है कि “काव्य भाषाओं में लिखा जा सकता है । तथा संस्कृत में भी । वृहत्कथा, जो (विचित्र या असाधारण) अर्थ वाली है, भूतभाषा में लिखी गई है ।”

१. प्रा. प्र. (कॉवेल), ९ :—‘महाराष्ट्री मागधी पैशाची शूरसेनी ।
२. वहीं १०.१-२ :—‘पैशाची । प्रकृतिः शौरसेनी ।’ नमिसाधु के अनुसार पैशाची महाराष्ट्री से अधिक सम्बद्ध है ।
३. काव्यादर्श :—महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः ।
४. वृ. क. मं., १.३.५१ :—“.....त्यक्तभाषात्रयोऽप्यहम् । पैशाचीमनपभ्रंशसंस्कृतप्राकृतां श्रितः ॥
५. काव्यादर्श, १.३८ :—“कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते । भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्था वृहत्कथाम् ॥

जशेखर के काव्यमीमांसा में, भूतभाषा किन-किन देशों में प्रचलित थी, यह निर्दिष्ट किया है गया। तदनुसार भूतभाषा का प्रयोग अवन्ति, पारियात्र (आबू की पहाड़ियाँ) तथा दशपुर (मन्दसौर) के निवासियों द्वारा किया जाता था<sup>१</sup>। यह स्पष्ट है कि भरत नाट्य-शास्त्र में उल्लिखित अवन्तिजा, वररुचि के प्राकृत-काश की पैशाची, काव्यमीमांसा की भूतभाषा एक ही है।

**मालवी का उद्गम स्थान :**—महाराष्ट्री से आगे बढ़कर मराठी भाषा भी। शौरसेनी से ब्रजभाषा हुई। उसी प्रकार अवन्तिजा (पैशाची या भूतभाषा) से मालवी उद्भूत हुई। काव्यमीमांसा के अनुसार भूतभाषा पश्चिम मालवा तथा दक्षिण राजस्थान की बोली है। यहीं आधुनिक मालवी की जन्म-भूमि है। मराठी, बुन्देलखण्डी-ब्रजभाषा तथा मालवी भाषाओं में जो अत्यधिक साधर्म्य दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण अब स्पष्ट हो जावेगा।

बाद में नाट्य-शास्त्र में उल्लिखित सात प्रमुख भारतीय भाषाओं का विभाजन पुराना हो गया। वाल्हीक भाषा से भारतीयों का सम्बन्ध टूट जाने से<sup>२</sup>, उसको भारतीयों की प्रमुख भाषाओं में स्थान नहीं रहा। फलस्वरूप ८ वीं शताब्दी में एवं पश्चात्, भरत-नाट्यशास्त्र की सात भाषाओं के स्थान पर छः भाषाओं का उल्लेख मिलने लगता है। कवि रुद्रट के काव्यालङ्कार में संस्कृत, प्राकृत, मागध (मागधी), पिशाच-भाषा (पैशाची), शौरसेनी, एवं अपभ्रंश इन छः भाषाओं को काव्य की प्रमुख भाषाएँ बताया गया है<sup>३</sup>। इनमें भी, 'अपभ्रंश' खास कोई एक भाषा न होते हुए देश-देश की स्थानीय, ग्रामीण भाषा के रूप में पायी जाती है, ऐसा कहा गया है। प्राकृत-लक्षण नामक ग्रंथ में भी यही छः भाषाएँ बतायी गयी हैं<sup>४</sup>।

१. का. मी.: पृ. ५१ —“आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषां भजन्ते ।”
२. या वाल्हीक भाषा अधिक समृद्ध न होने से, एवं उसकी 'स्वतन्त्र भाषा' की दृष्टि से वृद्धि न होने से ?
३. काव्यालङ्कार, २.११-१२ :—  
भाषाभेदनिमित्तः षोढा भेदोऽस्य सम्भवति ॥  
संस्कृत-प्राकृत-मागध-पिशाच-भाषाश्च शौरसेनी च ।  
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥
४. प्रा. ल. — संस्कृतं प्राकृतं चैवापभ्रंशोऽथ पिशाचिकी ।  
मागधी शौरसेनी च षड्भाषाश्च प्रकीर्तिताः ॥



भरत के नाट्य-शास्त्र में वर्णित 'दाक्षिणात्य' बोली की जगह इन ग्रन्थों 'प्राकृत' ने ले ली है, जिसका कारण स्पष्ट है। उसी प्रकार 'अवन्तिजा' भाषा का स्थान 'पैशाची' ने ले लिया है। 'पैशाचिक' का मतलब काव्यालङ्कार कहा गया है, इसकी चर्चा करते हुए टीकाकार नमिसाधु द्वारा लिखा गया है कि—

“पैशाचिक भाषा प्राकृत भाषा से किञ्चिन्मात्र भिन्न है।.....इसके केवल प्राकृत जैसे कुछ व्यञ्जनादेश नहीं होते हैं। इस विषयक बृहत्कथा नामक काव्यों में उदाहरण मिलेंगे, जो देखे जाय।”<sup>१</sup>

बृहत्कथा की पैशाची अवन्ति-देश की प्राकृत होने के कारण, तथा अवन्ति और अश्मक (महाराष्ट्र) निकट के जनपद होने के कारण इनकी भाषाओं का सादृश्य स्वाभाविक ही था।

**बृहत्कथा का मूल स्वरूप:**—गुणाढ्य की मूल पुस्तक बृहत्कथा नष्ट हो चुकी। उसके आधारपर क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी, सोमदेव की कथा-सरित्-सागर, नेपाली बृहत्कथा-कोप आदि ग्रन्थ लिखे गए। यह ग्रंथ लिखे जाने के पहले, इन लेखकों के सामने बृहत्कथा जिस स्वरूप में आयी थी, वह संभवतः मूल बृहत्कथा से बहुत बदल चुका था। संभवतः इसी कारण इनमें आपसमें बहुत अन्तर दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त बृहत्कथा-मञ्जरी तथा कथा-सरित्सागर गुणाढ्य के स्वयं के विषय में कई काल्पनिक एवं मनगढ़ंत कहानियाँ तो हैं ही। अपितु गुणाढ्य के पश्चात् जो ख्यातनाम राजा हुए, उनमें से कुछ के नाम इनकी कथाओं में पाए जाते हैं। अतः बृहत्कथा का मूल स्वरूप ध्यान में रखना आवश्यक है।

महाकवि बाण-भट्ट ने लिखा है कि बृहत्कथा में मदनोत्तेजक एवं आश्चर्य

- 
१. नमिसाधु-टीका:—“तथा प्राकृतमेव किञ्चिद्विशेषणात्पैशाचिकम्।.....इत्यादयोऽन्येऽपि प्राकृतविहिता व्यञ्जनादेशा न क्रियन्ते। ते च बृहत्कथादिलक्ष्य दर्शनाज्ज्ञेयाः।”

जनक कहानियाँ हैं<sup>१</sup> । उसने यह भी बतलाया है कि उज्जयिनी के लोग बृहत्कथा के अच्छे जानकार थे<sup>२</sup> । स्पष्ट है कि पैंशाची अवन्ति-देश की भाषा होने के कारण वे ऐसे जानकार रहे ।

उदयन कथा :—बृहत्कथा के अन्तर्गत कई रोचक कहानियाँ थीं । उनमें 'उदयन-कथा' यह एक सत्य-कथा भी थी । उज्जयिनी का निवासी होने के कारण, गुणाढ्य उदयन-कथा से अच्छी तरह परिचित था । यह कथा उज्जयिनी के साहित्य में एक अपूर्व महत्त्व रखती थी । जो काव्य-ग्रंथ उज्जयिनी में लिखे गए अथवा उस नगरी-विषयक लिखे गए, उनमें से कई ग्रन्थों में इस कहानी का उल्लेख किया गया है ।

मृच्छकटिक में उज्जयिनी का वर्णन पर्याप्त दिया गया है । उदयन-कथा का एक महत्त्वपूर्ण भाग भी उसमें उल्लिखित है, जो कि उदयन की वन्दिगृह से मुक्ति के सम्बन्ध में है<sup>३</sup> । इस पर टीका करते हुए एक प्राचीन टीकाकार लल्ल ने बताया है कि यह कथा बृहत्कथा में देखी जा सकती है<sup>४</sup> ।

अवन्ति-जनपद की स्थानीय भाषा (=अवन्तिजा=पैंशाची) में लिखी होने के कारण अवन्ति के ग्राम-वृद्धों<sup>५</sup> को वह कथा अच्छी तरह से ज्ञात थी, यह कालिदास के मेघदूत से विदित होता है ।

१. ह. च., १.१७:—

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।

हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥

२. कादं, पृ. १०२:—'बृहत्कथा-कुशलेन.....विलासिजनेनाधिष्ठिता.....'

३. मृच्छ., ४.२६:—

उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय ।

योगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ॥२६॥"

४. लल्ल-टीका:—“चतुर्थचरणदृष्टान्तकथा बृहत्कथायामालोकनीया ।”

५. मेघ.१:—‘प्राप्यावन्तीरुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धाः ।’



**चाणक्य-कथा :**—बृहत्कथा के अतर्गत दूसरी ऐतिहासिक कथा चाणक्य (या कौटिल्य), महापद्म नन्दराज, चन्द्रगुप्त मौर्य, शकटार आदि से सम्बन्ध रखती है। इसी में संभवतः सर्व-प्रथम नन्द-विनाश की कहानी का व्यौरा दिया गया था। संभवतः यही सूत्र था, जिसके आधार पर मुद्राराक्षस नामक बड़िया नाटक ६ वीं शताब्दी के अन्त में रचाया गया। इसी कारण धनिक के दशरूपावलोक में लिखा गया है—“मुद्राराक्षस का मूल बृहत्कथा में है<sup>१</sup>।” मुद्राराक्षस की टीकाकार ने इसके पुष्टिकरण में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी से कुछ श्लोक उद्धृत किए हुए हैं<sup>२</sup>।

**मूलदेव-कथा :**—उपरोक्त दोनों कहानियों में कुछ ऐतिहासिक सत्य प्रकट होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य एक कथा बृहत्कथा के अन्तर्गत थी। वह किसी कर्णोत्तम सुत मूलदेव विषयक थी, जो चौर्यकला-विज्ञान का प्रादुर्भाव-कर्ता माना गया है।

यह बात स्पष्ट है कि चोरी करने के कुछ हाथकण्डे इस रोचक कहानी में वर्णित किए गए थे। यह कहानी मनगढन्त एवं नितान्त झूठी होने पर भी, इसमें संभवतः शातवाहन राजाओं के सम्बन्ध में कुछ छिपा सा उल्लेख प्रतीत होता है—जिससे उस समय का शातवाहन राजा प्रथम रुष्ट एवं पश्चात् संतुष्ट हुआ होगा। शातवाहन कुल में कई शातकर्णि, स्वातिकर्णि (या दीप्तिकर्णि) आदि ‘कर्णि’ अन्त वाले राजा हुए। ‘मूलदेव’ नाम ई. के पूर्व-काल में कुछ राजाओं का रहस्य

१. दशरूपावलोकः—‘तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम् ।’

२. जगद्धर की टीका देखिए। बृ. का मं. १.२. २१६-२१७:—“चाणक्य-नाम्न तेनाथ शकटालगृहे रहः। कृत्यां विधाय सप्ताहात्सपुत्रो निहतो नृपः॥ योगेन नन्दे यशःशेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः। चन्द्रगुप्तो धृतो राज्ये चाणक्येन मही जसा ॥”

यह भी इतिहासज्ञों को ज्ञात है<sup>१</sup> ।

रामायण, महाभारत और बृहत्कथा को भारतीय भारती की इतिहास-कालीन “त्रयी” माना जा सकता है। किसी प्राचीन कवि ने भी इनको पूर्व में ही “सरस्वती” के तीन महान् स्रोत माना है, जिनके अंशमात्र से अन्य कवि अपनी काव्य-कथाएँ रचते हैं। इस प्रकार न केवल भास के दो अद्वितीय नाटक, वल्कि रत्नावली, तापस-वत्सराज आदि कई नाटक इसी बृहत्कथा के अन्तर्गत एक कहानी—उदयन-कथा—के आधार पर लिखे गए। सुवन्धु की वासवदत्ता कथा भी इसी पर आधारित है। मुद्राराक्षस नाटक भी संभवतः इसी प्रकार अन्य कथा पर आधारित था। इसी प्रकार कर्णोपुत्र चौर्याचार्य मूल-देव विषयक कहानी पर शूद्रक कवि का पद्म-प्राभृतक नामक भाण भी एक अन्य नाटक है। शूद्रक के मृच्छकटिक में भी यह कर्णोपुत्र उल्लिखित है।

**अनार्ष-महाकाव्य :**—यह महाकाव्य संभवतः भरतमुनि को विदित था, एवं उन्होंने इसको अपने नाट्यशास्त्र में ‘अनार्ष काव्यों’ के अन्तर्गत कर लिया<sup>२</sup> इनके समय में रामायण तथा महाभारत नामक संस्कृत भाषा में लिखे हुए महाकाव्य ही संभवतः “आर्ष काव्यों” के नमूने माने गए थे। उनके संदर्भ में ही बृहत्कथा-विषयक “अनार्षकाव्य” शब्दों का उपयोग किया जा सकता था। भरत-मुनि के मत में ऐसे ‘अनार्ष-काव्यों’ में ‘अभूत-गुण’ होना चाहिए। यानी इसमें

१. उपरोक्त कथाओं के अतिरिक्त नरवाहनदत्त की कथा बृहत्कथामञ्जरी तथा कथासरित्सागर में व्यौरेवार वर्णित है। यही मूल बृहत्कथा में महत्त्वपूर्ण कथा होगी, जैसे कि क. स. सा. ९.८.३३ आदि से विदित होता है। देखिए ऊपर, आहुति १८. पृ. ९४.

कादम्बरी — ‘नरहनदत्तचरितमिव संवर्धित-प्रियदर्शन-राजदारिका-गन्धर्वदत्तोत्कण्ठम् ।’

२. भ. नाट्य, ग्रन्थ २, पृ. ४३० :—

‘यदनार्षमनाहार्यं काव्यं प्रकरोत्यभूतगुणयुक्तम्’



अघटित घटनाओं के संबन्ध में भी लिखा जाना चाहिए । आर्ष काव्य—रामायण, महाभारत जैसे—केवल घटित, ऐतिहासिक, पौराणिक कथाओं पर आधारित नहीं होना चाहिए,<sup>१</sup> यह बात इसीसे स्पष्ट हो जाती है ।

१. भ. नाट्य. के उपरोक्त उद्धरण पर अभिनवगुप्ताचार्य की टीका:—“अनामिति—पुराणादि—व्यतिरिक्त—बृहत्कथाद्युपनिबद्धं मूलदेवादिकरितादि  
 ....यदिति वस्तुभूतैर्बृहत्कथादी काव्यान्तरे वा प्रसिद्धैर्गुणैर्युक्तं....तेन बृहत्कथादिसिद्धस्य मूलदेवादेरधिकावापं कविशक्तिर्यदा विधत्ते तदा प्रकरणम् ।

## आहुति : विंशतितमा

## क्षहरात (खखरात) वंश ई. ७० से १०० तक

आदि शातवाहन वंशीय राजाओं के पश्चात् कुछ समय के लिए उज्जैन में क्षहरात वंश का राज्य हुआ। इस वंश में भूमक एवं नहपान नामक दो प्रमुख क्षत्रप राजा हुए। भूमक के सिक्कों पर प्राकृत भाषा में एवं खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि में “क्षहरात क्षत्रप भूमक” का नाम अंकित किया हुआ पाया जाता है। ये सिक्के गुजरात, काठियावाड तथा मालवा में पाए गए हैं। कुछ मुद्राएँ अजमेर के समीप (पुष्कर तीर्थ के पास) भी पायी गयी हैं।

“महाराज राजाधिराज” अज एवं “महाराज” अयिलिपि ने कुछ तांबे की मुद्राएँ चलायी थीं, उनपर ‘धनुर्बाण एवं चक्र’ अंकित है। उन्हीं के जैसी क्षत्रप भूमक की उपरोक्त मुद्राएँ है जिनपर ‘धनुर्बाण एवं वज्र’ है<sup>१</sup>। अज (Azes) का काल उसके दो ताम्र-लेखों से निश्चित किया जा सकता है, जिन पर संवत् १३४ एवं १३६ वर्ष अंकित हैं। जैसे कि प्रायः सब विद्वानों की मान्यता है, यह वर्ष विक्रम संवत् के हैं। अज (ई. ७७-७९) के समय से किञ्चिन्मात्र पश्चात् या उसी समय का शासक ‘भूमक’ था। अतः उसका काल ई. ७० से ८० तक माना जा सकता है। क्षत्रप भूमक के उपर्युक्त सिक्कों के अनुरूप क्षहरात वंश दूसरे क्षत्रप राजा नहपान ने भी चांदी और तांबे की मुद्राएँ प्रसारित कीं। वे मालवा, गुजरात, काठियावाड, नासिक प्रदेश एवं पुष्कर क्षेत्र के समीप पायी गयी हैं<sup>२</sup>। इन पर “राजा क्षहरात नहपान” का नाम पाया जाता है। नासिक, जुन्नर आदि स्थानों के शिलालेखों में भी “क्षहरात क्षत्रप नहपान” का उल्लेख है<sup>३</sup>—किन्तु इनमें उसकी “राजा” उपाधि उपलब्ध नहीं होती है।

**भडोच का नहपान :**—नहपान की भिन्न-भिन्न मुद्राओं में भूमक, अज

१. रैप्सन्, कैंटलॉग, प्रस्तावना, पृष्ठ. १०७.

२. रैप्सन्, कैंटलॉग, प्रस्तावना-खण्ड, १०८. १०९

३. ए. इ. भाग ८. पृ. ७८; ८४; ८२; ८५; भाग ७, पृ. ५७; आदि।



(१०४)

उज्जैन

(Azes) तथा रञ्जुवुल की अन्यान्य मुद्राओं के अनुकरण पाए जाते हैं<sup>१</sup> । इस सम्बन्धित कुछ संवत् ध्यान में रखने योग्य हैं ।

अज (अय): [विक्रम] संवत् १३४, १३६.

रञ्जुवुलपुत्र शोडास : संवत् ४२.

नहपान : ४१ से ४६.

प्रथम कुषाण सम्राट् कुजुल कविस<sup>२</sup> के एक पुत्र, लियक कुजुलक के संवत् ६८ तथा ७८ थे । इसके पश्चात् पतिक लियक एवं कुजुलक पतिक मधुरक्षत्रप हुए । उनके पश्चात् रञ्जुवुल तथा शोडास हुए; अतः यह स्पष्ट है कि शोडास का संवत् १४२ ही होना चाहिए । उसी प्रकार नहपान के संवत् ४१ से ४६ संवत् १४१ से १४६ हैं । यानी नहपान का समय इसवी ८३ से ८८ निर्दिष्ट होता है<sup>३</sup> ।

“लाल सागर का पर्यटन<sup>४</sup>” नामक एक ग्रीक ग्रंथ ई. ८० से ९० तक कालखण्ड में लिखा गया<sup>५</sup> । उसमें उस समय के भारत वर्ष में पश्चिमी तट पर जो प्रमुख बन्दरगाह एवं मंडियां थीं, उनका संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है । ग्रंथ भी नहपान का उल्लेख करता है । उज्जैन के सम्बन्ध में उस ग्रंथ निम्न-रूप लिखा हुआ है<sup>६</sup> ।

१. युवो दुब्रुए, ए. हि. डे, पृ. १६; रॅप्सन्. कॅटलॉग: स्मिथ्, कॅटलॉग, आदि.
२. KuzoloKadphises: इसने चीनी सम्राटों का आधिपत्य हटाकर मौर्य राज (स्वतन्त्र राजा)की उपाधि प्राप्त की । यह ८० वर्ष तक जिन्दा रहा । इसी से विक्रम या कुषाण संवत् शुरू हुआ ।
३. प्रा.भा. सं. पृ. २५२ पश्चात् ।
४. The Periplus of the Aerythrean sea.
५. McCrindle, India VIII, page 108.
६. The Periplus, 47-48.

उज्जैन में व्यापार:—“भरुकच्छ (Barygaza) के पूर्व में उजेनि (Ozene) नामक एक शहर है, जो कि कुछ समय पूर्व उस प्रदेश की राजधानी थी, एवं जहाँ राजा रहा करता था । इस स्थान से भरुकच्छ को जनसाधारण के उपयोग की सब प्रकार की वस्तुएँ तथा विदेश में विक्रय हेतु भेजने योग्य वस्तुएँ आया करती हैं । इनमें गोमेद (Onyx Stone) आदि रत्न, पकी हुई मिट्टी के बड़िया बर्तन, मुलायम क्षौम, शुभ्र कार्पास वस्त्र, एवं अन्य कई प्रकार की वस्तुएँ बहुतायत में आती हैं ।

उत्तर की ओर से पुष्कलावती (पुष्करावती)<sup>१</sup> से समुद्रतट की ओर आने-वाली हींग, बादाम, कुङ्कुम<sup>२</sup> आदि (कीमती) वस्तुएँ भी यहीं से आती हैं<sup>३</sup> ।”

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि उज्जयिनी में पकी हुई मिट्टी से बनाए गए सुन्दर बर्तन दक्षिण तथा भारत के बाहर पश्चिम देशों को भी जाया करते थे । सम्भवतः कृष्ण एवं रक्त मृद्भाण्ड (Black and Red Ware) नाम से ख्यात यही बर्तन हैं । पुरातत्त्व शास्त्रज्ञों के अनुसार ये उज्जयिनी में ई० पूर्व ५ वीं शताब्दी में उपलब्ध होने लगते हैं । सम्भवतः वे यहां मौर्य-काल में ही बनाए जाने लगे । पुरातत्त्व शास्त्रज्ञों के अनुसार यही बर्तन दक्षिण के कई स्थानों में ई. पूर्व दूसरी शताब्दी में तथा इसके पश्चात् पाए जाते हैं<sup>४</sup> ।

१. गांधार देश के पश्चिम की राजधानी जो नगराहर या बेग्राम के समीप थी ।

२. मूल अंग्रेजी ग्रन्थ में (Spikenard, Kostos एवं Bdellium) नामक वस्तुएँ कही गयी है । उनके सम्भाव्य अर्थ उपरोक्त प्रकार से दिए गए हैं ।

३. पश्चिमी तटपर ‘दि पेरिप्लस’ के लेखक द्वारा देखे हुए मीनेन्दर एवं अपोलोदोतस् के सिक्के भी सम्भवतः यहीं से जाते थे; चूँकि उज्जैन इस समय एक विशाल मंडी थी ।

४. इस विषयक अधिक चर्चा लेखक की मराठी पुस्तक ‘प्राचीन भारतीय संस्कृति’ (१९६०) में की गई है ।



‘दि पेरिप्लस्’ के लेखक ने लिखा है कि उस समय भड़ोच<sup>१</sup> बन्दरगाह Mampanos (यानी नहपान) के अधीन था, एवं वह एक ओर उज्जैन के साथ तथा दूसरी ओर पैठण और तगर के साथ व्यापार मार्ग से जोड़ा गया था । भड़ोच उसके विशाल राज्य का मध्यवर्ती स्थान था । इसी कारण से सम्भवतः नहपान ने उज्जैन राजधानी छोड़कर भड़ोच में अपनी राजधानी बनायी । ‘दि पेरिप्लस्’ में लिखा गया है कि उसके समय में नहपान भड़ोच का राजा था; और उज्जैन उसके कुछ पूर्व राजधानी थी । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि उस लेखक के भड़ोच आने के कुछ समय पूर्व (यानी सम्भवतः ई. ८५ के पहले) उज्जैन ही नहपान की राजधानी थी ।

क्षहरात क्षत्रप नहपान के जमाई उपवदात (=ऋषभदत्त) ने भड़ोच, मन्दसौर, गोवर्धन ( नासिक के पास ) एवं सोपारा में चौशालाएँ-धर्मशालाएँ एवं सरायें बनवायीं । बानास<sup>२</sup> नदी के तीर पर उसने सुवर्ण-दान किया तथा, प्रभास में ब्राह्मणों के विवाह करवाएँ । उसी प्रकार अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ पर अभिषेकादि धर्म-कर्म सम्पन्न किए तथा सहस्त्रों गोदान किए । इससे पता चलता है कि अजमेर से सोपारा तक एवं भड़ोच से लेकर तगर (तेर) तक का विशाल क्षेत्र नहपान के अधीन था ।

उत्तमभाद्र :—उसी समय मालव-गण के वीरों ने उत्तम-भाद्रों पर हमला किया । मालवागण इस समय मध्यमिका (नगरी राजस्थान के पास) के प्रदेश में रहा करते थे : जहाँ उनकी मुद्राएँ पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं । उत्तम-भाद्रों को उपवदात के शिलालेख में क्षत्रिय कहा गया है । यही लोग उत्तमर्णाः नाम से पुराणों में ख्यात हैं । कभी-कभी ये—‘उत्तमाः’ भी कहे गये हैं । वेही संभवतः ‘उमत’ राजपूत हैं, जिनका मूल स्थान ‘उमत वाड़ा’ मालवा का एक भाग है । उत्तम-भाद्रों को चीनी यात्री व्हेनसांग<sup>३</sup> ने O-Tien-po-chi-lo कहा

१. Hsuan Ch'wang का सही चीनी उच्चारण शुआन् छ्वाङ् है ।

२. Barugaz<sup>३</sup>=भरुकच्छ=भड़ोच.

है, यह बात लेखक ने अन्यत्र दिखलायी है । इन उत्तम-भाद्रों को मालवों ने घेर लिया था । इनको बचाने हेतु उपवदात दक्षिण से अवन्ति देश को आया । उपवदात के आगमन की वार्ता सुनते ही मालव घबड़ाकर भाग गए । उत्तम-भाद्रों को मुक्त करने पर उपवदात ने पुष्कर तीर्थ तक उनका पीछा किया ।

यही आधुनिक मालवा प्रदेश का मालव गण से सर्व प्रथम परिचय था ।

नासिक में प्राप्त एक खण्डित शिलालेख में ऋषभ-दत्त अपने को 'शक' कहलाता है । इस अभिलेख में उसके द्वारा उज्जयिनी में किए हुए किसी दान का भी उल्लेख है<sup>२</sup> । इस युग में उज्जयिनी का राजकीय महत्त्व कम होते हुए भी वह धार्मिक क्षेत्र में बना रहा । उपरोक्त अभिलेख इसका प्रमाण है । अभिलेखों द्वारा प्रमाणित उज्जयिनी में किया गया उस प्रकार का यह पहला दान है । उज्जयिनी के लोगों द्वारा सांची एवं भरहूत में किए गए दानों के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है ।

ऋषभदत्त के जुन्नर में पाए गए संवत् ४६ (=१४६ विक्रम संवत्) के अभिलेख में नहपान को 'महाक्षत्रप' उपाधि से विभूषित किया गया है । अधिकांश मुद्राओं में भी नहपान क्षत्रप एवं 'राजा' कहलाता है । ये महा-क्षत्रप राजे—कुछ अंशों में स्वतंत्र होते हुए भी कुषाण सम्राटों के क्षत्रप (अधीन शासक) थे ।

खखरात=? गुजरात :—गौतमीपुत्र द्वारा नहपान के खखरात ( क्षहरात ) वंश को पूर्णतया नष्ट करने का दावा किया गया है<sup>३</sup> । इसी 'खखरात' वंश के नाम से संभवतः 'गुजरात' प्रदेश का नाम उत्पन्न हुआ है । गवखर, गधर, गज्जर कूर्च (=गूर्ज) आदि भिन्न २ नामों से ख्यात मंगोलियन देशों के पश्चिम परिसर में विशाल क्षेत्र पर फैला हुआ वंश यही होगा । कूर्च (या गूर्ज) नाम से वे चीनी

१. देखिए 'इन्डियन कल्चर' ग्रन्थ ५—

२. ए. इ., खण्ड ८, पृ. ८५; आ. स. वे. इ. खण्ड ४, पृष्ठ १०१ रॉप्सन कंट-लॉग, पृ. ७७-७८;

३. देखिए नीचे आहूति एकविंश ।



इतिहास में पाए जाते हैं । कालान्तर में इनकी एक शाखा योरूप चली गई और दूसरी महान् शाखा भारत आ गयी ।

इन्होंने भारत में अपने अधीन क्षेत्रों को—जैसे गुजरात-गुजराणवाड़ा (पंजाब) के जिलों आदि को—नाम दिए । राजस्तान में प्राचीन समय में 'गुर्जरा' नामक एक प्रान्त था, वह भी उनके नाम से ही उत्पन्न हुआ था । गुजरात प्रान्त का नाम भी उन्हीं से प्राप्त हुआ । भारत में आज भी इस जाति के लोग मालवा, गुजरात, राजस्थान, पंजाब (पूर्वी व पश्चिमी) से लेकर आन्ध्र-प्रदेश तक बिखुरे हुए पाए जाते हैं ।

गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा खखरात राजवंश को नष्ट करने पर उज्जयिनी आदि प्रदेशों से इनका अधिकार अवश्य हट गया होगा<sup>१</sup> । केवल भड़ोच में वे सातवाहनों के सामन्त बन कर रहे होंगे । सातवाहनों के राज्य का अन्त होने पर भड़ोच में गुर्जरवंश के राजाओं का राज्य पाया जाता है । वे वहाँ यकायक उद्भूत न होते हुए सम्भवतः भड़ोच के नहपान के पुराने खखरात (क्षहरात) वंश से ही उत्पन्न हुए होंगे ।

- 
१. ऐसे प्रदेशों में गौतमीपुत्र द्वारा "उज्जैन चिह्न" वाले सिक्के भी प्रसारित किए गये । (कर्निघॅम्, कॉइन्स् ऑफ एन्शन्ट इंडिया, पृ. ६५)

आहुति : एक-विंश

गौतमीपुत्र शातकर्णि—(इ. ६५-१२०)

नासिक के पास जोगलठेंबी में प्राप्त चांदी की मुद्राओं के एक दफ्तीना से यह प्रमाणित होता है कि क्षहरात नहपान के पश्चात् वह प्रदेश (अश्मक) शीघ्र ही गौतमी-पुत्र शातकर्णि नामक राजा के अधिकार में चला गया<sup>१</sup>। इसकी पुष्टि नासिक में प्राप्त एक शिलालेख से भी मिलती है, जिसके अनुसार नहपान के जमाई द्वारा दान में दिया हुआ खेत शातकर्णि द्वारा दुबारा दिया गया<sup>२</sup>। शातकर्णि के पुत्र वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि के अभिलेखों में उसको “शक, यवन और पल्लवों का विनाश करने वाला” तथा “खखरात (क्षहरात) कुल को नष्ट करने वाला” कहा गया है<sup>३</sup>। नासिक में प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार इसने २४ वर्ष या अधिक अवधि के लिए राज्य किया। अमरावती (गुंदूर) कोंडापुर (मेड़क जिला) आदि आन्ध्र-प्रदेश के कई स्थानों में इसकी मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। अमरावती में इसके शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं। उसने वास्तविक रूप में सातवाहन कुल की कीर्ति पुनः प्रतिष्ठापित की<sup>४</sup>।

**गौतमी-पुत्र का साम्राज्य :**—गौतमी-पुत्र शातकर्णि के विशाल साम्राज्य का वर्णन करते हुए, पुलुमावि के एक अभिलेख में बताया गया है कि वह

१. ज. वाँ. ब्र. रा. ए. सो. (१९०७); रेंप्सन्, कंटलॉग, प्रस्तावना, पृष्ठ, ३६, ८८; पाठ्य, पृष्ठ ६८, ७० आदि.

२. ए. इ., ग्रन्थ ८, पृ. ७१.

३. ए. इ., ग्रन्थ ८, पृ. ६० ‘सक-यवन-पल्लव-निसूदनस खखरात-वस-निरवसेस-करस ।’

४. वहीं—‘सातवाहन-कुल-यस-पतिठापन-करस ।’



(११०)

उज्जयिनी

ऋषिक<sup>१</sup> अश्मक<sup>२</sup> मुण्डक (या मूलक,<sup>३</sup>), सौराष्ट्र<sup>४</sup> कुरुर,<sup>५</sup> अपरान्त<sup>६</sup> अनूप<sup>७</sup> विदर्भ<sup>८</sup> आकर<sup>९</sup> एवं अवन्ति<sup>१०</sup> जनपदों का राजा बन गया था<sup>११</sup> । इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्षत्रात नहपान के कुल का विध्वंस करने के पश्चात् उसने न केवल नासिक के आसपास का प्रदेश ( अश्मक आदि ) अपने अधिकार में ले लिया, बल्कि उज्जयिनी (अवन्ति) आदि प्रान्त भी उसकी प्रभुता मानने लगे ।

गौतमी-पुत्र के कुछ सिक्कों पर तथाकथित 'मेरु' या 'चैत्य' का चिह्न है, वही इसके पश्चात् चष्टन की मुद्राओं पर भी प्राप्त होता है । इससे यह सम्भव होता है, कि जहाँ इस प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित थीं, वह प्रदेश संभवतः चष्टन के हाथ में चला गया ।

- 
१. असिक=ऋषिक=असीरगढ़ के आसपास का प्रदेश ।
  २. असक=अश्मक=पैठण के आसपास का प्रदेश
  ३. मूलक=१ मुण्डक=मुण्डा जाति का रहने का प्रदेश; या २. मूलक, मूलीय, विन्ध्य-मूलीय=मूल तापी के आसपास का प्रदेश.
  ४. सुरठ=सौराष्ट्र=पश्चिम एवं दक्षिण काठियावाड़ ।
  ५. कुरुर=उत्तर काठियावाड़ तथा दक्षिण राजस्थान ।
  ६. अपरान्त=सोपारा के आसपास का पश्चिमी तट ।
  ७. अनूप=माहिष्मती (महेश्वर) के आसपास का निमाड़ ।
  ८. विदर्भ=वर्धा नदी की घाटी ।
  ९. आकर=पूर्वी मालवा ।
  १०. अवन्ति=पश्चिमी मालवा ।
  ११. 'असिक-असक-मूलक-सुरठ-कुरुरापरान्त-अनूप-विदर्भ-आकरावन्ति-राजस'-ए. इ. ग्रन्थ ८, पृ. ६० पश्चात् ।

आहुति : द्वाविंजा

आद्य कार्दमिक राजे (ई. १२०-१७५)

चष्टन ( ई. १२६-१३५ ) :—गीतमी-पुत्र शातकर्णि के पश्चात् उज्जैन में चष्टन राज्य करने लगा । उसके सम्बन्ध में प्रमाण न केवल उपर्युक्त मुद्रा-चिह्न में ही, बल्कि अन्यत्र भी पाया जाता है । तोलेमी नामक भूगोल-वेत्ता एवं गणतिज्ञ ने भारत के भूवर्णन के साथ-साथ, अपने समय के बड़े-बड़े बंदरगाहों, मंडियों, नगरों एवं उनके राजाओं के नाम बताए हैं । उसका सम्बन्धित ग्रन्थ ई. १२० से १३० के मध्य में लिखा गया है । उसके अनुसार उस समय उज्जैन में चष्टन, पैठन में पुळुमावि एवं कोल्हापुर में विळिवायकुर नामक राजा राज्य करते थे<sup>१</sup> । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुळुमावि के समय सातवाहनों का राज्य काफी सीमित हो गया था ।

चष्टन पहिले क्षत्रप था, पश्चात् महाक्षत्रप बना । उसके वंशजों में भी इसी प्रकार सभी महाक्षत्रप शासन काल के प्रथम वर्षों में क्षत्रप रहे । कई क्षत्रप कभी भी महाक्षत्रप बन नहीं पाए । अधिकांश क्षत्रपों को महाक्षत्रप बनने के पूर्व महाक्षत्रपों के नीचे काम करना पड़ा था । इस प्रकार वास्तविक राजे महाक्षत्रप ही थे । क्षत्रप केवल उनके सहायक राजे रहे । महाक्षत्रपों के सहायक क्षत्रपों की मुद्राओं में संवत् वर्ष कई बार पाए गए हैं । महाक्षत्रपों के संवत् वर्ष क्रमशः, एक "संतति" में आते हैं । क्षत्रपों के भी उसी प्रकार क्रमशः आते हैं । दोनों क्रम स्वतन्त्र रहे । 'द्वैराज्य' का यह एक प्रकार था<sup>२</sup> । इसने कुछ इतिहास-लेखकों को संभ्रम में डाला, जिन्होंने इनके आपसी लड़ाईयाँ तथा भिन्न-भिन्न स्थानों पर के राज्यों के सम्बन्ध में लिखा है ।

इसी पद्धति के अनुसार महाक्षत्रप चष्टन के समय में उसके पुत्र क्षत्रप जयदामन् की मृत्यु होने पर रुद्रदामन् क्षत्रप बना । शक संवत् ५२ (=ई. १३०) के म. श.

१. क्लौदियस् तोलेमायस्, जिऑग्राफी, Ozene Basileion Tiastanou.

२. इस बात को कर्नल जे. बिडूल्फ द्वारा बहुत पूर्व में ही विशद कर दिया गया है । देखिए—ज. रा. ए. सो. (१८६६), पृ. ४०४.



चष्टन व क्ष.रुद्रदामन् के शिलालेखों से काठियावाड़ में भी उस समय इनका राज्य था, यह बात प्रमाणित होती है । तथा जूनागढ़ में प्राप्त मुद्राओं से भी चष्टन का राज्य वहाँ होने का प्रमाणित होता । मालवा एवं काठियावाड़ के अतिरिक्त सम्भवतः राजस्थान का कुछ भाग इसके अधीन रहा होगा । शक संवत् ७२ (=ई. १५०) के जूनागढ़ के शिलालेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय रुद्रदामन् स्वयं महाक्षत्रप बना था ।

महाक्षत्रप रुद्रदामन् (ई. १३५ से १७०) :—जैसा कि जूनागढ़ के शिलालेख में पाया जाता है, म. क्ष. रुद्रदामन् के अधीन एक विस्तृत राज्य था, एवं “आनर्त तथा सुराष्ट्र” ( काठियावाड़ ) के लिए उसने एक अधिकारी भी नियुक्त किया था । सम्भवतः अपने विशाल राज्य का कारोबार देखने हेतु, अपने दादा के समान उसने भी अपनी राजधानी उज्जयिनी में रखी थी । इसके विशाल राज्य में पूर्व आकर,<sup>१</sup> अपर आकर<sup>२</sup> अवन्ति, अनूप देश, आनर्त,<sup>३</sup> सुराष्ट्र,<sup>४</sup> श्वभ्र,<sup>५</sup> मरु, कच्छ, सिन्धु,<sup>६</sup> सोवीर,<sup>७</sup> कुरुर,<sup>८</sup> अपरान्त,<sup>९</sup> निषाद<sup>१०</sup> आदि प्रदेश अन्तर्गत थे ।

उज्जैन से ही उसने अपने राज्य का अधिक विस्तार भी किया । सर्व क्षत्रियों में अग्रगण्य यौधेय तथा सातवाहन कुल का राजा शातकर्ण को पराजित

- 
१. आगर के आसपास का प्रदेश ।
  २. आगरौद के आसपास का प्रदेश ।
  ३. आनन्दनगर या वडनेर के आसपास का प्रदेश ।
  ४. पश्चिम एवं दक्षिण काठियावाड़ ।
  ५. जिसे अब ‘सावरकांठा’ कहते हैं । ‘श्वभ्रमती’ या साबरमती की घाटी ।
  ६. सिन्धु नदी की दक्षिण घाटी ।
  ७. पञ्चनद के दक्षिण में, रोहरी के आसपास सिन्धु की घाटी ।
  ८. उत्तर काठियावाड़ एवं दक्षिण राजस्थान ।
  ९. सोपारा के आसपास का पश्चिमी किनारा ।
  १०. पन्ना के आसपास का आटविक देश ।

किया। यौधेय रोहतक के आसपास रहते थे। शातकर्णि दक्षिणापथ-पति था, यह उसी शिलालेख से विदित होता है। रुद्रदामन् ने उसको “युद्ध में सरलता पूर्वक दुबारा जीत लिया, फिर भी उससे निकट का रिश्ता होने के कारण, उसने शातकर्णि को नष्ट नहीं किया है” यह भी उसमें लिखा है।

गौतमीपुत्र शातकर्णि के पश्चात् उसके दो पुत्र—वासिष्ठीपुत्र पुल्लुमावि तथा वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि—क्रमशः सातवाहनों की राजगद्दी पर बैठे। कण्हेरी (जिला नासिक) के एक अभिलेख के अनुसार, वहाँ की किसी गुफा का दान “वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि” नामक राजा की पत्नी ने किया था,—जो अपने को “महाक्षत्रप रुद्र [दामन्]” की पुत्री कहलाती है। यही शातकर्णि रुद्रदामन् का निकट का संबन्धी था, जिसको दुबारा जीतने पर भी राजा बनाए रखना आवश्यक था।

कार्दमिक कुल :—म. क्ष. रुद्रदामन् की पुत्री अपने को “कार्दमिक” कुलोत्पन्न कहलाती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रुद्रदामन् के कुल का नाम “कार्दमिक” था। सम्भवतः यही कुल-नाम कुछ पुराणों में—बजाय ‘कार्दमिल’-‘गर्दभिल’ लिखा गया। आन्ध्रों का राज्य होते हुए (‘संस्थिते राज्ये’) अन्य राजा भी राज्य करते थे, एवं उनमें सात ‘गर्दभिल’ (=कार्दमिल) तथा तेरह ‘गुरुण्ड’ (=गुरुण्ड) राजे हुए, यह बात भी उनमें प्रायः स्पष्ट की है<sup>२</sup>।

१. जूनागढ़ शिलालेख:—“दक्षिणापथ-पति शातकर्णि द्विरपि निर्व्याजिमवजित्या-वजित्य सम्बन्धाविदूरतया अनुत्सादनात्प्राप्तयशसा.....।”

२. पार्जिटर्, डा. क. ए.:—

“आन्ध्राणां संस्थिते राज्ये.....।

.....सप्त गर्दभिला(कर्दमिला)श्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥

.....त्रयोदश गुरुण्डा(गुरुण्डा)श्च.....॥”



[(११४)]

उज्जयिनी

आहुति : त्रयोविंश  
 उज्जयिनी के कार्दमिक (गर्दभिल)  
 ( = ई. १७५-३०९ )

कार्दमिक महाक्षत्रप :—रुद्रदामन् के पश्चात् उज्जैन में ही उसके वंशजों की राजधानी रही । आगे की चर्चा सुगमता से समझने हेतु, इस कार्दमिक कुल के प्रमुख महाक्षत्रपों की परम्परा मात्र नीचे दी गई है ।

रुद्रदामन्<sup>१</sup> (७२)

प्रथम रुद्रसिंह (१२०-११८)

प्रथम रुद्रसेन (१२५-१४२)

दामसेन (१४५-१५७)

(क्ष. वीरदामन्)

विजयसेन (१६१-१७२)

तृतीय दामजदश्री

द्वितीय रुद्रसेन (१७५-१६७)

(१७३-१७७)

भर्तृदामन् (१६६-२२०)

(क्ष. विश्वसेन (२१६-२२६) )

प्रथम रुद्रसिंह, प्रथम रुद्रसेन तथा दामसेन की मुद्राएँ उज्जयिनी में काफी मात्रा में पायी गयी हैं । इन सबकी तथा विजयसेन की मुद्राएँ ऊपरकोट (काठियावाड़) में पाये गये एक दफ्तीने में, तथा वेसनगर (विदिशा) के उत्खनन में भी पाई गई हैं । रुद्रसेन की मुद्राएँ पुष्कर (अजमेर) में उपलब्ध हैं तथा शक सं. १२२ (ई. २००) का) एक शिलालेख मूलवासर (काठियावाड़) में उपलब्ध हुआ है । दामसेन की मुद्राएँ सारंगपुर (जिला शाजापुर) में पाई

१. क्षत्रप वीरदामन् तथा क्षत्रप विश्वसेन कभी भी महाक्षत्रप नहीं हुए । अतः कुछ महाक्षत्रपों ने अल्प समय के लिए मात्र राज्य करने से उनके नाम नहीं लिखे नहीं गए हैं । क्षत्रपों के नामों के पश्चात् कोष्ठकों में दिए हुए अंक उपलब्ध शक संवत् के हैं । केवल रुद्रदामन् विषयक अंक शिलालेख प्राप्त संवत् का है ।

गयी हैं<sup>१</sup> ।

उपर्युक्त से स्पष्ट हो जाता है कि करीब शक सं. १७२ (ई. २५०) तक कार्दमिक राजाओं के अधिकार में अवन्ति के अतिरिक्त पूर्व तथा पश्चिम आकर आनर्त, सुराष्ट्र, कुकुर, मरु आदि प्रदेश पूर्ववत् ही रहे थे । उज्जयिनी इनके केंद्र स्थान में होने के कारण सम्भवतः वह उनकी राजधानी थी । केवल प्रथम रुद्रसिंह के समय में एक विशेष घटना दिखाई देती है । वह यह है कि शक संवत् ११० से ११२ में वह “महाक्षत्रप” नहीं रहा । इस छोटे से कालखण्ड में वह केवल ‘क्षत्रप’ कहलाता है । जैसा कि राव बहादुर का. ना. दीक्षितजी ने दिखलाया है, सम्भवतः इसी कालखण्ड में यज्ञश्री शातकर्णि की उज्जयिनी के क्षत्रपों के अनुकरण में प्रसारित की हुई मुद्राएं पायी जाती हैं<sup>२</sup> । इससे प्रतीत होता है कि इस कालखण्ड में कुछ समय के लिये उज्जयिनी सातवाहनों के अधीन रही होगी ।

कार्दमिकों के समकालीन सार्वभौम राजे :—उपर्युक्त कार्दमिक शक क्षत्रपों के समय में उत्तर-भारत में कुषाण वंशीय पाहानुषाहि प्रथम कनिष्क के वंशज पा. हुविष्क (ई. १६९-२०३) तथा पा. वासुदेव (ई. २१४-२४१) शासक हुए<sup>३</sup> ।

दक्षिणापथ में करीब ई. १५० से २०० तक जो सातवाहन राजा हुए, उनमें वासिष्ठीपुत्र शिवश्री शातकर्णि (ई. १५०), गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णि

१. रॅप्सन्, कॅटलॉग; मार्शल, कॅटलॉग (१९२६); आ. स. इ. अ. रि. (१९१३-१४); ज. रा. ए. सो. (१८६०) व (१८६६); आदि के आधार पर यह लिखा गया है ।

२. यज्ञ श्रीशातकर्णि के कुछ सिक्के आमरेली (काठियावाड़) में प्राप्त हुए हैं । इससे यह प्रतीत होता है कि सोराष्ट्र, आनर्त आदि प्रदेश उसने क्षत्रपों से छीन लिये थे ।

३. देखिये प्रा. मा. सं. पृ., २५३, आदि



(ई. १८८-१९०) तथा वासिष्ठोपुत्र चण्डश्री शातकर्णि प्रमुख हैं। सातवाहन वंश का राज्य प्रायः ई. २२० के करीब समाप्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सत्ता सम्भवतः कुछ प्रदेशों में शक क्षत्रपों ने तथा अन्य प्रदेशों में इक्ष्वाकु (? आन्ध्रभृत्य) राजाओं ने छीन ली<sup>३</sup>।

संक्षेप में, दामजदश्री (तीसरा), रुद्रसेन (दूसरा), भर्तृदामन् एवं विश्वसेन इन सब के सिक्के एक ओर उमरकोट (या पठाणपुर)<sup>२</sup>, दूसरी ओर बेसनगर एवं तीसरी ओर पेटलुरियापालेम (जिला गुंटूर, द. आन्ध्र) में पाये गये हैं। चूँकि क्षत्रप वीरदामन् और म. क्ष. विजयसेन के सिक्के भी गुंटूर जिले के उसी स्थान में पाये गये हैं, अतः यह सम्भव है कि कार्दमिक शकों की सत्ता शक १६१ (ई. २३९) के करीब गुंटूर तक बढ़ चुकी थी।

**मुद्राशास्त्र का प्रमाण :—**क्षत्रप विश्वसेन, जिसने ई. ३०४ तक कार्दमिकों की क्षत्रप-गद्दी सम्हाली, वह इस वंश का आखरी राजा था। प्रो. रेंप्सन् ने भी दिखलाया है कि क्षत्रप विश्वसेन के पश्चात् इस वंश की सीधी परम्परा खण्डित हो जाती है<sup>३</sup>। “इसके पश्चात् (शक) संवत् २२७ (ई. ३०५) में स्वामी जीवदामन् का पुत्र क्षत्रप रुद्रसिंह (दूसरा) राजगद्दी का उत्तराधिकारी हो जाता है।……” स्वामी जीवदामन् को ‘राजा’ जैसी कोई उपाधि नहीं है<sup>४</sup>। ऐसा भी प्रो. रेंप्सन् ने कहा है। साथ-साथ यह भी सुझाया है कि जीवदामन् भर्तृदामन् का भाई हो सकता है; किन्तु इसके विषय में कोई प्रमाण नहीं है।

इसके विपरीत मानने के लिये ही पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरानी राज्य-संस्था नष्ट होकर एकदम नयी राज्य-

१. वहीं, पृ. २९४-२९८.

२. म. क्ष. द्वितीय रुद्रसेन की कुछ मुद्राएं पठाणपुर (गुजरात) में पायी गई हैं। शेष सबको ऊपरकोट (काठियावाड़) में पाई गई।

३. रेंप्सन्, कंट्लॉग, पाठ्य, पृ. १६६.

४. वहीं.

संस्था आ चुकी थी। (१, पूर्व में सौ-डेढ़-सौ वर्षों में सिक्कों पर न पाया जानेवाला 'स्वामि' शब्द क्षत्रपों की उपाधि के रूप में सिक्कों पर दिखाई देने लगा<sup>१</sup>। (२) विश्वसेन के स्वयं के, तथा उसके पूर्व के सिक्कों पर 'राज्ञः क्षत्रपस' इस प्रकार, मिश्रित भाषा में भी, संस्कृत के सन्धि-नियम का पालन किया जाता था<sup>२</sup>। क्षत्रप रुद्रसिंह (दूसरा) के समय से 'राज्ञो क्षत्रपस' लिखा जाने लगा<sup>३</sup>। (३) विश्वसेन तक के सिक्कों से क्षत्रप रुद्रसिंह की मुद्राएँ अधिक ऊँचे दर्जे की एवं अच्छी बनावट की दिखाई देती हैं। जब सम्राट् या बड़ा राजा छोटे राजाओं को जीतकर उनका राज्य अपने राज्य में जोड़ लेता है, या उस पर अधिकार चलाता है, तभी इस प्रकार का परिवर्तन हुआ करता है।

**डॉ. भगवानलाल का मत :—**इसी परिवर्तन पर, भारत के पहिले श्रेष्ठ मुद्राशास्त्रज्ञ एवं गुजराती महापण्डित डॉ. भगवानलाल इन्द्रजी द्वारा ७५ वर्ष पूर्व ही जो प्रकाश डाला गया था, वह लेखक को—उपरोक्त सब कुछ तथा आगे की सम्बन्धित 'आहुतियाँ' देने पर—दिखाई दिया, तब एक आश्चर्यजनक घटना सी लगी। उन्होंने ई. १८६० में ही बतलाया है कि:—

“It is also possible that some foreign prince may have invaded the country and made one of his officers Kshatrapa. A Change in the style of coinage, an improvement in fact, might be seen to indicate a change of dynasty.<sup>4</sup>”

१. वहीं, पृ. १६१.

२. म. क्ष. भर्तृदामन् तथा क्ष. विश्वसेन की मुद्राओं में अक्षरवाटिका ठीक-ठीक नहीं लिखी जाती थी। 'महाक्षत्रप' शब्द में 'ह' अक्षर उस समय के 'न' जैसा लिखा जाता था। यह भी इस समय की गिरी हुई स्थिति का सूचक है।

३. रेंप्सन्, कॅटलॉग, प्रस्तावना, पृ. १४४

४. ज. (1899), पृ. 639 पश्चात्।



(११६)

उज्जयिनी

गर्दभिल विषयक समस्यायें :—यदि 'गर्दभिल' यह 'कर्दमिल' (या तो 'कर्दमिक') का अपभ्रंश रूप मान लिया जाय, तो प्राचीन इतिहास की एक बिकट समस्या सुलझ जावेगी ।

(अ) पौराणिक 'गर्दभिलों' के विषय में उज्जयिनी तथा अन्यत्र कहीं भी कोई मुद्राएं, अभिलेख आदि के रूप में प्रमाण नहीं पाया जाता है । कर्दमिकों का वंश (चष्टन-रुद्रदामन् का कुल) सुविख्यात होने पर भी पुराणों में उसका उल्लेख तक नहीं पाया जाता है—वशतें 'गर्दभिल' के रूप में उनका उल्लेख न हो ।

(ब) जैनियों के ग्रंथों में मान्यता है कि 'गर्दभिल' राजे उज्जैन में ही राज्य कर रहे थे । यह प्रमाणित हो चुका है कि 'कर्दमिक' राजे उज्जयिनी में ही राज्य करते थे ।

## आहुति : चतुर्विंश कालक-कथा ( ई. ३०० )

उज्जयिनी के इतिहास में जैन मुनि कालकाचार्य की कथा को एक अभूतपूर्व महत्व प्राप्त है। फलस्वरूप भारत इतिहास में कई समस्याएँ बनी हुई नजर आती हैं। कालकाचार्य की कथा<sup>१</sup> की रूप-रेखा निम्न-रूप दी जा सकती है :—

धरावास (धारा ?) नामक नगरी में वैरिसिंह नामक राजा राज्य कर रहा था। उसकी पत्नी सुरसुन्दरी से उसके कालक तथा सरस्वती नामक दो अपत्य हुए<sup>२</sup>। उन दोनों ने वैराग्य-वश जैन-धर्म की दीक्षा ले ली एवं यात्रा करते हुए वे उज्जयिनी के राजा के उपवन में प्रविष्ट हुए।

१. इसके लिए निम्नलिखित पुस्तकों का प्रमुखतः उपयोग किया गया है :—

१. श्रीदेवचन्द्र - सूरि द्वारा विरचित कालकाचार्य कथा ( ई. १०८८ ) ।
२. श्रीहेमचन्द्र - सूरि द्वारा लिखित विरचित कालकाचार्य कथा ( ई. १२ वीं शताब्दी ) ।

३. श्रीप्रभाचन्द्र सूरि द्वारा लिखित कालक-चरितम् । ( 'प्रभावक-चरित' के अन्तर्गत )

४. श्रीमहेश्वर सूरि का कालकाचार्य - कथानक ( ई. १३०६ ) ।

५. श्रीदेवेन्द्र सूरि की कालकाचार्य-कथा ।

आधुनिक ग्रन्थ : —

१. हेर्मान् याकोबी, ZDMG ३४. २४७-३१८; ३५. ६७५ पश्चात्;

२. लेउमान्, ZDMG ३७. ४६३. पश्चात् ।

३. नॉर्मन् ब्राउन् - Story of Kalaka

४. साराभाई नवाब, श्रीकालक-कथा-संग्रह ।

५. काशीप्रसाद जायसवाल, हि. आ. इंडिया ।

१. श्रीदेवचन्द्र : — तीसे.....कालगकुमारो नाम पुत्तो ।

श्रीहेमचन्द्र :— 'कालो नामेण सुओ .....'

श्रीप्रभाचन्द्र :— 'कालको काल-कोदण्डखण्डितारिः सुतोऽभवत् ।



इस समय उज्जयिनी में गर्दभिल ( ? कार्दमिक ) नामक राजा राज्य कर रहा था । उपवन में प्रविष्ट हुई सरस्वती का अद्वितीय सौन्दर्य एवं रूप-गुण देख कर उस राजा ने उसका बलपूर्वक अपहरण किया । वह हताश होकर 'कालक' के नाम से पुकारती हुई बहुत चिल्लायी और रोयी ।

जब गर्दभिल ने उसकी भावनाओं का, तथा कालक-मुनि के नम्रता पूर्वक निवेदन का, किसी का भी आदर नहीं किया, तब कालक ने प्रतिज्ञा की कि वह गर्दभिल राजा को उन्मूलित करके ही रहेगा<sup>२</sup> । श्रीदेवचन्द्र की कालक-कथा में 'गर्दभिल राजाओं, का उल्लेख है । जैनियों के कुछ अन्य ग्रन्थों में रासभ वंश के राजाओं का उल्लेख है । पुराणों में भी 'गर्दभिल' यह राजा का नाम न देते हुए, इसे एक राजवंश बताया गया है । श्री प्रभाचन्द्र के कालक-चरित में इसे अन्तिम गर्दभिल को "अन्यायकर्म-क्रोड कहा गया" है<sup>१</sup> ।

साहाणुसाही सम्राट् :—इसके पश्चात्, सिन्धु-नदी पार करके कालकाचार्य उस देश को चला गया, जहां के सामन्त राजा 'साही' कहलाते थे, एवं उनका अधिपति 'साहाणुसाही' कहलाता था<sup>३</sup> । जैसा कि हरिषेण-विरचित

१. श्रीदेवचन्द्र:— 'तेसि वच्छामि गइं, जइ एयं गर्दभिल-रायाणं । उन्मूलेमि ण सहसा, रजामों भट्ट-मजायं ॥२६॥'

२. श्री प्रभाचन्द्र :— 'प्रतिज्ञां विदधे घोरां तदा कात तापिनीम् ॥ ..... न चेदुच्छेदये शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवम् । अन्याय-कर्म-क्रोडं विबुवन्तं नृप बुवम् ॥'

३. श्री देवचन्द्र :— "अणवरयं च गच्छंतो पत्तो सग-कूलं णाम कूलं । तत्थ जे सामंता ते साहिणे भणंति । जो य सामंताधिवई सहल-नरेंद-वंद-चूडामणी सो साहाणुसाही भण्णइ ।"

श्री हेमचन्द्र :— 'कमसो य तओ पत्तो सगकूलं नाम सिन्धुपरकूलं । तत्थ य जे सामंता ते सब्बे साहिणो भणिया ॥२८॥ साहाणुसाहिनामेण भन्नए ताण अधिवई राया ।'

श्री प्रभाचन्द्र :— "सिन्धुतीरमगाच्छनैः ॥४३॥ शाखिदेशश्च तत्रास्ति राजानस्तत्र शाखयः । शकापराभिधाः सन्ति.....॥ तेषामेकोऽधिराजोऽस्ति सप्तलक्षतुरङ्गमः ।"

समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति से विदित होता है, 'पाहि' एवं 'पाहानुपाही' शक-मुरुण्डों की उपाधियाँ थी<sup>१</sup>। प्रथम कनिष्क ( ई. १४४-१६५ ) के पहले किसी भी कुषाण सम्राट् ने 'पाहानुपाही' उपाधि धारण नहीं की थी<sup>२</sup>। उपरोक्त से स्पष्ट हो जाएगा कि किसकी सहायता लेने हेतु वहाँ कालकाचार्य चला गया था।

लाट के राजे :—इसके बाद वहाँ के एक 'साहि' राजा की सहायता लेकर उसकी सेना सहित कालकाचार्य अचानक उज्जयिनी आया। कालक का भानजा बलमित्र उस समय भरुकच्छ ( भड़ोच ) का राजा था। वह भी अपने भाई भानुमित्र के साथ, उसी समय उज्जयिनी पहुँच गया। अपने बल एवं सामर्थ्य पर नितान्त विश्वास के कारण असावधान गर्दभिल राजा जिन्दा पकड़ा गया<sup>३</sup>। कुछ समय बाद उन्होंने उसे मरवा डाला।

बलमित्र को जैन ग्रन्थों ने लाट देश का राजा माना है<sup>४</sup>। जैन उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि उज्जयिनी के गर्दभिलों का नाश कुषाण पाहानुपाहि तथा लाट-देश के अधिपतियों ने मिलकर किया।

१. "दैवपुत्र-पाहि-पाहानुपाहि-शकमुरुण्डै":—हरिषेण-प्रशस्ति। 'दैवपुत्र-पाहि' उपाधि कनिष्क, हुविष्क वासुदेव, वासिष्क आदि कुषाण सम्राटों के अभिलेखों में उपलब्ध हैं। 'पाहानुपाही' उपाधि उन्हीं की मुद्राओं में पायी जाती है। कनिष्क आदि सम्राट् ही शकमुरुण्ड ( शकाधिपति ) कहलाते थे।

२. देखिए लेखक की पुस्तक 'प्राब्लेम ऑफ दि कुषाणज्.....' ( अ. भा. ओ. सी. इ. , ग्रन्थ ३८, पृ. १०३-१०५ )

३. श्री देवचन्द्र :—'गहिओ सजीवगाहं गद्भिल्लो।'

४. वहीं :—'लाड-विसय-रायाणौ'

श्री हेमचन्द्र :—'लाड-विसय-निववगं गिण्हंता.....'



जैन ग्रंथों से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि गर्दभिल-वंश का यथा सूचित अन्त हो जाने पर, कुछ समय के बाद वहाँ जो शक-वंश राज्य कर रहा था, उसका अन्त विक्रमादित्य ने किया<sup>१</sup>। गर्दभिल वंश का और विक्रमादित्य का कुछ भी साक्षात् सम्बन्ध नहीं था।

कालक कथा से कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं जैसे—(१) यह कथा 'पाहणुपाहि' उपाधि से विभूषित कुषाण सम्राटों के समय की है। (२) इस समय 'गर्दभिल' सदृश नाम के किसी राजवंश का राज्य उज्जयिनी में चल रहा था। (३) किसी भी कारण से हो, उस समय के 'गर्दभिल' राजा की एवं 'पाहणु-पाहि' सम्राट् की वैमनस्यता, या दुश्मनी रही। (४) सम्राटों को लाट देश के राजाओं की सहायता प्राप्त हुई। (५) यदि यह 'गर्दभिल' वंश 'कार्दमिल' ही माना जाय, तो कालक-कथा कार्दमिल-कुल के आखीर के महाक्षत्रप भर्तृ-दामन् (शक सं. १६६-२२०) के समय की है। यानी वह लगभग ई. ३०० की है।

**आभीर-राज्य :**—क्या उज्जयिनी के तत्कालीन राजकीय इतिहास में इस प्रकार की कोई घटना हुई है? जैन कवि देवेन्द्र ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शाखि एवं गर्दभिल राजा का घमासान युद्ध हुआ<sup>२</sup>। क्या इसका कोई अन्य प्रमाण उपलब्ध है?

१. श्री देवचन्द्र :—'कालंतरेण केणइ..... । जाओ मालवराया, णामेणं विक्कमाइच्चो ॥६४॥'

श्रीप्रभाचन्द्र :—“शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि हि । राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमोपमोऽभवद् ॥”

श्रीमेरुतुङ्ग की विचारश्रेणि में बताया गया है कि गर्दभिलों के बाद कालान्तर से शकवंश हुआ, और पश्चात् विक्रमादित्य हुआ :—

'कालंतरेण केणवि उप्पाडित्ता सगाण तं वंसं । होही मालवराया णामेणं विक्कमाइच्चो ॥'

२. श्रीदेवेन्द्र की कालक-कथा :—

“ससैन्यो गर्दभिल्लोऽपि नगर्या निर्ययौ ततः ।

शाखिभूधवयोर्युद्धं जातं रामदशास्यवत् ॥”

(१) म. क्ष. चष्टन से म. क्ष. भर्तृदामन् तक कार्दमिक कुल में क्रम से एक के पश्चात् दूसरा महाक्षत्रप बना। म. क्ष. भर्तृदामन् (आखरी शक संवत् २२०) के पश्चात् तृतीय रुद्रसेन (प्रथम शक वर्ष संवत् २७०) तक—कुल ५० वर्षों में कोई शक महाक्षत्रप नहीं हुआ।

(२) शक सं. २२० या लगभग ई. ३०० में आभीर महाक्षत्रप ईश्वरदत्त का उदय हुआ, एवं उसने महाक्षत्रप गद्दी अपना कर शक क्षत्रपों जैसी मुद्राएँ प्रसारित कीं यह मुद्राशास्त्रज्ञों ने प्रमाणित किया है। चूँकि शक सं. २२० तक महाक्षत्रप की गद्दी बराबर कार्दमिकों के हाथों में रही, इसका समय इस दिनांक के पूर्व का नहीं माना जा सकता है।

(३) ईश्वरदत्त आभीर की मुद्राएँ सुराष्ट्र, लाट एवं अवन्ति में बड़ी मात्रा में उपलब्ध होती हैं, यह डॉ. भगवानलाल इन्द्रजी तथा डॉ. रैप्सन् द्वारा प्रमाणित हो चुका है। उसकी मुद्राएँ कोंकण, उत्तर महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश में भी कई स्थानों पर पायी गई हैं।

(३) ईश्वरदत्त के पश्चात् सम्भवतः आभीर महाक्षत्रप शिवदत्त तथा उसका पुत्र आभीर राजा 'माठरिपुत्र' (माढरीपुत्र) ईश्वरसेन का राज्य हुआ।

और सम्भवतः इसके पश्चात् राजा डामरीपुत्र वीरसेन का राज्य हुआ।

महाक्षत्रप-शून्य कालान्तर<sup>२</sup> (Mahakshatrapa Interregnum):—  
उपर्युक्त के अनुसार कार्दमिक कुल के पश्चात् आभीर महा- क्षत्रप एवं शकक्षत्रपों की स्थिति निम्नरूप दिखाई देती है :—<sup>१</sup>

| शक सं. | आभीर महाक्षत्रप                                                        | शक सं.       | शक क्षत्रप                  |
|--------|------------------------------------------------------------------------|--------------|-----------------------------|
| २२०    | } म. क्ष. ईश्वरदत्त<br>म. क्ष. शिवदत्त<br>राजा ईश्वरसेन<br>राजा वीरसेन | २२७-२३१      | राजा क्ष. रुद्रसिंह (तृतीय) |
| से     |                                                                        | २३६-२५४      | राजा क्ष. यशोदामन्          |
| २७०    |                                                                        | (क. सं.)-१०२ | राजा श्रीधरवर्मन्]          |

१. इसमें शक क्षत्रपों की मुद्राओं पर किसी को महाक्षत्रप उपाधि नहीं दिखाई देती है।



(१२४)

उज्जयिनी

इसके स्पष्टीकरण में कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य होंगी:—(१) अंतिम कार्दमिक क्षत्रप विश्वसेन की मुद्राएँ ऊपरकोट (सुराष्ट्र), सांची-वेसनगर (विदिशा), गुंदूर स्थानों में पायी जाती है। रुद्रसिंह व यशोदामन् की विदिशाक्षेत्र में ही अधिकतर पायी जाती हैं। शक सं. २५४ के पश्चात् शक सं. २७० तक कोई शक संवत् की मुद्रा नहीं पायी जाती।

(२) जिस क्षेत्र में अन्तिम कार्दमिक क्षत्रप विश्वसेन की मुद्राएँ पायी जाती हैं, प्रायः उसी क्षेत्र में (विदिशा के अतिरिक्त), ईश्वरदत्त आभीर की मुद्राएँ उपलब्ध होती हैं। गुंदूर जिले में प्राप्त एक दफीने में उसकी एक मुद्रा प्राप्त हुई, जब कि क्ष. विश्वसेन की २०, तथा म. क्ष. भर्तृदामन् की ८ मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। उस दफीने में जिनकी मुद्राएँ मिली, उनमें यह तीन आखरी राजा हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि वह दफीना क्ष. विश्वसेन के पश्चात् थोड़े समय में ही जमीन के अन्दर रखा गया होगा। म. क्ष. ईश्वरदत्त का राज्य तब प्रारम्भ ही हुआ होगा।

(३) सांची में पाये गये कए अन्य दफीने में भी बहुतांश इसी प्रकार की स्थिति है। केवल वहाँ ईश्वरदत्त की जगह पर 'स्वामि' क्षत्रप रुद्रसिंह के सिक्के म. क्ष. भर्तृदामन् तथा क्ष. विश्वसेन की मुद्राओं के साथ पाये जाते हैं<sup>१</sup>।

| १. पेटलुरिपालेम<br>जिला गुंदूर | म. क्ष.                    | सांची<br>(जिला रायसेन) |
|--------------------------------|----------------------------|------------------------|
| १३ ....                        | विजयसेन                    |                        |
| ११ ....                        | दामजदश्री                  |                        |
| ५३ ....                        | रुद्रसेन ....              | ७                      |
| २६ ...                         | विश्वसेन ....              | २                      |
| ८ ....                         | भर्तृदामन् ....            | ११                     |
| २० ....                        | क्ष. विश्वसेन ....         | ८                      |
| १                              | म. क्ष. ईश्वरदत्त          |                        |
|                                | स्वामि क्ष. रुद्रसिंह .... | २                      |

देखिये डि. आ., अ. रि. इ. ए. (१९५६-५७), पृ. २१ पश्चात्। मार्शल कॅटलॉग, पृ. ६० पश्चात्।)

चूँकि कार्दमिल राजाओं की मुद्राओं में इसके पूर्व १५० वर्ष 'स्वामि' शब्द दिखाई नहीं देता है, अतः स्पष्ट है कि पूर्व की परम्परा नष्ट होकर नयी चालू हुई। क्योंकि इसके बाद कई क्षत्रपों की मुद्राओं में यह उपाधि दृष्टिगोचर होती है।

(४) उपर्युक्त के अनुसार गुंदर क्षेत्र में तथा सांची क्षेत्र में कार्दमिक क्षत्रपों की परम्परा लगभग ई. ३०० में टूट गयी, एवं नया राज्य प्रारम्भ हुआ ऐसा प्रतीत होता है। उससे यह भी प्रमाणित होता है कि आभीर ईश्वरदत्त, एवं पाहाणुपाहि कुषाण अधिपतियों के शक सेवकों ने मिलकर उज्जयिनी के कार्दमिक=गर्दभिलों का नाश किया।

**पाइकुली अभिलेख<sup>१</sup> :**—लगभग ई० ३०० के कुछ पूर्व अवन्ति में कार्दमिकों का राज्य था; एवं उस समय वह कुषाण सम्राट् तथा आभीर राजों के आक्रमण का लक्ष्य बन गया, इस विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी सस्सानी वंशीय पारसिक सम्राट् नार्से के पाइकुली अभिलेख में उपलब्ध हुई है।

शिलालेख में सम्राट् नार्से तथा (तीसरा) वर्हरान के बीच जो युद्ध हुआ, उसका संक्षेप में वर्णन है। (दूसरा) वर्हरान<sup>२</sup> के ई. २९२ में गुजरने के बाद उसका चाचा नार्से<sup>३</sup> तथा वर्हरान (तृतीय) के बीच यह युद्ध गया था, जिसमें वर्हरान पराजित हुआ।

उस शिलालेख की २२ से २४ पंक्तियों में 'अवन्दिकान् वताव्य' तथा 'शकान् शाह' का उल्लेख है। सन्दर्भ के आधार पर ऐसा समझा जाता है कि यहाँ अवन्ति देश के राजा का उल्लेख "शकान् शाह" (शकों का राजा वर्हरान्) के सहायक के रूप में किया गया है।

१. ई. हर्जफेल्ड, 'पाइकुली मॉन्युमेन्ट् अण्ड् इन्स्क्रिप्शन् ऑफ् दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ् दि सस्सानियन् एम्पायर' (बर्लिन) अभिलेख १२६

२. सिक्कों पर यह अपने को "मर्कान् मर्का ऐरान् व अनैरान्" (ईराण व तुराण का शाहनशाह) कहलाता है।

३. स्मिथ्, कॅटलॉग, पृ. २२३ के अनुसार नार्सेहि (नासेस्) ने ई. २९२ से ३०१ तक राज्य किया।



उसी शिलालेख की ४४ से ४७ पंक्तियों में “कुशान् शाह” तथा “आबीरान् शाह” आदि राजाओं का उल्लेख है। इनमें से पहिला, ‘कुशों का अधिपति’ अन्य बड़े सम्राटों—‘कायसर’ तथा ‘रोम के अधिपति’—के साथ-साथ उल्लिखित है। इन सब अधिपतियों ने नार्से की विजय पर खुशी मनाई एवं उसे बधाई दी। अन्यत्र यह भी विदित होता है कि सस्सानी सम्राट् नार्से ने कुषाण सम्राट् की पुत्री का विवाह अपने युवराज होर्मिज्द (द्वितीय) के साथ किया—जो कि उसके पश्चात् गद्दी पर बैठ कर ई. ३०१ से ३०९ तक सस्सानी सम्राट् बना रहा<sup>१</sup>।

**कालक-कथा की राजकीय पृष्ठभूमि :**—पाइकुली अभिलेख का समय ई. २६३-२९४ होने के कारण, इस युद्ध का समय भर्तृदामन् का अन्तिम काल ही दिखाई देता है। सम्भवतः उसके द्वारा (तृतीय) वर्हरान का पक्ष लिया गया था। अतः सम्भवतः सस्सानी सम्राट् नार्से, उसका मित्र एवं व्याही (समधी) कुशान् शाह (कुषाण सम्राट्=? द्वितीय कनिष्क) एवं ‘आबीरान् शाह’ (आभीर महाक्षत्रप) की ‘अवन्ति के राजा’ पर नाराजगी हो गयी।

कालक-कथा की राजकीय पृष्ठभूमि इस प्रकार थी। कालक ने स्वयं उज्जयिनी के शासन की खामियाँ, उज्जयिनी तक सीधे जाने का मार्ग आदि उन्हें बतलाएँ होंगे। उज्जयिनी के शासक के विरुद्ध उनकी सहायता लेते समय वह उन्हें अनपेक्षित-रूप अचानक उज्जयिनी लाया, इस विषयक जैन ग्रन्थों की मान्यता है। कालक-कथा केवल मनगढन्त कहानी प्रतीत नहीं होती। जैन ग्रन्थों में प्राप्त अनुश्रुतियाँ, उनके अन्तर्गत अतिशयोक्ति के बादजूद; पूर्णतया अविश्वसनीय नहीं है। जैसा कि डॉ. बुद्ध-प्रकाश ने दिखलाया है; तत्थोगाली पइत्तय नामक जैन ग्रन्थ में सस्सानी वंश का नाम—“सज्झाण-वस” के रूप में—पाया जाता है। साथ-साथ उसमें अन्य सम्राट् राज-वंश होने के कारण;

इस शब्द के अर्थ-विषयक कोई सन्देह नहीं हो सकता है<sup>१</sup> ।

लेखक को उसी तत्थोगाली पइन्नय में एक अन्य उल्लेख दिखाई देता है; जिसके अनुसार नहपान के वंश ने ४० वर्ष राज्य किया, गर्दभ (कर्दम) वंश ने १०० वर्ष एवं बलमित्र (?आभीर) वंश के राजाओं ने ६० वर्ष राज्य किया<sup>२</sup>

१. डॉ. बुद्ध-प्रकाश, स्ट. इ. हि. सि.; पृ. ३८२ पश्चात्;

पृ. ३८६-८७:—[तत्थोगाली-पइन्नय, श्लोक ७०५]

“ता एव सगवंसो य नंदवंसो य मरुयवंसो य ।

सयराहेण पणढा; समयं सज्जाण-वंसेण ॥”

२. तत्थोगाली-पइन्नय, ६२२:—“बलमित्त-भानुमिता सठा चत्ताय होंति नहसेणे । गर्दभ-सयमेगं पुण....”

मेरुतुङ्ग के विचारश्रेणि में भी बलमित्र-भानुमित्रों के ६० वर्ष बतलाये गए हैं ।



(१२८)

उज्जयिनी

आहुति : पञ्चविंश

आभीरों का राज्य (ई. ३००-३५०)

'सप्तैवान्ध्राः भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।'

—मत्स्य पुराण

'सप्तर्षिश्च वर्षाणि दशाभीरास्तथा नृपाः ।'

—वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण

आभीर-राज्यः—पुराणों के अनुसार कुछ आन्ध्र राजाओं के पश्चात् दस आभीर राजा हुए। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों के अनुसार उनके राज्य की अवधि केवल ६७ वर्ष रही।

आन्ध्र-सातवाहन राजाओं का 'तिरण्डु' (=त्रिरश्मि) पहाड़ियाँ तथा नासिक पर राज्य था। आभीर कालखण्ड में इसी को 'त्रिकूट' कहने लगे। एक समय ऐसा था कि त्रिकूट एवं आभीर राज्य भिन्न-भिन्न थे<sup>१</sup>। पश्चात् आभीर त्रिकूट से ही राज्य करने लगे। त्रिरश्मि यही त्रिकूटक है, इस विषय में सब की मान्यता है। जैसा कि लेखक ने अन्यत्र<sup>२</sup> दिखलाया हुआ है, "नासिक के समीप यज्ञश्री शातकर्ण के पश्चात् कुछ ही समय में शिवदत्त आभीर का पुत्र मौढरिपुत्र (माठरीपुत्र) ईश्वरसेन का स्वामित्व स्थापित हुआ, यह एक अभिलेख से प्रमाणित होता है<sup>३</sup>।"

जैसा कि ऊपर देखा गया है, कार्दमिक महाक्षत्रपों के पश्चात् (ई. ३०० से) पचास वर्ष, अवन्ति की (महाक्षत्रपों की) गद्दी आभीरों के पास रही। भाग्य कवि ने एक स्थान पर "गोपालों का राज्य बन गया<sup>४</sup> ! " इस विषय पर एक

१. म्हैसूर आकि. रिपोर्ट ( १९२९ ), पृ. ५०:—'कदंबाणं मयूरसम्मण विणिम्मिअं तटाकं....त्रिकूट-आभीर-पल्लव-पारियात्रिक....'

२. प्रा. भा. सं., पृ. १९८.

३. आभीर ईश्वरसेन के अभिलेख की भाषा संस्कृत-मिश्र होने से वह सातवाहनों के अभिलेखों से बाद का है, यह निश्चित है।

४. "ही ही ! गोपालकानां राज्यं संवृत्तम् ।"—बालचरितम्, पञ्चमोऽङ्कः ।

नाटकीय व्यक्ति द्वारा हर्ष प्रकट किया है। उसका काल-निर्णय भी इसके आधार पर करना संभव है, क्योंकि 'गोपाल' और 'आभीर' समानार्थक शब्द हैं।

**आभीरों का पूर्व इतिहास:**—शिलालेखों में आभीरों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम उल्लेख शक-संवत् १०३ के गुण्डा (काठियावाड़) के अभिलेख में पाया जाता है। इसके अनुसार रुद्रसिंह (प्रथम) के समय में सेनापति वाहक के पुत्र आभीर सेनापति रुद्रभूति ने कुछ दान किया था। इससे उस काल-खण्ड में शक तथा आभीर एक दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित थे, यह विदित हो जाता है।

**आभीर राज्य (ई. ३०० से ३५०):**—'महाक्षत्रप शक-शून्य कालान्तर' में म. क्ष. ईश्वरदत्त, म. क्ष. शिवदत्त, राजा ईश्वरसेन आदि आभीर राजाओं का राज्य हुआ। इनके समय में अवन्ति, सुराष्ट्र, लाट, महाराष्ट्र, आन्ध्र आदि प्रदेशों पर आभीरों का आधिपत्य रहा। इस काल-खण्ड में शक-क्षत्रप संभवतः इन्हींके मार्गदर्शन में कार्यभार सम्हाल रहे थे<sup>१</sup>।

**शक महाक्षत्रप (ई. ३५० से ३८०):**—महाक्षत्रप शकों का जो नया राजवंश ई. ३५० के पश्चात् शुरू हुआ। वह अपने को स्वामि कहलाता था। इस छोटे से कालखंड में भी संभवतः एक से अधिक शक क्षत्रपों के वंश हुये। इनमें से पहला (३५०-३६७) काठियावाड़ से अजमेर तक राज्य कर रहा था, एवं दूसरा केवल मालवा तथा राजस्थान का दक्षिण भाग में राज्य कर रहा था, ऐसा प्रतीत होता है।

इनके पश्चात् अवन्ति देश में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्य हुआ।

- 
१. शक आदि जातियाँ म्लेच्छों की मानी जाती थी। आभीर यह म्लेच्छ जाति नहीं थी। यह भारतीय वर्ण-संस्था से उद्भूत वैश्य वर्ण के अन्तर्गत एक जाति थी। महाभारत आदि ग्रन्थों में आभीर तथा शूद्रों का जो जनपद बताया गया है, वह अहीरवाड़, गोपगिरि (गवालियर) पुष्कर क्षेत्र आदि प्रदेशों को समाविष्ट कर रहा था। यह परकीय या विदेशी जाति नहीं थी जैसा कि सर्. डॉ. भांडारकर का मत था।



सिक्कों के आधार पर माना जा सकता है कि आभीरों का राज्य सुराष्ट्र, लाट, अवन्ति आदि देशमें रहा<sup>१</sup> । विष्णु पुराण के अनुसार वह सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र देश, अबू पहाड़ियाँ, मरुभूमि आदि देशों पर फैला हुआ था<sup>२</sup> ।

**आभीर काल-खण्ड का साहित्य :—**जैसा कि आगे की एक आहुति में दिखलाया गया है, उज्जयिनी में कालिदास के समय में एक विद्वत्परिषद् बनायी गयी थी<sup>३</sup>, जिसके सामने नये-पुराने कवियों के नाटक दिखाये जाते थे, एवं जिसके द्वारा उनके गुणावगुणों की चर्चा की जाती थी । उस परिषद् का मनोविनोद करने के लिए कालिदास ने जब अपना एक नया नाटक “मालविकाग्निमित्रम्” दिखाना चाहा, तब उसीने स्वयं उनके द्वारा देखे गए पुरातन नाटकों के रचयिता, कवि भास, सौमिल्लक (या सोमिल) कवि, पुत्र<sup>४</sup> आदि को उल्लेख किया है । (१) उसके उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, उस समय भासादि कवि ‘वर्तमान’ (=जीवित) नहीं थे । एक सुभाषित में इसी प्रकार भास एवं सौमिल्लक यह वररुचि, साहसांक, कालिदास आदि कवियों के पहले हो गए

१. डॉ. भगवानलाल, ज. रा. ए. सो.

२. विष्णु-पुराण (नीचे उद्धृत) : ४.२४.१८ आदि ।

३. देखिए आहुति सप्तविंश ।

४. मालविकाग्निमित्रम्, प्रस्तावना (देखिए आहुति सप्तविंश):—‘प्रथित-यशसा भासकवि—सौमिल्लककवि-पुत्रादीनां ( ? शूद्रादीनां ) प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य……’

कविपुत्र या पुत्र नामक कोई कवि किसी भी काव्य-संग्रह (Anthology) में उल्लिखित नहीं है । शूद्रक कवि सौमिल्लक के समय का, एवं कालिदास से पूर्व-कालीन है, यह उपलब्ध प्रमाणों से प्रतीत होता है । क्या यहाँ दो कवि भास तथा सौमिल्लक के पश्चात् शूद्रक या शूद्र का उल्लेख किया गया था ?

थे, ऐसा प्रतीत होता है<sup>१</sup>। इसमें सोमिल के साथ रामिल नामक अन्य कवि का भी नाम उपलब्ध है। अन्य एक सुभाषित से पता चलता है कि रामिल तथा सोमिल ने मिलकर एक काव्य बनाया था<sup>२</sup>। उसी श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि वे किसी शूद्रक राजा से सम्बन्धित थे, एवं संभवतः उसकी राज-सभा में थे। शूद्रक कवि की कुछ स्फुट काव्य-रचना भी मिलती है।

चतुर्भाणी<sup>३</sup>—इसी समय के चार भाण—जिनके समूह को चतुर्भाणी कहा गया है—सुविख्यात है।

(१) ईश्वरदत्त का धूर्त-विट-संवादः।

(२) शूद्रक का पद्म-प्राभृतकम्।

(३) श्यामिलक (सौमिल्लक) का पादताडितकम्।

(४) वररुचि की उभयाभिसारिका।

इनके सम्बन्ध में कुल कल्पनाएं विचारणीय हैं। जैसे—

(१) क्या भाण-रचयिता ईश्वरदत्त ही राजा महाक्षत्रप ईश्वरदत्त आभीर है ?

(२) शूद्रक राजा, जिसके सम्बन्ध में हर्ष-चरित में कुछ 'सत्यकथा' बताई गई है, क्या वह ऐतिहासिक राजा नहीं था ? राजतरङ्गिणी तथा कुछ अभिलेखों में भी शूद्रक एक ऐतिहासिक, साहसी, सत्त्वशील राजा माना गया है। क्या वह सही नहीं है<sup>२</sup> ?

१. इसकी दो प्रतियाँ प्रमुख हैं—(१) एम्. आर्. के. कवि तथा एस. के. आर. श्यास्त्री की (१९२२) (२) डॉ. व्ही. एस्. अग्रवाल एवं डॉ. मोतीचन्द।

२. राजतरङ्गिणी, ३ ३४३ :—

‘सन्त्यज्य विक्रमादित्यं सत्त्वोद्भूतं च शूद्रकम्।

त्वां च भूपाल पर्याप्तं धैर्यमन्यत्र दुर्लभम्॥

देखिए मृच्छकटिक १.३ :—‘प्रथितः शूद्रक इत्याधसत्त्वः’।



(३) शूद्रक के मृच्छकटिक में प्रमुख दृश्य अवन्तिपुरी या उज्जयिनी के हैं पद्मप्राभृतिक में भी उज्जयिनी का वर्णन करते हुए उसकी इस काल-खण्ड की अवस्था दिखलायी गयी है। मृच्छकटिक से ज्ञात होता है कि उसके नाटक का प्रारम्भ किसी दूसरे ने उसकी मृत्यु के बाद लिखा है। उसमें कुछ ऐतिहासिक सत्य ग्रथित किये हुए दिखाई देते हैं।

(४) मृच्छकटिक में भासरचित चारुदत्त नाटक की प्रतिकृति (या नकल) करके उसे काफी बढ़ा दिया गया है, इस विषय पर सर्व विद्वानों की मान्यता है। इससे भी भास के समय के बाद शूद्रक कवि हुआ, यह भी स्पष्ट है। मृच्छकटिक का एक श्लोक—‘लिपतीव तमोङ्गानि (आदि)’ दण्डिन् (६ ठी शताब्दी) के काव्यादर्श द्वारा उद्धृत किया हुआ पाया जाता है।

(५) एक महत्त्व की बात यह है कि यदि उपरोक्त जानकारी के अनुसार, शूद्रक अवन्ति-देश का, कालिदास—पूर्वकालीन राजा था, तो वह अवश्य आभीर राजवंश से सम्बन्धित होगा। ‘शूद्र’ या शूद्रक नामक एक जाति आभीरों के साथ महाभारत एवं पुराणों में बार-बार उल्लिखित की जाती है। यह दो जातियाँ इतनी संलग्न थी कि पातञ्जल महाभाष्य में पाणिनीय नियम के अनुसार ‘शूद्राभीरम्’ ऐसा वाक्यप्रयोग किस प्रकार हो सकता है, यह बतलाया गया है<sup>२</sup>। शूद्रों या शूद्रकों का राजा शूद्रक कहलाता था। क्या यह शूद्रक आभीर-शूद्रकों का राजा था?

(३) इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि जैसा की नीचे उद्धृत किए हुए विष्णु-पुराण के उद्धरण में बतलाया है—आभीर तथा शूद्र राजे सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, अर्बुद, मरुभूमि आदि देशों पर आधिपत्य करेंगे एवं यह

१. महाभारत :— शूद्राभीराश्च दरदाः कश्मीराः पशुभिः सह ।

महाभारत, ९.३७.१ :—‘शूद्राभीरान्प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ।’

२. महाभाष्य, भाग १, पृ. २५२ :—“इह ताच्छूद्राभीरमिति । आभीरा जात्यन्तराणि ।”

आभीर तथा शूद्र राजे ब्राह्मण होंगे<sup>१</sup> । मृच्छकटिक के प्रारम्भ में शूद्रक राजा के सम्बन्ध में भी वह 'ब्राह्मण-मुख्य' तथा 'क्षितिपाल' (=राजा) था एवं वह ऋग्वेद, सामवेद, गणित, वैश्या-विषयक कला (कामशास्त्र), हस्ति-शिक्षा आदि में पारंगत था, यह भी बतलाया गया है<sup>२</sup> । कामशास्त्र में इसकी पारंगतता इसके मृच्छकटिक तथा पञ्चप्राभृतक से स्पष्ट हो जाती है ।

(७) वररुचि के भाण में अभिसारिका प्रियङ्गुसेना "अप्रतिहत-शासन-कुसुमपुर-पुरन्दर" के प्रासाद में बुलवायी गयी है, ऐसा एक उल्लेख पाया जाता है । कुसुमपुर यह पाटलिपुत्र के अतिरिक्त किसी भी अन्य नगरी का नाम न होने से यहाँ पाटलिपुत्र के गुप्त सम्राटों का उल्लेख बिल्कुल स्पष्ट है । सम्राटों के 'अप्रतिहत-शासन' जैसे शब्द किसी अन्य के लिये उपयोग में नहीं लाए जाते थे ।

१. यहाँ 'कोट्ट=कोटा' ( राजस्थान ) है । देखिए लेखक का लेख 'सम् हिस्टॉरिकल ट्रेंडिश्न्स' (इंडियन् कल्चर्, ५)

२. विष्णु-पुराणा, ४.२४.१८ पश्चात् :—"सौराष्ट्रावन्ति-शूद्रान् अबुंद-मरुभूमि-विषयान् ब्रात्या द्विजा आभीर-शूद्राद्या भोक्ष्यन्ति ।" परिशिष्ट 'ह' ।

३. मृच्छकटिक, १.२-४ :—

"द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव

प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥३॥

अपि च—

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिवेदं

ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद्व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।

राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्रमेधेन चेष्टा

लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ।

"...ककुदं वेदविदां तपोधनश्च ।

...क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥"



(८) कवि सौमिल्लक या सोमिल के सम्बन्ध में सम्भवतः कहाउम् (या कहावम्) के गुप्त संवत् १४१ (=ई. ४३०) के शिलालेख से जानकारी प्राप्त होती है। इसमें सोमिल का 'प्रचुर-गुण-निधि' शब्दों में वर्णन किया है, एवं वह उस शिलालेख के दानकर्ता का प्रपितामह था यह भी बतलाया गया है<sup>२</sup>। इससे अभिलेख के सोमिल का समय लगभग ई. ३७० प्रतीत होता है।

उज्जयिनी के समाज का दर्शन :—शूद्रक के नाटक में, तथा शूद्रक, ईश्वर-दत्त और सौमिल्लक के भाणों में उज्जयिनी के तत्कालीन उच्चवर्णीय समिश्र समाज<sup>२</sup> का यथार्थ एवं रोचक वर्णन पाया जाता है। हास्यरस एवं व्यंग्य-विनोद के फौवारों के बीच गुप्त-पूर्व-कालीन उज्जयिनी के ऐश्वर्य की तथा संभ्रांत समाज की एक झलक पायी जाती है, जिनमें ऐसे समाज में दृष्टिगोचर होने वाले व्यक्तिगत सद्गुण तथा सामाजिक दुर्गुण एक दूसरे से टकराते हुए दिखाई देते हैं। पतन के पहले की यह स्थिति बिल्कुल आज की परिस्थिति जैसी है। एक ओर समाज की गिरी हुई हालत, नर्म-विनोद के बावजूद घृणा उत्पन्न करती है। दूसरी ओर सत्य के आधार पर चलने वाले परिस्थिति से विवश होकर भी केवल महाकाल की कृपा चाहते हुए काल बिताते हैं। कुछ भागों में मानव जाति के स्वभाव का अतिरंजित किन्तु सजीव चित्रण पाया जाता है। स्त्रैण पुरुषों की लंपटता, विशिष्ट वर्ग की काम-शास्त्र-पटुता,<sup>३</sup> वारांगना-वर्ग की नितान्त निर्लज्जता<sup>४</sup>, कानूनबाजी की दुष्टता तथा न्यायालय की निर्घृणता<sup>५</sup>—

१. फ्लीट्: गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स्, पृ. ६७ :—

‘पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण-निधेर्भट्टिसोमो महात्मा’

२. Upper-class cosmopolitan society.

३. वात्स्यायन के कामशास्त्र में आभीर राज-वंश के उल्लेख यह दर्शाते हैं कि वह पुस्तक इसी काल-खंड में लिखी गयी।

४. पादताडितकम्

५. मृच्छकटिकम्—‘नय-प्रचारं व्यवहार-दुष्टताम्।’  
देखिए परिशिष्ट ‘ह’ (२)।

इन सब के वर्णन दुनिया के साहित्य-मण्डार के अनमोल रत्न ही हैं। इनमें कुछ दृश्य तो ऐसे हैं, जो त्रिकालावाधित जैसे प्रतीत होते हैं। ऐसा एक अविस्मरणीय, रक्तरञ्जित दृश्य, जो मृच्छकटिक द्वारा वर्णित है एवं जिसमें परपक्ष के द्वारा हार जाने पर, परपक्ष के नाक पर मुक्का मार के जुवेबाज भाग जाता है, लेखक ने स्वयं बम्बई के रास्ते पर देखा हुआ है।

कई देश-विदेशों से आए हुए रत्न, मौक्तिक आदि विक्रीय वस्तुएँ बेचने तथा खरीदने हेतु इस नगरी के बाजार में स्त्री-पुरुषों की भीड़ से कठिनाई ('संबाधा') किस प्रकार होती है, इसका भी इनपें मनोहर चित्रण है<sup>३</sup>। इस कालखंड में उज्जयिनी में आमीर, शक, हूण, चीन, दाक्षिणात्य आदि तथा यवनी, द्राविडी, बर्बरी आदि आपस में तथा स्थानीय समाज के संभ्रात व्यक्तियों से किस प्रकार मिल-धुल गए थे, इस विषय में भी इन पुस्तकों में पर्याप्त जानकारी पायी जाती है। उज्जयिनी के मुहल्लों, रास्तों व चौराहों के नाम तथा उच्च-वर्गीय वेश्याओं (गणिकाओं) के कतिपय कोठों वाले महलों के वर्णन आदि से इस कालखंड (ई. ३००-३५०) की उज्जयिनी नगरी के वैभव तथा शोभा का साक्षात्कार हो जाता है।

---

३. पादताडितकम्—“एष भोः । अनेक-देश-स्थल-जल-सार-फल-गु-पण्य-क्रय-विक्रयोपस्थित-स्त्री-पुरुष-संवाधान्तरायमाणानां सार्वभौमस्य विपणिमनुप्राप्तः।”



## परिशिष्ट 'ह'

(१) आभीर राजकुल के सम्बन्ध में वात्स्यायन का कामसूत्र (५-५-१७):-  
“आभीरं हि कोट्टराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान ।”

वहीं. (५-६-१२):-“तत्र राजकुलचारिण्य एवं लक्षण्यान्पुरुषानन्तःपुरं प्रवेशयन्ति नातिमुरक्षिकत्वादपरान्तिकानाम् । क्षत्रियसंज्ञकैरन्तःपुररक्षिभिरेवार्थं साधयन्त्याभीरकानाम् ।”

(२) मृच्छकटिकम् १-६-७ :-

“अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो

युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः ।

गुणानुरक्ता गणिका च यस्य

वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥

तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं

नयप्रचारं व्यवहार-दुष्टताम् ।

खलस्वभावं भवितव्यतां तथा

चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥”

(३) वहीं. ४, श्लोक २० के पश्चात् :-

“इहापि प्रथम-प्रकोष्ठे शशि-शङ्खमृणाल-सच्छाया विनिहित-चूर्णमुष्टिपाण्डुरा  
विविधरत्न-प्रतिबद्ध-काञ्चन-सोपान-शोधिताः प्रासादपङ्क्तयोऽवलम्बितमुक्ता-  
दामभिः स्फटिक-वातायन-मुखचन्द्रैर्निध्यायन्तीवोजयिनीम् ।

## आहुतिः षड्विंश ध्रुवदेवी व साहसांक

विद्वानों की ऐसी धारणा है कि गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य ने जज्जिनी के शकों को जीत कर, उनके नष्ट होने पर उज्जयिनी में अपनी राजधानी स्थापित की। इस धारणा के अन्तर्गत उनकी यह भी मान्यता रही कि उज्जयिनी के महाक्षत्रप सार्वभौम एवं चक्रवर्ति राजा रहे।

**क्षत्रपों की स्थिति :—**वस्तुस्थिति यह है कि उज्जयिनी के शकों का यह वंश केवल क्षत्रप-महाक्षत्रपों का वंश था। इनके क्षत्रपों के महाक्षत्रप बना केवल कुषाण सम्राट्-जो पाहानुपाही थे-की मर्जी पर था। इनके जैसे अन्य कई क्षत्रप एवं महाक्षत्रप 'कुशान् शाह' अधीन थे, यह सिक्कों से तथा अभिलेखों से प्रमाणित होता है<sup>१</sup>। पाइकुली शिलालेख में 'कुशान् शाह' के अतिरिक्त सब भारतीय राजे 'क्षत्रप' कहे गए हैं। 'कुषाणाधिपतियों' जैसी न इन्होंने सुवर्ण मुद्राएँ प्रसारित की; न इनकी मुद्राएँ उनके जैसे विस्तृत क्षेत्र में पायी जाती हैं।

**रुद्रगति रामगुप्त :—**चन्द्रगुप्त ने जिस शकाधिकति को जीत लिया, वह कुषाण सम्राट् था, न कि कोई साधारण महाक्षत्रप। इस बात की पुष्टि अभिलेखों में तथा प्राचीन साहित्य में कई जगह प्राप्त होती है। जैसे—

(१) काव्यमीमांसा में एक कथोत्थ मुक्तक का उदाहरण दिया गया है, जिसमें रामगुप्त तथा महीपाल गुर्जर-प्रतिहार इन दोनों के द्वारा खसाधिपति पर किये गये आक्रमणों की तुलना की गयी है। रामगुप्त के सम्बन्ध में बताया गया है कि न केवल उसका आक्रमण विफल हुआ, बल्कि हिमालय की पहाड़ियों में उसे घेर लिया गया था। अन्त में 'रुद्रगति' होकर, उसे अपनी पत्नी ध्रुव-स्वामिनी उस खसाधिपति को अर्पित करने की आवश्यकता पड़ी<sup>२</sup>।

१. प्रा. भा. सं., पृ.

२. का. मी. (गा. ओ. सो.) पृ.

‘दत्त्वा रुद्रगतिः खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीं  
 यस्मात्खण्डित साहसो निवृत्ते श्रीशर्म (राम) गुप्तो नृपः।  
 तस्मिन्नेव हिमालये गिरिगुहा कोणक्कणत्किन्नरे  
 गीयन्ते तव कार्तिकेय नगर-स्त्रीणां गणैः कीर्तयः॥



उसी स्थान पर, नगर में—यानी नगरहार में—अब स्त्रियाँ कार्तिकेय (अर्थात् महीपाल) के यश की गाथाएँ गाती रहती हैं ।

महीपाल के समय में नगरहार में शाही राजवंश राज्य करता था । उसी प्रदेश में रामगुप्त के समय में खश, कुश या कुषाण अधिपति रह रहे थे । खश तथा कुश एक ही चीनी शब्द के दो संस्कृत रूप हैं<sup>१</sup> । यह उस शक जाति का नाम था, जिसमें कनिष्क आदि सम्राट् हुए । रामगुप्त की उपर्युक्त अवस्था के सम्बन्ध में अन्यत्र भी उल्लेख प्राप्त होते हैं, एवं गुर्जर प्रतिहार सम्राट् ने, अपने सामन्त यशोवर्मन् की एवं औरों की मदद से, खस-राजा को वश में किया, यह भी अन्य शिलालेखों से स्पष्ट हो जाता है<sup>२</sup> ।

देवी-चन्द्रगुप्तम् :—कवि विशाखदत्त ( छठी शताब्दी ) के देवी-चन्द्रगुप्तम् नामक नाटक में इसी प्रसंग को उल्लिखित किया गया है<sup>३</sup> । शकपति द्वारा रामगुप्त का सैन्य बड़ी आपत्ति में डाला गया था<sup>४</sup> । उससे सम्बन्धित अन्य प्रसंगों का वर्णन करने के पश्चात्—जैसा कि नाट्य-दर्पण से उस नाटक के संबंध में विदित होता है—स्त्री भेष ले कर चन्द्रगुप्त शत्रु की छावनी में शकपति का वध करने चला गया, यह प्रसङ्ग उस नाटक में दिखलाया है । टीकाकार के मत में उसने शकपति की हत्या की यह भी इस प्रसङ्ग से सूचित किया गया

१. देखिये लेखक की 'स्पॉटलाइट ऑन् दि हिस्ट्री ऑफ् दि चन्देल्लज', १४-१५ पृष्ठ ।
२. देखिए वहीं, पृष्ठ १५ ।
३. यह नाटक अब रहानहीं है । केवल इस विषयक उल्लेख एवं इसके श्लोक कुछ टीका-ग्रंथों में उपलब्ध हैं ।
४. "यथा देवी-चन्द्रगुप्ते शकपतिना परं कृच्छ्रमापादितं रामगुप्त-स्कन्धावा-  
मनुजिघ्रक्षुः.....कुमारचन्द्रगुप्तः..... ।"

है, क्योंकि ऐसी हत्याएँ रंगभूमि पर दिखाना मना था<sup>१</sup> ।

अन्य टीकाकार ने भी इसी प्रसङ्ग का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि देवी-चन्द्रगुप्त नाटक के दूसरे अङ्क में एक प्रसंग वर्णित किया गया है । राजा रामगुप्त ने अपने लोगों को बचाने हेतु शकराजा को ध्रुवदेवी अर्पित करना कबूल किया था, तब शत्रु की हत्या करने हेतु ध्रुवदेवी का भेष पहन कर कुमार चन्द्रगुप्त रामगुप्त के पास आया आदि<sup>२</sup> ।

देवी-चन्द्रगुप्तम् नाटक अभिनव-गुप्त, सागरनन्दिन् आदि अन्य टीकाकारों ने भी उल्लिखित किया है; एवं उन्होंने उसमें से कुछ श्लोक भी उद्धृत किए हैं । उन सब से आगे की कथा भी विदित हो जाती है ।

अलिपुर :—हर्षचरित से भी विदित होता है कि 'शत्रु (रामगुप्त) की पत्नी (ध्रुवदेवी) की अभिलाषा रखने वाले शकपति की, कामिनी स्त्री (ध्रुवदेवी) के भेष में चन्द्रगुप्त ने हत्या कर डाली'<sup>३</sup> । हर्ष-चरित तथा शृङ्गार-प्रकाश से ज्ञात होता है कि यह हत्या अलिपुर नामक नगरी में हुई । अल्वीरूनी ने "चन्द्र" विक्रमादित्य की कहानी संक्षेप में बता कर कहा है कि शक सम्राट् को विक्रमादित्य ने कारोर के पास युद्ध कर के नष्ट कर दिया । अलिपुर नामक एक शहर कारोर से ५० मील दूरी पर स्थित होने से इन सब उल्लेखों में सामञ्ज-

१. शृङ्गार-प्रकाश :—“यथा देवी-चन्द्रगुप्ते शकपतिना परं कृच्छ्रमापादितं रामगुप्त-स्कन्धावारमनुजिघृक्षुरुपायान्तरागोचरे प्रतीकारे....” ।  
वहीं :—“साहसं यथा—(देवी) चन्द्रगुप्ते—स्त्रीवेषगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारं अलिपुरं शकपतिवधायामगत् । इति प्रयोगे दर्शितम् । शकपतिमघातय-दिति च वृत्तं सूचितम् ।”
२. नाट्यदर्पणम्—“यथा देवी-चन्द्रगुप्ते द्वितीयेऽङ्के प्रकृतीनामाश्वासनाय शकस्य ध्रुवदेवी-सम्प्रदानेऽभ्युपगते....” ।”
३. ह. च. (परब) पृ. १९८ पश्चात् :—  
“अलिपुरे परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपतिमशायत् ।”



स्य वन जाता है<sup>१</sup> ।

शृङ्गार-प्रकाश में चन्द्रगुप्त के उक्त साहसी कर्म को उचित-रूप “साहस” का उदाहरण ही बतलाया है । ऐसे ही साहसी कर्मों से चन्द्रगुप्त को “साहसाङ्क” उपाधि प्राप्त हुई<sup>२</sup> । संक्षेप में, सिन्धुनदी पार कर के, पाहाणुपाही कुपाण सम्राटों का जो साम्राज्य चन्द्रगुप्त द्वारा नष्ट किया गया, उसके प्रदेश पर उसके पिता समुद्रगुप्त द्वारा पहले ही आक्रमण किया गया था । रामगुप्त ने उसी का अनुकरण करना चाहा था । जो वह नहीं कर पाया वह साहसाङ्क ने अपने साहस से सफलतापूर्वक किया<sup>३</sup> । फल-स्वरूप, कुपाण सम्राटों से जो प्रदेश समुद्रगुप्त तथा (द्वितीय) चन्द्रगुप्त ने अपने आधिपत्य में लिया, उस प्रदेश में उन्होंने सुवर्ण-मुद्राएँ प्रसारित की जो कुपाण सम्राटों की मुद्राओं के अनुकरण में थीं ।

उसी प्रकार मालवा में शक क्षत्रपों की जो प्रचलित मुद्राएँ थीं, उनके अनुकरण में नई मुद्राएँ, उनके क्षेत्र में-उसके आधिपत्य में आने पर-प्रसारित की गयी । सामुद्रिक व्यापार के सुविधा हेतु उस क्षेत्र में चांदी की मुद्राओं को प्राधान्य बहुत पहले से रहा ।

**सम्राट् रामगुप्त का अस्तित्व :—**‘सम्राट् रामगुप्त की न कोई मोने की मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, न चांदी की; और न उसका स्वयं का कोई अभिलेख है । किसी भी गुप्त अभिलेख में उसका उल्लेख नहीं है । यही सम्राट् रामगुप्त के अस्तित्व का अन्तिम प्रमाण माने जा सकते हैं ।’ इस विचार-सरणि से प्रेरित

१. देखिए लेखक का इ. क., भाग ६, में प्रसिद्ध लेख, पृ. १९३

२. वहीं पृ १९४ जटाधरः—

‘साहसाङ्कः शकारिः स्याद्विक्रमादित्य इत्यपि ।’

३. राज-तरङ्गिणी, ३. १२५-१२६:—‘तत्रानेहस्युज्जयिन्यां.....एकच्छत्रश्रक्वर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः । शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारः लघूकृतः ॥.....नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् ।’

होकर प्रायः सभी बंगाली विद्वानों ने रामगुप्त के अस्तित्व से इन्कार किया है। कुछ ने तो हर्षचरित के उक्त उद्धरण का गलत अर्थ लगाकर,<sup>१</sup> अन्य सर्व सम्बन्धित साहित्य तथा अभिलेखों पर, वह सब ही बहुत बाद के समय के बताकर आक्षेप लगाए हैं।

तो क्या, उक्त अन्तिम प्रमाणों के अभाव में, छठीं शताब्दी के देवी-चन्द्रगुप्त नाटक में, सातवीं शताब्दी के हर्ष-चरित में, एवं नववीं-दसवीं शताब्दी के साहित्य तथा अभिलेखों में, पांचवीं शताब्दी की घटना के विषय में पायी जानेवाली, सब जानकारी एवं उल्लेख मनगढन्त एवं काल्पनिक रचनाएँ मानी जायें? क्या यह संभव नहीं है कि रामगुप्त के गद्दी पर बैठने के पश्चात् अल्पावधि में ही कुषाण सम्राटों की वैराग्नि फिर धधक उठी,—जिसके कारण रामगुप्त को उनपर त्वरित आक्रमण करना आवश्यक प्रतीत हुआ। सम्राट् की मृत्यु के पश्चात् इसी प्रकार कुलवैरियों की क्रोधाग्नि धधक उठी, एवं उसका मुकाबला करने के लिए रघुराजा को दिग्विजय हेतु निकलना पड़ा, ऐसा वर्णन भी कालिदास के रघुवंश में पाया जाता है<sup>२</sup>। क्या वह तत्कालीन वस्तुस्थिति का द्योतक नहीं है?

यदि उपरोक्त के अनुसार सम्राट् रामगुप्त का आक्रमण प्रारम्भ में ही विफल हो गया हो, एवं यदि उसके पश्चात् अल्पावधि में ही वह अपने भाई चन्द्रगुप्त द्वारा मारा गया हो—जैसा कि राष्ट्रकूट अभिलेखों में स्पष्ट सूचित किया गया है—तो क्या रामगुप्त को सुवर्ण-मुद्राएँ या दानपत्र ( ताम्रशासन आदि ) प्रसारित करने के लिए समय मिला था, ऐसा माना जा सकता है? यदि हाँ, तो किस आधार पर? नाटकादि प्रमाणों से यह सारी घटना अल्पावधि की बात थी, यही प्रमाणित हो जाता है।

१. रायचौधुरी, पॉ. हि. ए. इ. (४ थी प्रति)।

२. रघुवंश (रघु-दिग्विजय पर्व) ४. २:—

दिलीपानन्तर राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम्।

पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः ॥



रामगुप्त की ताम्र-मुद्राएँ :— देवी-चन्द्रगुप्त नाटक की नायिका ध्रुवदेवी कोई काल्पनिक पात्र नहीं है, बल्कि वह जमी नाटक में रामगुप्त की पत्नी है, तभी गुप्त अभिलेखों में चन्द्रगुप्त-साहसांक की पत्नी बतलायी गयी है। क्या इसी से राष्ट्रकूट शासनों में पाया गया तथ्य प्रमाणित नहीं होता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने बड़े भाई की हत्या करके उसकी पत्नी का “हरण” किया ?

फिर क्या ऐसी स्थिति में, सम्राट् कुमार-गुप्त उसी ध्रुवदेवी का पुत्र होने पर, उनके तथा उनके वंशजों के शासनों में रामगुप्त का नाम भी बताया जाना सम्भव है ? उपरोक्त एवं अन्य प्रमाणों के द्वारा विदित हुई वस्तुस्थिति पर “किन्हीं भी गुप्त अभिलेखों में रामगुप्त का उल्लेख नहीं है,” यह उसकी हत्या विषयक घटना का ही प्रमाण माना जा सकता है, न कि उसके विपरीत। यदि उसका उल्लेख गुप्त अभिलेखों में पाया जाता, तो वही इस घटना को मनगढ़ंत कहानी जैसे प्रमाणित करता।

उपरोक्त दो गुप्तकालीन आधारों के अतिरिक्त अन्य प्रमाण रामगुप्त की ताम्रमुद्राओं में प्राप्त होता है। यह मुद्राएँ एरण-विदिशा क्षेत्र, उज्जैन-इन्दौर क्षेत्र तथा थलभट-पवाया क्षेत्र में पाए जाने के कारण, इनसे बने त्रिकोण क्षेत्र में प्रचलित थे, ऐसा मानने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती है। इनकी अक्षर-वाटिका के आधार पर डॉ. आलतेकर जैसे तज्ज्ञों ने राय दी है कि इन्हें चौथी शताब्दी का ही मानना उचित होगा। फिर भी उपरोक्त कई विद्वानों की राय है कि वे किसी स्थानीय राजा की होंगी। इन सिक्कों के तथा कुछ नागवंशीय राजाओं के सिक्कों के सादृश्य से इनकार नहीं किया जा सकता है। पर क्या इन विद्वानों को स्थानीय या नागवंशीय राजाओं के नामों में इस प्रकार का ‘इस काल-खण्ड का’ अन्य गुप्तान्त नाम उपलब्ध है, जिसके आधार पर रामगुप्त को स्थानीय या नागवंशीय माना जा सकता है ?

१. ‘हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्तथा ।’

२. यह जानकारी श्री रामसेवक गंग से प्राप्त हुई।

ताम्वे के सिक्के जनता के नित्य एवं दैनंदिन उपयोग के होते हैं। नागवंशीयों के तथा अन्य स्थानीय सिक्के जब बन्द हो गए हों, तब रामगुप्त द्वारा जनसाधारण के उपयोग-हेतु प्रसारित सिक्कों की तत्काल आवश्यकता रही होगी। इनका क्षेत्र भी स्थानीय छोटे-छोटे राजाओं के क्षेत्र से अधिक विस्तृत प्रतीत होता है। संभवतः समुद्रगुप्त द्वारा गणपति नाग, नागसेन आदि राजाओं को जीतने के पश्चात् उनके क्षेत्र में यह रामगुप्त के समय में प्रचलित हुए हों।

मेहेरौली अभिलेख :—उक्त विद्वानों के मत में, उज्जयिनी के क्षत्रपों को साहसांक ने जीत लिया, यह उसके साथ दिग्विजय हेतु उदयगिरि (विदिशा) को को आए हुए वीरसेन-कुल के कौत्स-गोत्रीय कवि शाब के उदयगिरि अभिलेख से प्रमाणित होता है<sup>१</sup>, किन्तु कुषाणों को जीतने हेतु साहसांक के विजय यात्रा पर निकलने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। फिर इन्हीं विद्वानों में से कई यह भी मानते हैं कि मेहेरौली लोह-स्तम्भ में जिस 'चन्द्र' नामक राजा का उल्लेख पाया जाता है, वह चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ही है। क्योंकि केवल समुद्रगुप्त के पश्चात् ही गुप्त साम्राज्य का विस्तार इतना अधिक माना जा सकता है, जो कि उस अभिलेख में निर्दिष्ट है। क्या उस अभिलेख में उज्जयिनी के क्षत्रपों विषयक किसी प्रकार का उल्लेख न होते हुए "बाल्लीक" तक देश जीतना—यानी कुषाण सम्राटों को पराभूत करना आदि—एवं भारत में 'एकाधिराज्य' प्रस्थापित करना उल्लिखित नहीं है? किस परिस्थिति में पाहाणुगहि कुषाण सम्राट् से युद्ध हुआ, एवं उसे कत्ल कर डाला, यह तो स्पष्ट है। वह साहसांक के दिग्विजय की यात्रा नहीं थी। उस घटना के पश्चात् कुषाणों के सामन्तों को भी जीतना आवश्यक था। उसी के सम्बन्ध में साहसांक की दिग्विजय यात्रा हुई।

विशिष्ट समय के कवियों की कुछ विशिष्ट कल्पनाएँ होती हैं। जैसा कि लेखक ने अन्यत्र दिखलाया है, यज्ञ-सम्बन्धित कुछ विशिष्ट कवि कल्पनाएं (संकल्प) गुप्तों की सुवर्ण-मुद्राओं पर तथा कविवर कालिदास के रघुवंश में भी दिखती हैं। इतना

१. उदयगिरि अभिलेख :—'कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन राज्ञे वैह सहागतः ।'



ही नहीं, तो कुछ शब्द भी दोनों में समान हैं। वही कवि संकल्प एवं शब्द मेहे रौली के पास स्थित लौहस्तम्भ पर प्राप्त अभिलेख में भी पाये जाते हैं<sup>२</sup>। उक्त अभिलेख में किसी “चन्द्र” नामक सम्राट् द्वारा प्राप्त विजयों का—अखिल भारत दिग्विजय का—संक्षेप में किन्तु बढ़िया काव्य-शैली में वर्णन है<sup>३</sup>। अक्षर वाटिका के अनुसार यह अभिलेख पहले गुप्त सम्राटों के समय का ही माना जा सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यही सम्भव प्रतीत होता है कि उक्त अभिलेख में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की दिग्विजय का वर्णन है। इसके अनुसार सम्राट् “चन्द्र” ने “सिन्धु नदी के सात ही मुहाने उत्तीर्ण किए, तथा बाल्लीक (=बल्लभ देश) भी जीत लिया।” संभवतः इसमें कुषाणों पर विजय पाने के पश्चात् उनका सारा प्रदेश अधिकार में लाने के संबन्ध में अप्रत्यक्ष उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त उक्त अभिलेख में यह भी लिखा गया है कि “चन्द्र” को वङ्ग-देश (बंगाल) में भी लड़ना पड़ा, जिस युद्ध में उसकी “भुजाओं पर तलवार से कीर्ति लिखी गयी थी।” यह बात स्पष्ट है कि वह वाकई ‘साहसांक’ था।

१. ‘काचो गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्जयति ।’

‘क्षितिमवजित्य सुचरितैर्नरेन्द्रचन्द्रो दिवं जयति ।’

आदि गुप्त मुद्राओं पर अंकन। देखिए रघु. १८. ३:- ‘कौमुद्वतेयः कुमुदावदा-  
तैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह ।’ (अधिक जानकारी हेतु देखिए :—इं. क.,  
६. ३८६ पश्चात्)।

२. “खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां ।

मूर्त्या कर्म-जितावनि गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ ।”

३. “यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्  
वंगेष्व्राहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे ।

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता बाल्लिका

यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिर्लैर्दक्षिणः ॥

इसकी प्रथम दो पंक्तियों की कल्पना के लिए देखिए:—

मेघदूतः—‘प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणार्कः ।’

इसका यह नाम इसके पश्चात् साहित्य में तथा ताम्रशासनों में गूँजता रहा<sup>१</sup> ।

साहसाङ्क विक्रमादित्य :—कोशकारों के अनुसार शकों का नाश करने वाला सम्राट् ही साहसाङ्क था, और वही विक्रमादित्य था<sup>२</sup> । यही साहसाङ्क अपने दान के लिए भी प्रसिद्ध था । खंभायत तथा सांगली के राष्ट्रकूट ताम्रशासनों में इसके साहस तथा औदार्य दोनों की प्रशंसा की गयी है<sup>३</sup> । अमोघवर्ष राष्ट्रकूट के एक ताम्रलेख में गुप्तवंश के राजा ने बहुत दान किए, यह मान लिया है; फिर भी “उसने अपने भाई (रामगुप्त) की हत्या की, उसकी पत्नी देवी ध्रुव स्वामिनी को अपनाया एवं दान देते समय ‘लाख दिए, करोड़ दिये,’ इस प्रकार लिखवाया । उसके समान जघन्य कर्म राष्ट्रकूट अमोघवर्ष ने किए ही नहीं । बल्लि ‘दाता’ के नाते उसने अपने शरीर के एक भाग का (वामाङ्गुलि का) तथा स्वराज्य का बारबार त्याग करके, उस गुप्त सम्राट् को अपनी कीर्ति के संबन्ध में भी लजाया<sup>४</sup> ।”

१. इस विषयक विवेचनात्मक चर्चा लेखक के इंडियन् कल्चर् में प्रकाशित लेख में हुई है । (देखिए इ. क., ६, पृ. १६४-६५),

२. जटाधरः—“साहसाङ्कः शकारिः स्याद्विक्रमादित्य इत्यपि ।”

शब्दकल्पद्रुमः—‘विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः

३. ‘त्यागेनासम-साहसैश्च भुवने यः साहसाङ्कः भवन् ॥’

४. उपरोक्त अर्थ स्पष्ट होते हुए महामहोपाध्याय वा. वि. मिराशी द्वारा वह गलत लगाया गया है । उनके अनुसार अमोघवर्ष की “दाता” के रूप में अपनी कीर्ति फैलती है, इससे लज्जा होती है; क्योंकि कि गुप्त-सम्राट् इतना नीच होते हुए भी “दाता” था । (इ. हि. का., २२. पृ. २०० पश्चात्:—  
“In view of this, Amoghavash’a feels ashamed when his fame spreads that he, the ornament of the exalted Rashtrakutas is a donor) अन्वय स्पष्ट है कि “तस्य गुप्तान्वयस्य उन्नतराष्ट्रकूटतिकलः अमोघवर्षः कीर्त्यविपि हीः ।”



(१४६)

उज्जयिनी

“हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्तथा  
 लक्षं कोटिमलेखयत्किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः ।  
 येनात्याजि तनुः स्वराज्यमसकृद्, बाह्यार्थकैः का कथा  
 हीस्तस्योन्नतराष्ट्रकूटतिलकः दातेति कीर्त्यावपि ॥”

उज्जयिनी का चन्द्रगुप्त :—सम्राट् राष्ट्रकूटों के समय में कर्नाटक में गुप्तल में गुप्त-वंशीय राजे राज्य कर रहे थे । उनके ताम्रशासनों में वे अपने को उस चन्द्रगुप्त के वंशज कहलाते हैं, जिसका वर्णन “पाटलिपुर-वराधीश्वर” तथा “उज्जयिनीपुरवराधीश्वर” शब्दों में किया गया है । अतः इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त-साहसाङ्क का उज्जयिनी से निकट का सम्बन्ध रहा, एवं वह उसकी राजधानी भी रही । ‘उज्जयिनी में चन्द्रगुप्ति(गुप्त) नामक राजा था, जो चन्द्र के समान था, ‘ऐसा रत्ननन्दि के भद्रबाहुचरित में भी लिखा हुआ है<sup>२</sup> । उसके प्राकारों का तथा जैन मन्दिरों का भी उसमें उल्लेख है । विक्रमादित्य के समय के कोई जैन मन्दिर या उनके अवशेष उज्जयिनी में नहीं पाए जाते हैं । जो जैन शिल्प एवं मूर्तियाँ अब उज्जयिनी के एक जैन मन्दिर में उपलब्ध हैं, वे बहुधा १०वीं से १३ वीं शताब्दी के हैं । फिर भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय पर सिद्धसेन-दिवाकर नामक एक जैन महापण्डित उज्जयिनी में ही उनके आश्रय में रहा करता था, ऐसी जैन लेखकों की मान्यता है । विक्रमादित्य ने उसे तथा उसके मन्दिर के लिए पर्याप्त धन दान किया यह भी जैनियों की मान्यता है । जैन अनुश्रुति के अनुसार उस समय के महाकाल के मन्दिर से भी ऊँचा एक जैन “प्रासाद” (मन्दिर) विक्रमादित्य ने उस मन्दिर के समीप ही बनवाया था ।

विक्रमादित्य की मूर्ति :—तबाकात्-ई-नासिरी के अनुसार सुलतान शम्स उद्दीन ने ई. १२३४ में विदिशा जीतकर उज्जैन पर हमला किया, एवं वहाँ का महाकाल-मन्दिर नष्ट किया<sup>३</sup> । वहाँ विक्रमादित्य की एक मूर्ति थी, उसे तथा

१. बाँ. गं., ग्रन्थ १, पृ. ५७८-८४; इ. क., ६, पृ. ३८५ तथा पदटीप ।

२. देखिए परिशिष्ट “ज” (१) ।

३. ईलियट् एवं डौसन्, हि. इ., ग्रन्थ २, पृ. ३२८.

महाकाल की पत्थर की मूर्ति को भी वह दिल्ली ले गया। इससे यह संभव होता है कि चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य के काल में भी—जैसे कनिष्क (प्रथम) आदि के समय में सम्राटों की मूर्तियाँ बनाने की प्रथा थी—मन्दिर के आहाते में उसकी मूर्ति रखी जाती थी। संभवतः उस समय का महाकाल-मन्दिर उसीने बनवाया, उसके उपलक्ष में उसकी स्वयं की मूर्ति भगवान् के पूजक के रूप में रखी थी।

जैसा कि उदयगिरि शिलालेख में लिखा है, कौत्स-गोत्री कवि शाब—जो अपने को पाटलिपुत्र का निवासी बतलाता है—वह सम्राट् चन्द्रगुप्त की विजय-यात्रा पर उसके साथ आया था। उज्जयिनी, मुराष्ट्र आदि जीत कर ही उसकी विजय-यात्रा पूरी हुई।



(१४८)

उज्जयिनी

आहुति : सप्तविंश

## विशाला की विद्वत्परिषद्

‘सा रम्या नगरी, महान्स नृपतिः ‘सामन्तचक्रं च तत्’

पार्श्वे तस्य च सा विग्दध-परिषद्, ताश्चन्द्रविम्बाननाः ।

उद्धृतः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः

सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥’

काव्यमीमांसा में एक अनुश्रुति बतायी गयी है कि, “उज्जयिनी में साहसाङ्क नाम राजा हुआ । उसने अपने अन्तःपुर में भी संस्कृत भाषा चलाने विषयक नियम बनाया था<sup>१</sup>” । इसके संस्कृत भाषा विषयक प्रेम के सम्बन्ध में चीन साहित्य में कई उल्लेख पाये जाते हैं । इनमें से एक के अनुसार इस समय के सब कवि तथा लेखक संस्कृत भाषा में लिखा करते थे<sup>२</sup> । जैसा कि लेखक ने अन्यत्र दिखलाया है, इस समय के आर्यशूर, दिङ्नाग जैसे बौद्ध पण्डित भी संस्कृत भाषा में ही लिखते रहे<sup>३</sup> ।

साहसाङ्क के सम्बन्ध में राजशेखर यह भी बतलाता है कि “जिस प्रकार वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक, साहसाङ्क आदि सभापति राजे अपनी विद्वत्सभा के कवियों को दान, सम्मान आदि से सन्तुष्ट करते थे, उसी प्रकार हर एक राजा को करना चाहिये<sup>४</sup>” । विद्वत्परिषद् का सभापति एवं कवियों का

१. का. मी. (गा. ओ. सो., पृ. ५०) :—‘श्रूयते चोज्जयिन्यां साहसाङ्को नाम राजा । तेन च संस्कृत-भाषात्मक अन्तःपुर एव इति समानं पूर्वेण ।’

२. सरस्वतीकण्ठाभरण, २.१५ :—“काले श्रीसाहसाङ्कस्य के न संस्कृत-वादिनः ।”

३. इ. क., ग्रन्थ ६, पृ. २०७; आदि ।

४. का. मी., पृ. ५५ :—“वासुदेव-सातवाहन-शूद्रक-साहसाङ्कादीन् सकलान्स-भापतीन्दानमानाभ्यामनुकुर्यात् ।”

मित्र श्री विक्रम राजा के समान अन्य कोई भी नहीं,<sup>१</sup> इस विषयक गवाही सोड्डल कवि ने अपनी उदय-सुन्दरी-कथा में दी हुई है।

चन्द्रगुप्त-साहसांक की यह विद्वत्परिषद् उज्जयिनी में ही थी, एवं वह 'काव्य-कारो' (यानी कवियों) की परीक्षा भी किया करती थी, इस प्रकार का और एक महत्वपूर्ण उल्लेख राजशेखर की काव्यमीमांसा में पाया जाता है। वह आगे यह भी बताता है कि यहाँ विशाला में इस परीक्षा में न केवल कालिदास, आर्यशूर आदि कवि "प्रकाशित" हुए, बल्कि चन्द्रगुप्त भी "प्रकाशित" हुआ (यानी 'पास' हुआ<sup>२</sup>)। इसी विद्वत्परिषद् का सम्भवतः विलसद में प्राप्त गुप्त सम्वत् ९६ (=ई. ४१७) के शिलालेख में उल्लेख है। यानी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की मृत्यु (ई. ४१३) के पश्चात् थोड़े ही समय में लिखे हुये अभिलेख में इसका उल्लेख पाया जाता है। अर्थात् यह चन्द्रगुप्त की ही परिषद् होगी। इस उल्लेख के अनुसार कोई "ध्रुवशर्मा" नामक कवि पर्वद् के द्वारा संभावित था, जिसने एक बड़ा स्तम्भ कार्तिकेय के संमान में खड़ा कराया था<sup>३</sup>।

विद्वत्परिषद् विषयक प्रश्नः—संस्कृत साहित्य के जानकार, के लिये यहाँ कई प्रश्न संमुख आते हैं। जैसेः—

१. क्या इसी परिषद् का इस आहुति के प्रारम्भ में दिए गये श्लोक में विदग्ध-परिषद् नाम से उल्लेख है? क्या वहाँ 'काल' का दूसरा अर्थ 'महाकाल' है? क्या यह श्लोक उज्जयिनी एवं विक्रमादित्य के संबंध में है?
२. क्या इसी परिषद् ने भास कवि के नाटक-चक्र की परीक्षा की थी जब

१. उ. सुं. क. :—"श्रीविक्रमो नृपतिरत्र पतिः सभानामासीत्स कोऽप्यसदृशः कविमित्रनामा।"

२. का. मी., पृ. ५५ :—"श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकार-परीक्षा। इह कालिदास-मेष्ठावत्रामरूपसुरभारवयः। हरिवन्द्र-चन्द्रगुप्तौ प्रकाशिताविह विशालायाम् ॥"

३. विलसद अभिलेख :—विद्वत्पर्वदा मानितेन ध्रुवशर्मणा कर्म महत्-कृतेदं (कृतमिदम्) ...तेनायं ध्रुवशर्मणा स्थिरवरः स्तम्भोद्धृतः करितः।



स्वप्नवासवदत्ता काव्य सब से अनवद्य माना गया<sup>१</sup> ।

३. क्या इसी परिषद् में, जैसा कि परीक्षा में असम्भव नहीं है, आचार्य दिङ्गनाग द्वारा कवि-कुलगुरु कालिदास के काव्यों पर कुछ स्थूल दोषारोप किए गये एवं रसिक निचुल के द्वारा काव्य-गुणों दिग्दर्शन किया गया ?
४. क्या इसी विद्वत्परिषद् के सामने कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्र नामक नया नाटक सर्वप्रथम वसन्तोत्सव में दर्शाया गया था ? क्या इनके सामने इसके पूर्व भासकवि, सौमिल्लककवि, पुत्र आदि पुराने कवियों के नाटक दर्शयि जाने के बाद नया नाटक देखने के लिए किसी विद्वत्परिषद् ने आज्ञा प्रदान की थी, एवं उस आज्ञा को कार्यान्वित करने हेतु उस नाटक का प्रयोग किया गया<sup>२</sup> ।
५. क्या इसी परिषद् के विषय में कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में लिखा है कि पूर्व कवियों के “रस-प्रबन्ध” (नाटकादि) इस परिषद् ने देखे हुए हैं<sup>३</sup> ?
६. क्या अभिज्ञान-शाकुन्तल में भी जो अभिरूप एवं विद्वानों की परिषद् कही गयी है, वह यही है ? क्या इसी को खुश करना कालिदास अपना महत्कृतव्य समझता था<sup>४</sup> ?

१. भासनाटक चक्रे हि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तास्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

इस विषयक आगे प्रश्न ४ भी देखें ।

२. माल. १:—“अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिषदा कालिदास-प्रथितवस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकमस्मिन्वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति.....मा तावत् । प्रथितयशसां भासकवि-सौमिल्लककवि-पुत्रादीनांप्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः ।.....पुराणमित्येव न साधु सर्वं.....” शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिषदः कर्तुम् ।”

३. विक्रमो. १:—“परिषदेषा पूर्वेषां कवीनां दृष्टरसप्रबन्धा ।”

४. अभिज्ञान. १:—“अभिरूप-भूमिष्ठा परिषदियम् ।.....”

श्रीविशाला विशाला—रामगुप्त ने महादेवी ध्रुवदेवी को शकाधिपति की ओर भेजना चाहा । देवी के भेष में चन्द्रगुप्त ने उस कामुक शकपति के पास जाकर, उसकी कत्ल कर के देवी को उसके शिकंजों से बचाया<sup>१</sup> । कुछ घटनाओं के पश्चात् उसने उसके साथ विवाह भी कर लिया । उसी ध्रुवदेवी के पुत्र कुमारगुप्त ने चन्द्रगुप्त के पश्चात् गुप्त-साम्राज्य की घुरी सम्हाल ली । उस ध्रुवदेवी का नाम, गुप्त ताम्रलेख एवं शकाधिपति विषयक साहित्यिक उल्लेख, इनके अतिरिक्त वैशाली ( = बसाढ़, जिला मुझफ्फरपुर ) में प्राप्त एक मुहर पर भी पाया जाता है<sup>२</sup> ।

वैशाली में प्राप्त मुहरों से न केवल तत्कालीन शासन पद्धति पर, बल्कि संभवतः उज्जयिनी के “विशाला” नाम पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । उक्त मुहर में महाराज्ञी ध्रुवदेवी के पुत्र महाराज-गोविन्दराज का उल्लेख है, एवं अन्य मुहर में गुप्त-वंश के घटोत्कच नामक राजकुमार का नाम उपलब्ध होता है<sup>३</sup> । शासन-विषयक अन्य कई मुहरें हैं । उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैशाली पर चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य का एक प्रासाद, तथा उसके छोटे बड़े शासकीय अधिकारियों के लिए एक महान् कार्यालय भी था । रामायण से तथा कई पुराणों से विदित होता है कि वैशाली का पहले का नाम “विशाला” था एवं राजा विशाल

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेत- ॥.....

किमन्यदस्याः श्रुतिप्रसादनतः ।”

१. ह. च. (परब) १९८ पश्चात्:—‘अलिपुरे.....’( देखिए उपर पृ. १३९); प्रा. भा. सं., ३१९-३२१.

२. देखिए प्रा. भा. सं., पृ. ३३६-३४०.

३. वहीं, पृ. ३३६-३३७; ३४४.



ने वह नगरी स्थापित की, जिससे उसे यह नाम प्राप्त हुआ<sup>१</sup> ।

ऊपर यह भी देखा गया है कि प्राचीन पुराणों में उज्जयिनी को विशाला कहीं भी नहीं कहा गया है । तथा केवल उज्जयिनी विषयक उपलब्ध उल्लेखों के आधार पर लेखक ने पहले ही एक तर्क वाचकों के सम्मुख रखा था, कि संभवतः कालिदास के समय में ही “श्रीविशाला” उज्जयिनी का ‘विशाला’ नाम बन गया । चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य के समय में उज्जयिनी की समृद्धि बढ़ने के कारण, वह उसकी राजधानी बनने से विशाल होने के कारण उसे ‘विशाला’ नाम संभवतः इसी कालखण्ड में दिया गया । प्राचीन समय में यह नाम गुप्तों के प्रिय नगर वैशाली का होने से, संभवतः उसी के स्मरण में “उज्जयिनी” को भी दिया गया होगा ।

जब कुषाण साम्राज्य के विनाश के पश्चात् संभवतः पूरा भारत-वर्ष एक साम्राज्य सत्ता के अधीन हुआ<sup>२</sup>, तब उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत को जोड़ देने वाली उज्जैन जैसी नगरी को अधिक महत्त्व प्राप्त होना अति स्वाभाविक था । दक्षिण भारत पर आधिपत्य चलाने हेतु, यहीं से अच्छा रास्ता था । इस बड़े

१. रामा., बालकाण्ड, ४७. ११-१२:—“इक्ष्वाकोस्तु.....

अलम्बुपायामुत्पन्नः विशाल इति विश्रुतः ॥

तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ।

वहीं, ४५. ९:—‘गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुःपुरीम् ॥’

भागवत पु., ६.२. ३३:—‘विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥’

आग्नेय पु., गया माहात्म्य, ११५.५४:—

‘विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽन्नवीद्विजम् ॥’....

‘विष्णु पु., ४. १. २०:—‘तस्यामस्य विशालो जज्ञे, यःपुरीं वैशालीं निर्ममे ।’

देखिए वायु., ८६. १७. २२; ब्रह्माण्ड पु., ३. ६१. १२, १७; आदि ।

पार्जितर, ए. इ. हि. ट्रै., पृ. ९७.

२. मेहेरीली लोहस्तम्भ अभिलेख:—

‘प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ चन्द्राह्वेन.....’

साम्राज्य के व्यापार में सर्वथा बहुत वृद्धि भी हुई होगी । उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में व्यापार बहुत ही बढ़ा होगा; किन्तु समुद्री व्यापार में असाधारण वृद्धि होना यकायक प्रारम्भ हुआ होगा ।

सभी दृष्टियों से कुषाण साम्राज्य के विनाश के पश्चात् उज्जयिनी का व्यापारिक महत्त्व अपरिमित बढ़ गया होगा । इसी महत्त्व के कारण चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य को अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (पाटलिपुर) से उज्जयिनी लाना अपरिहार्य प्रतीत हुआ होगा । इस व्यापार से उद्भूत समृद्धि का कालिदास ने मेघदूत में जो वर्णन किया है वह देखा जायः—

### कालिदास का उज्जयिनी-वर्णन, मेघदूत (भाषा)

है अवन्ती देश यह ! यह वृद्ध भी हर गाँव के ।  
वत्सराज की कथाएँ रम्य सब हैं जानते ॥  
पूर्व में संकल्पिता वह देखने आगे बढ़ो ।  
श्रीविशाला जो विशाला नाम की नगरी खरी ॥  
जो महात्मा स्वर्ग से निज पुण्य को लेकर चले ।  
उस पुण्य से उनके बनी अमरावती यह दूसरी ॥ ४  
स्वर मधुर यह सारसों के मत्त होकर फैलते ।  
मंद आते गन्ध यह अरविंद के प्रातः पुनः ॥  
ग्लानि हटकर कामिनी नव-सुरत-रत यह बन गयी ।  
सब बना शिप्रा नदी के पवन के जन-प्रेम से ॥  
जो स्वयं कल गूँजता, आमोद वह लाता पुनः ।  
चाटु-वच जो शत बताकर, कर्पता जैसे पिया । ५

१. हिन्दी काव्य में यह लेखक का प्रथम प्रयास है । परिशिष्ट 'ज' के श्लोक ४, ५, ६, व ७, का यह अर्थ दिया हुआ है ।



अनगिनत यह नील पन्ना स्वर्ण-मणि माणिक्य भी ।  
 हार हीरा शंख सीपीं कोटि कोटी यह गुटी ।  
 देखकर यह ढेर मूंगा मोति के लगता मुझे ।  
 क्या पुनः सागर बना वह रत्न-मौक्तिक के बिना ॥ ६  
 ले गया प्रद्योत की प्रियकन्यका राजा यहाँ ।  
 उस चण्ड का वन था बड़े ताल-द्रुमों का हाँ ! वहाँ ॥  
 तोड़ कर खम्बा यहाँ से भग चला नालागिरि ।  
 आगन्तुकों को जन दिखाते सब बताकर यह पुरी ॥ ७

**विक्रम-सभा के नवरत्नः**—विक्रमादित्य -साहसांक जिस विद्वत् परिपद् का सभापति था, उसमें नौ रत्न थे, ऐसी अनुश्रुति की मान्यता है । यह असंभव नहीं है कि उसमें इससे भी अधिक रत्न होंगे । किंतु संभवतः उसमें मान्यता केवल नौ रत्नों को ही प्राप्त हुई होगी । जैसा कि एक शिलालेख में लिखा है, ध्रुवशर्मा, कवि के रूप पर्पद् से माना गया था; किंतु वह नौ रत्नों में माना गया था या नहीं, विदित नहीं है । यदि वैसा हो, तो ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ में जिनके नाम नवरत्नों में लिखे हैं, वे सही रूप में नवरत्न नहीं होंगे । अन्य ही नौ कवि उन रत्नों में होंगे । इसके पुष्टिकरण में यह बताया जा सकता है कि है इनमें से एक प्रमुख रत्न वराहमिहिर की तिथि-विषयक जो कुछ प्रमाण मिलता है, उसका विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त के काल-खण्ड से समन्वय करना बहुत ही असम्भव प्रतीत होता है<sup>१</sup> ।

यदि साहसांक के नव-रत्नों के सम्बन्ध में तर्क पेश करना सम्भव हो, तो सद्यःकालीन जानकारी के अनुसार ऐसा बताया जा सकेगा कि उनमें (१) धन्वन्तरि=हरिचन्द्र वैद्यतिलक=भट्टार हरिचन्द्र; (२) क्षपणक=दिवाकर सिद्धसेन (३) अमरकोश का रचयिता अमरसिंह, (४) बेतालभट्ट (५) कालिदास (६)

१. लेखका इस विषयक ई. १९३९ के लेख में किया गया प्रयास अब उसे विफलसा प्रतीत होता है ।

वररुचि (७) मेण्ठ (८) आर्यशूर तथा (९) दिङ्नाग या ध्रुवशर्मा के नाम लिए जा सकते हैं। यदि यह नव-रत्न विषयक मान्यता केवल कल्पना ही मानी जायें, तो निम्नलिखित एक अति प्राचीन व्यर्थी आर्या निरर्थक मानी जाएगी।

‘सारसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कंकः।

सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये’ ॥”

१. कङ्क यह विक्रमादित्य के सम्बन्ध में कोई वाह्लीक देश का राजकुमार होगा, ऐसा लेखक गत ३० वर्ष से समझ रहा था। स्मरण से इतना बताया जा सकता है कि वहाँ के एक नगरी का, बहुधा समरकन्द का, नाम कंक था, (इस विषयक बहुत पूर्व एक अप्रसिद्ध ग्रन्थ में लेखक ने दिखलाया है)। फिर भी यह धारणा अधिक खोज करने योग्य है; क्योंकि विक्रमांकदेवचरित १०. ३ में कंक का उपयोग वाणविषयक ही किया हुआ है। विक्रमादित्य के द्वारा चलाए जाने वाले वाणों का यह उल्लेख हो सकता है।



परिशिष्ट : ज  
चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की उज्जयिनी

१. भट्टारक रत्ननन्दिकृत भद्रबाहुचरित, २. ५. पश्चात्:—  
“अवन्ती-विषयेऽत्राय विजिताखिलमण्डले ।  
विवेक-विनयानेक-धनधान्यादिसम्पदा ॥ ५  
अभादुज्जयिनी नाम्ना पुरी प्राकारवेष्टिता ।  
श्रीजिनागार-सागार-मुनि-सद्वर्ममण्डिता ॥ ६  
चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम् ।  
चन्द्रगुप्तिः(प्तो) नृपस्तत्राचकच्चारुगुणोदयः ॥”

देखिए मेहेरीली स्तम्भ अभिलेख:—

“प्राप्तेन स्वभुजाजितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ ॥  
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं विभ्रता ।”

२. रघुवंश(६ ३२-३५):—

“अवन्तिनाथोऽमुदप्रवाहुर्विशालवृक्षास्तनुवृत्तमध्यः ।  
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति ॥  
.....अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्ते रग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि ।  
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि ॥  
असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः ।  
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान् ॥  
अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कञ्चिन्मनसो रुचिस्ते ।  
क्षिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुं मुद्यानपरम्परासु ॥”

३. मेघदूत:—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां  
सौधोत्सङ्ग-प्रणय-विमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।  
विद्युद्दाम-स्फुरितचकितैर्यत्र पौराङ्गनानां  
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ १

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः  
 संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।  
 निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरःसंनिपत्य  
 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २  
 वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिधुः  
 पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।  
 सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयस्ती  
 काश्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३  
 प्राप्यावन्तीरुदयनकथा-कोविदग्रामवृद्धाः  
 पूर्वोदिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।  
 स्वल्पीभूते<sup>१</sup> सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां  
 शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥ ४  
 दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां  
 प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।  
 यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः  
 क्षिप्रादातः प्रियतम इव प्रार्थनाचादुकारः<sup>२</sup> ॥ ५  
 हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः  
 शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।  
 दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणांश्च भङ्गा-  
 न्सलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः<sup>३</sup> ॥ ६

१. देखिए क.स.सा.६५ :—“दिवश्च्युतानां विहिता विशालाख्या पुरी भुवि ।”  
 २. श्लोक ४, ५, ६ तथा ७ का हिंदी अनुवाद ऊपर देखें : पृ. १५३-५४  
 ३. देखिए रघु., ५. ५२:—“संवर्धितोरःस्थलतारहारः ॥”  
 देखिए ऊपर पृ. १३६. कादम्बरी (परब), पृ १६४:—“तारतरहारमणीनां  
 रमणीनां” वहीं पृ ३१२:—“अतितारहारं उरसा दधानः ।”  
 वहीं, ३६२:—“अतितारहारं.....” स्पष्ट है कि यह श्लोक प्रक्षिप्त नहीं है,  
 एव बाणभट्ट के द्वारा अनुकृत है ।



(१५८)

उज्जयिनी

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जहे,  
 हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।  
 अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पादय दर्पा-  
 दित्यागन्तूनरमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ७  
 पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः  
 शूलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।  
 योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः  
 प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कः ॥ ८  
 जालोद्गीर्णैरुपचितवपुःकेशसंस्कारधूपै-  
 बंधुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्तोपहारः ।  
 हर्म्यैवस्याःकुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा  
 लक्ष्मीं पश्यन्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ९  
 भर्तुःकण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः  
 पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।  
 धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-  
 स्तोयक्रीडा-निरत-युवति-स्नान-तिक्तं मरुद्भिः ॥ १०  
 अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले  
 स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।  
 कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-  
 मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥ ११  
 पादन्यासैः कणितरशनारतत्र लीलावधूतै  
 रत्नच्छायाखचितवलिमिश्रामरैः क्लान्तहस्ताः ।  
 वेश्यास्त्वत्तो नखपदमुखान्प्राप्य वर्षाग्रिबिन्दू-  
 नामोक्ष्यन्ते त्वयि मयुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥ १२  
 पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः  
 सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।

नृत्तारम्भे हर पशुपतेराद्र्रं नागाजिनेच्छां  
 शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टमक्तिर्भवान्या ॥ १३  
 गच्छन्तीनां रमणवसति योपितां यत्र नक्तं  
 रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यंस्तमोभिः ।  
 सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं  
 तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥ १४  
 तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्त पारावतायां  
 नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ।  
 दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं  
 मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ १५



(१६०)

उज्जयिनी

आहुति: अष्टाविंश

मालवों का आगमन व राज्य (ई. ४८०-६००)

साहसांक के पश्चात् उज्जयिनी की क्या अवस्था हुई, यह ठीक ठीक जाना नहीं जा सकता। सम्भवतः कुमारगुप्त ने उज्जयिनी से अपनी राजधानी हटायी। बिलसद के ई. ४१७ के अभिलेख से विदित होता है कि (उज्जयिनी की) परिषद् द्वारा माना हुआ कवि ध्रुवशर्मा उज्जयिनी का निवासी नहीं रहा था।

चन्द्रगुप्त ने शक-क्षत्रपों की मुद्राओं की प्रतिकृतियां उनके क्षेत्र में प्रसारित की। उसके वंशज कुमार-गुप्त, स्कंदगुप्त-विक्रमादित्य आदि के समय में भी ऐसी ही मुद्राएँ प्रचलित रही। उसके समय में लगभग ई. ४५२ में हूणों ने बाल्हीक देश जीत कर पश्चात् भारत पर प्रथम आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने बड़े धैर्य से उनका मुकाबला किया।

इसके पश्चात् भी स्कन्दगुप्त, प्रकाशादित्य तथा कुमारगुप्त (द्वितीय) के समय में ऐसी ही स्थिति रही होगी। बुधगुप्त के समय में ई. ४८४ में भी एरण उसीके साम्राज्य के अन्तर्गत होगा। संभवतः लगभग ई. ५०० में तोर-माण का एरण क्षेत्र पर आधिपत्य प्रस्थापित हुआ। अवन्ति भी उसीके आधिपत्य में चली गई होगी। उसके पश्चात् उसका पुत्र मिहिरगुल नामक एक प्रसिद्ध हूण राजा हुआ। उसने इस क्षेत्र में जो सिक्के प्रसारित किये, उन पर एक ओर नन्दी एवं 'जयतु वृषः' लिखा हुआ है।

जब मिहिरगुल को नरसिंहगुप्त बालादित्य ने पराभूत किया, तब यशोधर्मन् विष्णुवर्धन ने उसे पर्याप्त सहायता दे दी होगी। उसके प्रशस्तिकारों ने मात्र उसका अवास्तविक गौरव करके उसे पूरे भारत का अधिपति माना है। उसके समय के अन्य राजे गुप्तों को ही अधिराज मानते थे; एवं 'विजतावनिरवन्ति-पति' आदि से अंकित मुद्राएँ भी गुप्त समाटों की ही उपलब्ध हैं। यशोधर्मन् की ऐसी कोई मुद्रायें उपलब्ध नहीं हैं। यह यशोधर्मन् कौन था? उसके अभिलेखों

में प्राप्त मालव संवत् भी कौनसा एवं कहां का ? तथा विक्रम संवत् का इससे क्या संबन्ध ?

विक्रम संवत्:—इस छोटी पुस्तक में इस जटिल समस्या के विषय में अधिक लिखना उचित नहीं है । इसके विषय में लेखक ने एक स्वतंत्र किताब लिखी हुई है<sup>१</sup> उसका सारांश मात्र यहां देना उचित होगा । वह यह है 'कुषाण-संवत् = कृत-संवत् = मालव संवत् = विक्रम-संवत् ।' इसकी प्रमुख बातें यह हैं :—

१. कुषाण राजाओं में सर्वप्रथम कप्स का पुत्र कुजुल ने हेरमाय नामक ग्रीक महाराज को पराभूत किया । उस समय से वह अपने को "वाङ्" (सर्व-भौम राजा, सम्राट्) कहलाने लगा । इसकी ८० वर्ष की उमर में इसने जो अपना राज्य संवत्सर शुरू किया एवं जो उसने ५० या अधिक वर्ष तक चलाया, वही आगे इसके पुत्र, पौत्र, प्रपोत्र आदि कुषाण "महाराज राजाधिराज" तथा उनके सत्रपों ने चलाया । कनिष्कादि कुषाणों के समय पर २०० वर्ष पूरे होने पर प्रायः शतक का अंक भारत में ब्राह्मी-लिपि के क्षेत्र में टाला जाने लगा । फिर भी ऐसे तीन उल्लेख उपलब्ध हैं जिनमें वह शतक का अंक लिखा गया है । इससे इस मामले में अब कोई सन्देह नहीं रहता ।

२. मालव-मौखरि<sup>२</sup> प्रदेश में वह अंक नहीं मिटाया जाता था । फलस्वरूप यहाँ के २८० दूसरे ब्राह्मी के प्रदेशों के ८०, यह उनकी अक्षर-वाटिका से स्पष्ट रूप में प्रमाणित होता है ।

३. मालव-मौखरियों की सत्ता किस प्रकार बढ़ती गई यह उनकी उपाधियों से

१. दि प्राब्लेम् ऑफ् दि कुषाणज् अँण्ड् दि ऑरिजिन् ऑफ् विक्रम संवत् ।

२. वहीं: मालव यही मौखरी थे, यह सर्वप्रथम डॉ. तीहार रंजन राय ने दिख-लाया है । देखिए इन्डियन् कल्चर्, भाग ४-५. यहां केवल राजस्थान मालवा के मौखरियों से ही लेखक का अभिप्राय है ।



तथा अन्य प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है। पहले यह कुपाणों के सामन्त रहे। इसी कारण उनका संवत् उपयोग में लाते रहे। पश्चात् वे गुप्तों के सामन्त बन गए।

मालव-मौखरियों के सम्बन्ध में अन्य एक महत्त्व की बात यह है कि उनके नाम वर्मान्त या वर्धनान्त होते हैं। विषय सुगम करने हेतु निम्न कोष्टक देखें।

| अ.   | स्थान           | संवत्    | वर्ष       | ईस्वीं     | उपाधि                            | राजा                        |
|------|-----------------|----------|------------|------------|----------------------------------|-----------------------------|
| १    | नांदसा          | कृत      | २८४        | २२७        | (त्रुटित)                        | धर्मवर्धन                   |
| २    | कोटा            | कृत      | २९५        |            | महासेनापति                       | वलवर्धन                     |
| ३    | विजयगढ़         | कृत      | ४२८        | ३७१        | वरिक(=उपरिक)<br>नरेन्द्र         | विष्णुवर्धन<br>जयवर्मन्     |
|      |                 |          |            |            | क्षितिप                          | सिंहवर्मन्                  |
| ४    | मन्दसौर         | कृत-मालव | ४६१<br>४७४ | ४०४<br>४१७ | महाराज<br>नृप                    | नरवर्मन्                    |
| ५    | गङ्गाधर         | कृत      | ४८०        | ४२३        | नृप                              | विश्ववर्मन्                 |
| ६    | मन्दसौर         | मालव     | ४९३        | ४३६        | नृप                              | बन्धुवर्मन्                 |
| ६ अ. | मन्दसौर         | मालव     | ५२९        | ४७२        | ?                                | ?                           |
| ७    | छोटी सादरी..... |          | ५४७        | ४९०        |                                  | आदित्यवर्धन                 |
| ८    | मन्दसौर         |          | ५८९        | ५३२        | राजाधिराज<br>परमेश्वर<br>सम्राट् | { विष्णुवर्धन-<br>यशोधर्मन् |
| ९    | [बृहत्संहिता]   | (?)      | ५५०        |            | महाराजाधिराज                     | द्रव्यवर्धन <sup>१</sup>    |

१. हूणों का साम्राज्य विष्णुवर्धन के पूर्व २०-३० वर्ष था, यह बात डॉक्टर बुद्धप्रकाश ने तथा लेखक ने विभिन्नतया (Independently) दिखलायी है। अतः द्रव्यवर्धन के कालविषयक डॉ. म. म. मिराशी का तर्क ग्राह्य मानने में कठिनाइयाँ हैं (मिराशी, स्ट. इ., भाग १, पृ. २०६-२१२): द्रव्यवर्धन के समय के विषय में लेखक को डॉ. बुद्धप्रकाश का तर्क अधिक युक्ति-पूर्ण प्रतीत होता है।

कवि भारवि :—इस के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा है कि विशाला (उज्जयिनी) की विद्वत्-परिषद् या सभा के द्वारा उसके काव्य की परीक्षा की गयी, एवं उसे यहीं ख्याति प्राप्त हुई<sup>१</sup>। उसके साथ के अन्य कवि भी उज्जयिनी से सम्बन्धित रहे। भारवि के सम्बन्ध में एक अन्य अनुश्रुति है, कि वह किसी विष्णुवर्धन नामक राजा की सभा में, उसका मित्र बन कर रहा<sup>२</sup>। जैसा कि ऊपर दी हुई जानकारी से स्पष्ट होगा, मालव-मौखरियों में दो राजा विष्णुवर्धन नाम के हुए। उनमें से एक 'वरिक' (= उपरिक) उपाधि से विभूषित था; दूसरा राजाधिराज-परमेश्वर आदि से। उपरिक विष्णुवर्धन का समय ई. ३७० का होने से, वह समुद्र-गुप्त तथा चन्द्रगुप्त के समय का राजा था, यह बात संशया-तीत है। अनुश्रुतियों में भारवि को कालिदास का समकालीन माना गया है<sup>३</sup>। एक शिलालेख में भी भारवि एवं कालिदास को साथ साथ,—संभवतः पुराने प्रसिद्ध कवियों के रूप-निर्दिष्ट किया है<sup>४</sup>। अतः कालिदास, चन्द्रगुप्त-साहसांक तथा भारवि समकालीन थे, यह मानना अधिक आपत्ति-जनक नहीं होगा।

फिर भी लेखक ने ऐसा पाया है कि कुछ जगहों पर कवि भारवि कुछ कल्प-नाएँ कवि-कुल-गुरु कालिदास से ही ले लेता है। उसकी काव्य-शैली भी आड-म्बरपूर्ण है, जो कि बाद का काल निर्दिष्ट करती है। जिस विष्णुवर्धन से मंत्री करना बताया गया है, वह सम्राट् या ऐसा ही उक्त अनुश्रुति से प्रतीत होता होता है।

१. देखिए ऊपर पृ. १४७ पञ्चात्
२. "स मेघावी कविर्विद्वान्भारविः प्रभवं गिराम्।  
 अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने।"
३. उपर्युक्त विशाला-परिषद् विषयक राजशेखर की अनुश्रुति। तथा—"भासो रामिल-सोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसांको कविर्मैष्ठो भारवि-कालिदास-तरलाः....।"
४. ऐहोले शिलालेख :—'धेनायोजि....। कविताश्रित-कालिदास-भारवि-कीर्तिः।'



विष्णुवर्धन-यशोधर्मन् के समय में आडम्बर-पूर्ण काव्य उसीके 'वासुल' नामक कवि ने रचाया था। इन कारणों से, तथा अवन्ति देश का कवि होने के कारण भारवि महाराधिराज विष्णुवर्धन-यशोधर्मन् के समय की सभा में था, यह मानना उचित होगा। विष्णुवर्धन की सभा में बहुत ऊँचे दर्जे के कवि थे, यह बात केवल 'वासुल' की प्रशस्ति से ही नहीं, बल्कि मालव सं० ५८९ की प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है। इस वद्विया काव्य का कर्ता अज्ञात है<sup>१</sup>। भारवि जैसी इसकी भी शैली पाश्चाली है, तथा इसमें शब्दालंकारों एवं अर्थालङ्कारों का प्राचुर्य दिखाई देती है। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र का भारवि जैसे इस कवि ने भी अध्ययन किया था, यह बात भी इसके काव्य से स्पष्ट होती है।

उक्त राज-वंश में विष्णुवर्धन-यशोधर्मन् ही सर्व-प्रथम राजाधिराज हुआ, यह बात भी उससे स्पष्ट होती है<sup>२</sup>। अतः एवं अन्य कारणों से 'आवन्तिक' महाराजाधिराज<sup>३</sup> द्रव्यवर्धन इसके पश्चात् ही सम्राट् हुआ, ऐसा प्रतीत होता है<sup>४</sup>। द्रव्यवर्धन उज्जयिनी का राजा माना गया है, एवं भट्टोत्पल के अनुसार, उसके पहले भी उसके वंश में महाराजाधिराज हुए<sup>४</sup>। द्रव्यवर्धन के समान

१. इस काव्य में ऋतुसंहार के दो श्लोकों का निकट का अनुकरण है,—जिसमें कई शब्द-समूह तथा पूरी कल्पना ले ली गई है—यह लेखक ने ई. १९३८ में मराठी मासिक सहायि में दिखलाया है।
२. विष्णुवर्धन-यशोधर्मन् की मन्दसौर प्रशस्ति, संवत् ५८९ :—  
'प्राचो नृपान् सुबृहतश्च बहूनुदीच्यान्  
साम्ना युधा च वशगान् प्रविधाय येन ।  
नामापरं जगति कान्तमदो दुरापं  
राजाधिराज-परमेश्वर इत्युद्बुद्धम् ॥'
३. वृ. स., ५६.२ :—"भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः ।  
आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः ॥"
४. भट्टोत्पल की टीका :—"यच्च शाकुनं भारद्वाजाख्यस्य मुनेर्मतं दृष्ट्वा अव-  
लोक्य श्रीद्रव्यवर्धनाख्यो महाराजाधिराजवंशप्रसूत आवन्तिको उज्जयिन्यां  
नृपः....।"

विष्णुवर्धन भी उज्जयिनी का राजा था, एवं उसकी कवि-सभा वहाँ जारी थी, यह भी असंभव नहीं प्रतीत होता है। भारवि की परीक्षा उज्जयिनी में हुई यह बात इसका प्रमाण मानी जा सकती है।

इन्हीं मालव-राजाओं के कारण 'मालवा' को यह नाम प्राप्त हुआ। मालव-गण यहाँ पूरा का पूरा आ गया था, ऐसे मानने की न कोई आवश्यकता है और न कोई प्रमाण है। उक्त मालव-मौखरि राजवंश का राज्य यहाँ लगभग ई. ६०० तक चला आया था, यह कुछ साहित्यिक उल्लेखों से प्रतीत होता है।

द्रव्यवर्धन के पश्चात् एवं ग्रहवर्मा के समय के पूर्व, औलिकर वंश के किसी राजा को वाकाटक राजा पृथ्वीषेण ने अपने आधिपत्य में लाया था, ऐसा दावा वाकाटकों के एक शिलाशासन में उसकी ओर से किया गया है<sup>१</sup>। संभवतः उस समय का औलिकर राजा निर्बल था।

इन्हीं मालव राजाओं के किसी वंशज द्वारा सम्राट् ग्रहवर्मा मौखरि उसी दिन मारा गया, जिस दिन प्रभाकर वर्धन की मृत्यु हो गयी। पश्चात् उसने उसकी पत्नी राज्यश्री को भी लोहे की शृङ्खलाओं में जकड़ कर कैद रखा<sup>२</sup>। राज्यवर्धन ने मालव राजा पर हमला करके उसको लीलया पराजित किया। इसके पश्चात् थोड़े ही समय में संभवतः हर्षवर्धन ने इस धराने का नाश किया। चीनी यात्री हुएन सांग (शुआन् छ्वाङ्) से विदित होता है कि उसने उज्जयिनी आने पर (ई. ६३५) वहाँ एक विद्वान् ब्राह्मण का राज्य पाया<sup>३</sup>। चूँकि औलिकर वंश के मालव राजाओं के नाम वर्मन् या वर्धन में अन्त होते थे, अतः यह वंश संभवतः क्षत्रियों का था<sup>४</sup>। इससे यह प्रतीत होता है कि औलिकर वंश का इसके पहले ही अन्त हो चुका था।

१. ई. ६३५ अजंटा शिलालेख—

'कोसल-मेकल-मालवाधिपतिभिरभ्यर्चित-शासनः ।'

२. ह. च. (परव)

३. देखिए वाट्स, यु. झूवा-ट्रें. इ., भाग २, पृ. २५०.

४. मौखरि-वंश को कवि बाणभट्ट ने अपने हर्ष-चरित में सर्व-क्षत्रों में 'मूर्धन्य' (अग्रणी) कहा है।



(१६६)

उज्जयिनी

आहुतिः एकोनत्रिंशा

कलचुरि राज्य

‘तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीत इत्यागमवृद्धसेवी ।

येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम् ॥....

अस्याङ्गलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्ब-काञ्चीम् ।

प्रासाद-जालान्तर-वेणुरम्यां रेवा यदि प्रक्षितुमस्ति कामः ।”

—रघुवंश ६.४९ पश्चात् ।

महाकवि कालिदास—जैसा कि अन्य कविराज भी नित्य करते आ रहे हैं—अपने समय की घटनाओं की भी अन्य विषय पर लिखे हुए काव्य में संकेतित करते हैं । उपरोक्त श्लोकों में कालिदास-कालीन माहिष्मती के कलचुरि राजवंश का उल्लेख बिछकुल स्पष्ट है । यह भी राजवंश कई पिढियों से वहीं—माहिष्मती में—राज्य कर रहा था । ताम्रलेखों से भी कालिदास के समय का इसी माहिष्मती का एक कटच्छुरि राजवंश विदित है, जिस पर राज्यश्री की कृपा बहुत काल तक रही होगी । इस राजवंश की राजधानी पहले ‘वल्ल’ यानी बाघ गुफाओं के समीप की पहाड़ियाँ, एवं पश्चात् माहिष्मती रही होगी, ऐसा इनके ताम्रलेखों से प्रतीत होता है । इनका इतिहास सुगम करने हेतु इनकी वंशावलि नीचे दी जा रही है<sup>१</sup> ।

- 
१. इनके वल्ल तथा माहिष्मती से प्रसारित ताम्रलेखों का संवत् म. म. मिराशी द्वारा कलचुरि संवत् माना गया है; किन्तु यह कई कारणों से असम्भव है । अक्षर-वाटिका उनमें एक महत्त्व का कारण है । कुछ अन्य कारण मात्र यहाँ संक्षेप में बताए जावेंगे । वह संवत् गुप्त-संवत् है ।

|                      |               |                                |
|----------------------|---------------|--------------------------------|
| राजा की उपाधि व नाम  | किस स्थान से  | संवत् = ईस्वी सन्माट् की उपाधि |
| महाराज स्वामिदास     | वलख           | ६७ = ३८६ परमभट्टारक            |
| " भुलुण्ड            | "             | १०७ = ४२६ " "                  |
| " रुद्रदास           | "             | ११७ = ४३६ " "                  |
| " सुवन्धु            | माहिष्मती     | १६७ = ४८६                      |
| " "                  | "             | — = —                          |
| कृष्णराज             |               | (५६०)                          |
| शङ्करगण <sup>१</sup> | उज्जयिनी-वासक | ३४७ = ५९६                      |
| बुद्धराज             | वैदिश-वासक    | ३६० = ६०९                      |
| "                    | आनन्दपुर-वासक | ३६१ = ६१०                      |

उपरोक्त राजाओं के विषय में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं :—

(१) वलख राजाओं के सम्राटों की उपाधि परमभट्टारक यह सर्व-प्रथम गुप्त सम्राटों ने उपयोग में लायी। इनके पहले जो कुपाण सम्राट् हुए, उनमें किसी को भी इससे भूषित नहीं किया गया था।

(२) भाषा-शास्त्र-दृष्टि से 'वलख=वग्घ=बाघ' यह समीकरण अति युक्त है। इस कालखण्ड में राजाओं के द्वारा अपने मूल दुर्गस्थ निवास से ताम्र-शासन प्रसारित करने की प्रथा थी। इसी के कारण इस कालखण्ड के कई शासनों के

१. इसे सम्राट् समुद्रगुप्त के कई विशेषणों से वर्णित किया है, जैसे—'पृथि-व्यामप्रतिरथश्चतुर्दधिसलिलास्वादितयशा धनदवरुणेन्द्रान्तकसमप्रमावः स्व-बाहुवलोपार्जितराज(ज्य)श्रीः प्रतापातिशयोपतन-समग्रसामन्त-मण्डलः..... चिरोत्सन्नानां नृपतिवंशानां प्रतिष्ठापयिता।'—आभोणा ताम्रलेख तथा वडनेर ताम्रलेख (शङ्करगण के सम्बन्ध में)  
'अनेक-समरविजयावाप्त-कीर्तिः'—सांखेडा ताम्रलेख



प्रारम्भ में 'त्रैकुटकात्', 'उच्चकल्पात्' 'रामगिरि-पादमूलात्' आदि शब्द पाए जाते हैं । वल्ख भी त्रिकूट, उच्चकल्प आदि के समान एक गिरि-शिखर था<sup>१</sup> ।

(३) वल्ख तथा माहिष्मती की ताम्रशासनों के बायी छोर पर राजा का नामनिर्देश किया जाने के कारण, एवं यह प्रथा अन्यत्र न दिखाई देने के कारण यह ताम्रशासन संभवतः एक ही राजवंश के होंगे । माहिष्मती के सुबन्धु का एक ताम्रशासन (संवत् १६७ का) बाघ गुफाओं में पाया गया था, यह विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य बात है ।

(४) बाघ का प्राचीन वास्तविक नाम क्या रहा होगा, यह समस्या भी अब नहीं रहती । जैसा कि अन्यत्र सूचित किया गया है, प्राचीन काल के सभी बड़े-बड़े विहार (=संघाराम, स्तूप आदि) किसी न किसी राजधानी के पास पाए जाते हैं । बाघ के विहारों के समीप अब तक कोई राजधानी नहीं पायी गयी थी । वहाँ एक स्थान पर एक पुरानी नगरी के अवशेष अब भी मौजूद हैं, ऐसा विदित हुआ है । इसका शास्त्रीय अन्वेषण अति आवश्यक है ।

(५) काठियावाड़ में डॉ. भगवानलाल इन्द्रजी द्वारा कुछ मुद्राएँ पायी गयीं, जिनमें 'कृष्ण' नाम पढ़ा गया था एवं जिन पर किसी संवत् का वर्ष भी दिया गया था । अक्षर-वाटिका के आधार पर डॉ. इन्द्रजी ने वह संवत् त्रैकूटक संवत् माना है, वह सही प्रतीत होता है । इसके वंशजों के ताम्रलेख भी इसी संवत् में पाए जाते हैं ।

(६) कलचुरि संवत् ३४७ (=ई. ५६६) में "कटच्चुरि" वंश के शङ्करगण का 'विजय-स्कंधावार' (=विजयी छावनी) उज्जयिनी में पड़ा हुआ था, तब उसने भोगवर्धन (=भोकरदन) में स्थित किसी भूमि का दान किया । शङ्करगण को उसमें सम्राट् जैसी उपाधियों से भूषित किया गया है, एवं नष्ट राजवंशों की प्रतिष्ठापना करने वाला भी कहा है ।

१. म. म. मिराशी के अनुसार वल्ख यह अब वाघली बना है । भाषा-शास्त्र-दृष्टि से यह असम्भव है । वाघली या वाघोली व्याघ्रपल्ली से उद्भूत हो सकता है ।

(७) शङ्करगण का अन्य एक ताम्रशासन सांखेडा ( जिला बडोदा ) में प्राप्त हुआ है। उसी क्षेत्र में जब शङ्करगण की 'विजयी छावनी' लगी थी, तब यह प्रसारित किया गया था।

(८) उपरोक्त से कलचुरि साम्राज्य की स्थिति आंकी जा सकती है। इसके थोड़े ही समय पूर्व कलचुरि संवत् ३४६ (=ई. ५६५) में उत्तर लाट विषय में प्रायः शङ्कर-गण के अधीन कटचुरि महाराज गण्ण के राज्य-काल में उसके पुत्र श्रीतरल-स्वामी द्वारा मांकणी (जिला बडोदा का ताम्रशासन प्रसारित किया गया<sup>१</sup>। इस प्रकार उत्तर लाट, अवन्ति, विदर्भ आदि प्रदेश कलचुरि सम्राट् शंकरगण के अधीन थे।

म. म. मिराशी के मत में शंकरगण कटचुरी की मृत्यु ई. ६०० के करीब हुई। इसका कारण यह दिया गया है कि—उसका पुत्र बुद्धराज ई. ६०१ में चालुक्य राजा मंगलीश द्वारा पराजित किया गया<sup>२</sup>, परन्तु क.संवत् ३६० के बडनेर ताम्रशासन के रूप में बुद्धराज के सत्त्व तथा उत्साह का परिचय होता है<sup>३</sup>। वह फिर उस वर्ष (=ई. ६०६) में विदिशा में छावनी लगाकर रहा था। क.सं. ३६१ (ई. ६१०) में वह आनन्दपुर की छावनी से दान-पत्र प्रसारित करता है। इसके पश्चात् थोड़े समय में हों, शीलदित्य—धर्मादित्य के भाई खरग्रह ने ई. ६१८ में उज्जयिनी से दो ताम्रलेख प्रसारित किए<sup>४</sup>।

उपर्युक्त इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस मालव राजा ने ग्रहवर्मा की हत्या करके जयश्री को कैद किया था, वह संभवतः उज्जयिनी का नहीं था। उसको राज्यवर्धन ने पराभूत करने पर, उसके सम्बन्ध में कोई अधिक जानकारी नहीं मिलती। मगध के गुप्तवंश के देवगुप्त के साथ अन्य कुछ राजाओं

१. "कटचुरि-कुल-वेश्म-प्रदीपः श्रीमहाराज-गण्णः, तस्य सूनुः.....श्री तरलस्वामी.....।"

२. मिराशी, इ. क. ई. ग्रन्थ १, प्रस्तावना, पृष्ठ ४७.

३. वहीं. पाठ्य, पृ. ४६ :—'विजयस्कन्धावाराद्वैदिशवासकात्.....।'

४. वहीं, प्रस्तावना, पृ. ४६. देखिए नीचे पृ. १७१, पदटीप २.



को कोड़े मारने का लिखा गया है। यह असम्भव नहीं, कि मालवराजा भी उनमें से एक हो; एवं राज्यवर्धन ने उसके द्वारा किये गये राज्यश्री के अपमानका बदला लिया<sup>१</sup>। क. संवत् ३६० (= ई. ६०६) में बुद्धराज कटच्छुरि ने वैदिशावासक (विदिशा के निवास) से एक दान पत्र प्रसारित किया जिसमें वटनगर (= वड-नेर) की भुक्ति में एक भूमि-दान किए जाने का उल्लेख है<sup>२</sup>। विदिशा अवन्ति के पूर्व में, एवं वटनगर (लाट-देश) अवन्ति के पश्चिम में होने से यह स्पष्ट है कि इस समय बुद्धराज कटच्छुरि के आधिपत्य में लाट, अवन्ति, विदिशा—तथा कुछ पूर्व एवं उत्तर का प्रदेश भी—रहा होगा।

कुछ समय पश्चात् चालुक्य राजा मंगलेश (या मंगलीश) ने कटच्छुरि राजा पर आक्रमण किया एवं उसको पराभूत किया, ऐसा ऐहोले शिलालेख से प्रतीत होता है<sup>३</sup>। इसी समय वलभी के राजा ने उज्जयिनी जीत ली होगी। इसके पश्चात् सम्भवतः कटच्छुरि (कलचुरि) वंश की सत्ता बहुत कम हो गयी। इस विषय में चीनी यात्री हुएन सांग (Hsuan Ch'wang) की यात्रा-विषयक वर्णन से कुछ जानकारी प्राप्त होती है। उसकी भेंट के समय मही नदी के कछार (=महीकांठा) में मालवक या लाट-विषय नामक एक राज्य था<sup>४</sup>।

१. “राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः

कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वे समं सयताः।”

२. बुद्धराज कटच्छुरि की वटनगर-प्रशस्तिः—

‘वटनगरभोगे भट्टउरिकां प्रत्यासन्नकां णियाणां। एष ग्रामः...’ (म. म. मिराशी के इसी के वाचन के लिए देखे—इं. क. ई.; ग्रंथ १, पृ. ५०)

३. कवि रविकीर्ति की ऐहोले प्रशस्तिः—

“अवाप्तवान्यो रणरङ्ग-मन्दिरे  
कटच्छुरि-श्री-ललना-परिग्रहम् ॥”

४. वॉट्स, यु. छ्वा. ट्र. इं., भाग पृ. २४३-२४३. इसको उत्तर लाट कहने के बजाय दक्षिण-लाट कहा गया।

जिसके अधीन कच्छ<sup>१</sup>, आनन्दपुर<sup>२</sup>, सुराष्ट्र<sup>३</sup> आदि राष्ट्र थे<sup>४</sup>। इसके दक्षिण में भरुकच्छ या दक्षिण लाट-विषय था, जो कि गुर्जर वंशीय राजा दह (द्वितीय) के अधीन था। संभवतः दक्षिणपथ का चालुक्य राजा पुलकेशी (द्वितीय) से इसकी दोस्ती थी। इसके दो ताम्रलेख—जो कि (कलचुरि) संवत् ३८० तथा ३८५ के हैं<sup>५</sup>—यह हर्षवर्धन का समकालीन होने का प्रमाणित करते हैं। इसके कुछ वंशजों के अभिलेखों से विदित होता है कि इसने वलभी के राजा को उत्तरापथ के सम्राट् हर्षदेव से बचाया था। संभवतः यह चालुक्य राजा पुलकेशी की सहायता से किया होगा।

जैसा कि ऊपर बताया गया है—चीनी यात्री की भेंट के समय पर उज्जयिनी में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। उसके राज्य का क्षेत्र केवल ६००० ली (= लगभग १००० वर्गमील) बताया गया है। यानी यह राज्य केवल लगभग २० मील चौड़े तथा ५० मील लंबे क्षेत्र से अधिक नहीं था। अतः संभवतः यह केवल 'अपराकर' वर्जित अवन्ति जनपद में सीमित था। यह असम्भव है कि इतना छोटासा राज्य इस समय स्वतन्त्र हो। हुएन सांग ने यह बताया है कि उसकी भेंट के समय सम्राट् शीलादित्य (= हर्ष) दिग्विजय पर निकला था,

१. वहीं; भाग २; पृ. २४५.
२. वहीं; भाग २, पृ. २४७. आनन्दपुर नाम से चीनी यात्री द्वारा उल्लेखित नगरी ही आनन्दनगर या वटनगर नाम से ख्यात थी। यही पहले आनर्तनगर यानी आनर्त देश की राजधानी थी, एवं अब बडनेर नाम से ख्यात है।
३. वहीं; भाग २, पृ. २४८.
४. इसके कुछ पहिले उत्तर लाट (मालवक) कटच्छुरि राजा के ही अधीन था, यह मांकणी (जिला बरोडा) के कलचुरि संवत् ३४६ (= ई. ५६५) के ताम्र-शासन स्पष्ट हो जाता है। इसके अनुसार कटच्छुरि राजा गण्ण के समय में उसके पुत्र तरलस्वामी ने कुछ भूमिदान किया। देखिए ऊपर पृ. १६६, व पदटीप १.
५. = ई. ६२६ तथा ६३४ (क्रमशः)



(१७२)

उज्जयिनी

एवं उस समय पूर्व तथा पश्चिम के सब देश उसका आधिपत्य स्वीकृत कर रहे थे। केवल महाराष्ट्र का अधिपति पुलकेशी उसे गिनता नहीं था। इससे तथा उपरोक्त अन्य जानकारी से यह सम्भव है कि दक्षिण लाट (=भरुकच्छ), उत्तर लाट (=आनर्त=मालवक) तथा महाराष्ट्र एक ओर थे, एवं उन्होंने मिलकर श्रीहर्ष-वर्धन का मुकाबला किया। चीनी यात्री के वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि उज्जयिनी के छोटे राज्य का राजा श्रीहर्ष-वर्धन के ही अधीन था। फिर यह भी असम्भव नहीं है, कि बाद में श्रीहर्षवर्धन का पुलकेशी द्वारा पराजय होने पर वह पुलकेशी का सामन्त बन गया। जैसा कि ऐहोले शिलालेख से विदित होता है, लाट देश (दद् कटच्छुरि?), मालव (अवन्ति) का राजा आदि चालुक्य सम्राट्, दक्षिणापथ-पति पुलकेशी (द्वितीय) के सामन्त बन गए।<sup>१</sup> (ई. ६४०)

इस समय की उज्जयिनी नगरी के संबन्ध में चीनी यात्री हुआन सांग ने लिखा है कि उज्जयिनी का विस्तार ३० ली (यानी लगभग ५ वर्ग मील) था।<sup>२</sup> प्राचीन उज्जयिनी के उपलब्ध अवशेषों को तथा टीलों को ध्यान में रखत हुए, चीनी यात्री का यह अनुमान—जिसके अनुसार वह नगरी प्रायः लम्बाई में २॥ मील एवं चौड़ाई में २ मील था—अधिक गलत नहीं होगा। चीनी यात्री ने बतलाया है कि उसके समय का उज्जयिनी का राजा ब्राम्हण-धर्म-शास्त्र में पण्डित था।

१. ऐहोले शिलालेख :-

“प्रतापोपनता येन लाट-मालव-गुर्जराः ।

दण्डोपनत-सामन्त-चर्याचार्या इवाभवन् ॥”

२. वॉट्स, वहीं, भाग २, पृ, २५०

## परिशिष्ट 'ज'

## बाणभट्ट की कादम्बरी में उज्जयिनी-वर्णन:-

‘अस्ति सकल-त्रिभुवन-ललामभूता....आत्मनिवासोचिता भगवता महाकाल-  
 भिधानेन भुवनत्रयसर्ग-स्थिति-संहार-कारणेन प्रमथनाथेनापरेव पृथिवी समुत्पा-  
 दिता, द्वितीय-पृथिवी-शङ्कया च जलनिधिनेव रसातल-गभीरेण परिखा-बलयेन  
 परिवृता, पशुपतिनिवासप्रीत्या च गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव  
 सुधासितेन प्राकार-मण्डलेन परिगता, प्रकट-शङ्ख-शुक्ति-मुक्ता-प्रवाल-मरकत-  
 मणिराशिभिश्चामीकरचूर्ण-सिकता-निकर-निचितैरायामिभिरगस्त्य-परिपीत-सलि-  
 लैः सागरैरिव महाविपणिपथैरुपशोभिता, सुरासुर-सिद्ध-गन्धर्व-विद्याधरोरगा-  
 व्यासिताभिश्चित्रशालाभिः....अलङ्कृता, कनकमयामलकलशशिखरैरनिलदोलायि-  
 त-सितध्वजैः....अश्वरमन्दिरैर्विराजित-शुङ्गाटका सुधावेदिकोपशोभितोदपानैरन-  
 वरत-चलित-जलघटी-यन्त्र-सिच्यमान-हरितोपवनान्धकारैः.....उपशत्यकैरुपशो-  
 भिता, मदमुखर-मधुकर-पटलान्धकारित-निष्कुटा स्फुरदुपवन-लता-कुसुम-परिमल-  
 सुरभि-समीरणा, रणित-सौभाग्यघण्टैरालोहितांशुक-पताकैराबद्ध-रक्तचामरैर्विदुम-  
 मयैः प्रतिभवनमुच्छ्रितैर्मकरांकितैर्मदनयष्टिकेतुभिः प्रकाशित-मकरध्वजपूजा....  
 पर्यस्तरविकिरणरचित-सुरचापचारुपु धारागृहेषु मत्तमयूरमण्डलैः....आवध्यमान-  
 केकारव-कोलाहला....सहस्रसंख्यैरुद्भासिता सरोभिः....दिशि दिशि दन्तवलभिका-  
 भिर्धवलीकृता, यौवनमदमत्तमालवी-कुच-कलश-क्षुभित-सलिलया भगवतो महा-  
 कालस्य शिरसि सुरसरितमालोक्य समुपजातेर्ष्येव सततावद्वतरङ्गभ्रुकुटीलेखया  
 ....शिप्रया परिक्षिप्ता,....स्मृतिशास्त्रेणेव सभावसथ-कूप-प्रपाराम-सुरसदन-सेतु-  
 यन्त्र-प्रवर्तकेन....शिक्षिताशेषदेशभाषेण....सर्वलिपिज्ञेन महाभारतपुराणरामायणा-  
 नुरागिणा बृहत्कथाकुशलेन....विलासिजनेनाधिष्ठिता, सशैलेव प्रासादैः, सशाखा-  
 नगरेव महाभवनैः....दर्शितविश्वरूपेव चित्रभित्तिभिः....पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाघ-  
 वलाट्टहासा, वृद्धेव जातरूपक्षया,....शबरवसतिरिवावलम्बितचारु-चामर-नागदन्त-  
 धवल-गृहा....प्रस्तुताभिषेकभूमिरिव सन्निहितकनकघटसहस्रा,....अदितिरिव देवकु-  
 लसहस्रसेव्या,....अवलम्बित मुक्ताकलापापि विहारभूषणा.....अवन्तीषूज्जयिनी



(१७४)

उज्जयिनी

नाम नगरी । यस्यामुत्तुङ्गसौधोत्सङ्ग-सङ्गीत-सङ्गिनीनामङ्गनानां...गीतर-  
वेणाकृष्यमाणाधोमुख-रथतुरङ्गः...कृतमहाकालप्रणाम इव प्रतिदिनं लक्ष्यते  
गच्छन्दिवसकरः । यस्यां...सिन्दूरमणिकुट्टिमेषु...मरकतवेदिकासु...वैदूर्यमणिभू-  
मिषु...इन्द्रनीलवातायनविवरेषु विराजन्ते रविगभस्तयः ।...यस्यां च...दूरप्रसा-  
रितध्वजभुजाः प्रासादा लक्ष्यन्ते । यस्यां च सौध-शिखर-शायिनीनां पश्यन्मुखानि  
लुठति...मणिकुट्टिमेषु मृगलाञ्छनः...किं बहुना, यस्यां...निशितत्रिशूलदारितान्ध-  
कमहासुरः...त्रिपुरभस्मरजःकृताङ्गरागः...उत्कृष्टकैलास-वास-प्रीतिर्महाकाला-  
भिधानःस्वयं प्रतिवसति ।”

( अन्यत्र अवन्ति-विषय का भी वर्णन आता है । )

## आहुति : त्रिशत्तमा

राष्ट्रकूट राज्य (ई. ७२५. ८७५)

अरबों का आक्रमण :—हर्षवर्धन के समय के पश्चात् लगभग ७५ वर्ष तक उज्जयिनी के संबन्ध में कोई अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है । खलीफा हिशाम के समय में (ई. ७२४-४३) उसके एक सेनापति, जुनायद, की सिंधु-देश जीतने के लिए नियुक्ति की गयी थी । मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार उसने सिंधु-देश अपने अधिकार में लिया । उसके पश्चात् उसने “उज्जैन और बह-रिमद पर हमला किया, तथा बड़लमान् (=भिनमाल) एवं गुर्जर राजाओं को जीत लिया<sup>१</sup> ।” अरबों के द्वारा किए गए इसी आक्रमण को संभवतः पुलकेशिन् अवनिजनाश्रय के नवसारी ताम्रशासन—जो कि कलचुरि संवत् ३९०=ई. ७३८-३९ का है—द्वारा उल्लेख किया गया है । जैसे कि उस ताम्रशासन में लिखा है ताजीकों के सैन्य ने सैन्धव ( सिंधु-देश ) कच्छेल्ल ( कच्छ ), सौराष्ट्र, चावोटक (चापोत्कट, भिनमाल), मौर्य, गुर्जर आदि राष्ट्रों को जीत लिया था<sup>२</sup> । तब अव-निजनाश्रय ने, वे दाक्षिणापथ में आते ही, उनसे सफलतापूर्वक मुकाबला किया । ‘ताजीक’ शब्द प्राचीन संस्कृत में अरब जाति के संबन्ध में उपयोग किया जाता था । इस उल्लेख में सैन्धव या सिंधु-देश से ही वे आए, ऐसा स्पष्ट किया गया है । संभवतः यह अरब मुसलमानों का आक्रमण लगभग इ. ७३५ के समय का है, क्योंकि यह अभिलेख उस विजय को हाल की घटना के रूप में उल्लिखित करता है । इस ताम्रशासन में भी अरबों द्वारा उज्जयिनी जीतने का उल्लेख नहीं पाया जाता, और न मुसलमानों के इतिहासों में वह पाया जाता । संभवतः

१. देखिए लेखक का लेख ‘सम् अली गुर्जर सेटल्मेन्ट्स’ (जर्नल ऑफ गुजरात रीसर्च सोसायटी, भगवानलाल इन्द्रजी कॉम्मेमोरेशन् व्याल्यूम),
२. ‘दारितोदित-सैन्धव-कच्छेल्ल-सौराष्ट्र-चावोटक-मौर्य-गुर्जरादिराज्ये..... दाक्षिणापथ-प्रवेशे प्रथममेव...समरशिरसि विजिते ताजीकानीके’—पुलकेशिन् अवनिजनाश्रय का कलचुरि संवत् ३९० का अभिलेख ।



केवल हमला करने के पश्चात्, उस नगरी को जीतना असंभव प्रतीत होने से यह अरब सैन्य दक्षिणापथ चला गया । पश्चात् वहाँ भी उसकी हार हुई ।

कुछ विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि उज्जयिनी में मालवों के पश्चात् गुर्जरो का राज्य हुआ । यानी, ८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उज्जयिनी में गुर्जर-प्रतिहार राज्य करने लगे । जैसा कि उपरोक्त दोनों उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है गुर्जरो का राज्य उज्जयिनी के राज्य से भिन्न था । संभवतः उपरोक्त गुर्जरो का राज्य प्रतिहार वंश के अधीन था, एवं उनके प्रदेश को साधारणतया गुर्जरत्रा नाम से संबोधित किया जाता था ।

**उज्जयिनी का अश्वमेध :—**राष्ट्रकूट वंश के राजा दन्तिदुर्ग ( प्रथम ) ( ई. ७३५-७५७ ) के विषय में राष्ट्रकूट शासनों के एक श्लोक में लिखा हुआ है कि उसने उज्जयिनी में 'हिरण्यगर्भ' नामक एक महादान किया<sup>१</sup> । 'हिरण्य-गर्भ' का मतलब 'अग्नि' तथा 'सूर्य' भी है । संभव है कि 'सूर्य' से—अर्थात् पूर्ण संवत्सर से—सम्बन्धित 'अश्वमेध' याग से 'हिरण्यगर्भ' महादान का सम्बन्ध होगा । 'अश्वमेध' में १०० राजन्वियों की आवश्यकता रहती थी, एवं वह सार्वभौमत्व प्रस्थापित करता था । उक्त महादान-विषयक सन्दर्भ में भी राजन्वियों का उल्लेख है । केवल सुवर्णदान से इसका मतलब होता, तो राजन्वियों का उल्लेख आता ही नहीं । विक्रमादित्य की उज्जयिनी में 'लक्ष' या 'कोटि' दान को कोई अधिक मतलब नहीं था । इसी दान को अन्यत्र एक 'आश्चर्यभूत' दान बतलाया है<sup>२</sup> । यह दान उज्जयिनी में यह दान हुआ, इसका मतलब उज्जयिनी उस समय दन्तिदुर्ग

१. "हिरण्यगर्भं राजन्यैरुज्जयिन्यां यदासितम् ।

प्रतीतहारीकृतं येन गुर्जरेशादि राजकम् ॥"

—अमोघवर्ष का संज्ञान ताम्रशासन ( ए. इ., ग्रन्थ १८, पृ. २३५ व पश्चात् । )

२. 'दत्तं येनोज्जयिन्यामपि नृपतिमहादानमाश्चर्यभूतम् ।'—आ. स. वे. इ., ग्रंथ ५, पृ. ८७ पश्चात् ( महाराज शर्व-अमोघवर्ष का एलोरा अभिलेख )

राष्ट्रकूट के कब्जे में थी। संभवतः इसके राजा ने उसका आधिपत्य मान लिया था। इस महादान के—अश्वमेध के—समय पर गुर्जरत्रा के (प्रतीहार) राजा को दन्तिदुर्ग ने वाकई 'प्रतीहार' बना दिया, ऐसा भी उस श्लोक में बताया है। इसका मतलब क्या है? क्या गुर्जर (प्रतिहार) राजा ने इसका प्रतीहार होने का उस समय मान लिया था? या, जैसा कि प्रायः सभी विद्वानों का मत है, इसने इसके पूर्व गुर्जर राजा को जीत लिया था, अतः उसे इसका प्रतीहार बनना आवश्यक हुआ? वस्तुतः ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। कर्णाटक के चालुक्य सम्राट् को जीतकर राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग ने 'राजाधिराज' तथा 'परमेश्वर' उपाधि पहले ही धारण की थी। अन्य किसी भी राजा को जीतने का राजा दन्तिदुर्ग विषयक उल्लेख किसी भी श्लोक में नहीं पाया जाता। इससे यह स्पष्ट कि गुर्जर राजा—जिसका कुल-नाम प्रतीहार था—इसके राज्य की सीमा पर प्रतीहार जैसा रहा, यही उक्त श्लोक का मतितार्थ प्रतीत होता है। इसमें गुर्जर राजा के कुल-नाम पर 'श्लेष' करने के अतिरिक्त कवि का अन्य कोई मतलब नहीं दिखाई देता। अश्वमेध यज्ञ के साथ कुछ भूमिदान अवश्य किया जाता था। दन्तिदुर्ग की मा ने चार लक्ष गांवों में प्रति-ग्राम कुछ भूमि अपण की, यही संभवतः इस समय का 'आश्चर्यकारक' 'महादान' था<sup>२</sup>।

इस घटना का समय संभवतः लगभग ई. ७५० है। इसके पश्चात् बहुत समय के लिए अवन्ति-मण्डल के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती

१. 'यो वल्लभं सपदि दण्डबलेन जित्वा

राजाधिराजपरमेश्वरतामवाप ।'

—कावी ताम्रशासन.

२. 'मातृभक्तिः प्रतिग्रामं ग्राम-लक्षचतुष्टये ।

ददत्या भूप्रेदानानि यस्य मात्रा प्रकाशिता ॥'

—अकालवर्ष-कृष्णराज का भान्दक का ताम्रशासन (शक ६९४) (ए. ई.,

१४. १२३ पश्चात्.)



है। इसके पश्चात्, कुछ विद्वानों के मत में, सर्व-प्रथम उल्लेख संभवतः एक जैन ग्रन्थ में उपलब्ध होता है, जो कि शक संवत् ७०५ (यानी ई. ७८३) में रचाया गया था। जैन कवि जिनसेन द्वारा यह ग्रन्थ हरिवंश-पुराण उस समय लिखा गया था, जिस समय पर—उन विद्वानों के मत में—अवन्ति-मण्डल में गुर्जर-प्रतिहार राजा वत्सराज राज्य कर रहा था<sup>१</sup>। किंतु, कवि जिनसेन ने अपने समय की राजनैतिक स्थिति जिन दो श्लोकों, में बतायी है, उनको इकट्ठा पढ़ने पर, एवं उनका सरल अर्थ लगाने पर, दूसरी हि वस्तुस्थिति सामने नजर आती

१. हरिवंश-पुराण, ६६. ५२—५३:—

“शाकेष्वब्द-शतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेष्पूत्तरां

पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्ण-नृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ।

पूर्वा श्रीमदवन्तिभूभृति, नृपे वत्साधिराजेऽपरां

सौराणाधिमण्डले जययुते वीरे वराहेऽवति ॥

कल्याणैः परिवर्धमान-विपुलश्री-वर्धमाने पुरे

श्रीपार्श्वालय-नन्नराज-वसतौ पर्याप्तिशेषः पुरा ।”

इसके अनुसार राजकीय स्थिति निम्नरूप थी:—

(१) उत्तर दिशा—इन्द्रायुध, कान्यकुब्ज (कनौज) का राजा ।

(२) दक्षिण दिशा—श्रीवल्लभ=राष्ट्रकूट राजा श्री वल्लभ कृष्णराज-अकाल-वर्ष मान्यखेट में ।

(३) पूर्व दिशा—अवन्ति-नृप नन्नराज वर्धमानपुर में ।

(४) अपरा ( पश्चिम ) दिशा—वत्साधिराज ( वत्सराज ) गुर्जर-प्रतिहार ।

(५) सौर-मण्डल (सौराष्ट्र)—जय-वराह ।

१। यहाँ अवन्ति-भूभृत्, यानी अवन्ति देश का राजा के रूप में जिसका पहले श्लोक में उल्लेख है, उसी का उल्लेख दूसरे श्लोक में वर्धमानपुर का राजा नन्न-ज के रूप में किया गया है। वर्धमानपुर यही अब बदनावर नाम से ख्यात है। इस स्थान पर अभी तक ई. १० वीं से १३ वीं शताब्दी के हिंदु तथा जैन मंदिरों के अवशेष पाए जाते हैं।

त्रैराशिक युद्ध ( Tripartite Struggle ) :—भारत के इतिहास में ११ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'एकचक्र' साम्राज्य स्थापन करने के लिए तीन पक्ष दूसरे के साथ बहुत देर तक लड़ते रहे, यह एक विचित्र सी घटना है। इसका कुछ भाग मालवा से संबंध नहीं रखता है; किंतु कुछ अन्य भाग मालवा के इतिहास से साक्षात् संबंध है। उक्त तीन पक्ष थे बंगाल के पाल, गुर्जर देश के प्रतीहार राजे एवं महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट राजे। इनकी आपसी

इस युगम के प्रथम श्लोक की चर्चा-हेतु देखिए:—

- (१) सर्. रा. गो. भांडारकर, क. व., भाग ३, पृ. ८७;
- (२) डॉ. दे. रा. भांडारकर, ज. बाँ. बँ. रा. ए. सो. २१. २४१.
- (३) डॉ. अ. स. आलतेकर, रा. दे. टा., पृ. ३९ पश्चात्:
- (४) डॉ. वा. वि. मिराशी, स्ट. इ., भाग ४, पृ. १३७ पश्चात्।

पैठण, बगुन्ना तथा सुरत ताम्रशासनों में कृष्णराज की 'श्रीवल्लभ' उपाधि बतलायी गयी है। अतः (१) में उसी को इन श्लोक का श्रीवल्लभ माना गया है। फिर भी (३) तथा (४) में ध्रुव-निरूपम-जो 'कलिवल्लभ' था को—'श्रीवल्लभ' माना गया है। कर्कराज-सुवर्णवर्ष (गुजरात शाखा) के बड़ोदा ताम्रशासन में कृष्णराज-अकाल-वर्ष ने ही जय-वराह पर जो विजय पायी थी, उसका स्पष्ट उल्लेख है। (इं. अं., १२.१५९ पश्चात्):—'यो युद्धकण्डूति-गृहीतमुच्चैः शौर्योष्म-संदीपितमापतन्तं। महावराहं हरिणीचकार प्राज्यप्रभावः खलु राज-सिद्धः (सिंहः) ॥'



लड़ाइयों में मालव-देश जैसे छोटे-मोटे राज्य संभवतः कभी एक के पक्ष में, कभी दूसरे के, ऐसे होते रहे होंगे। मालवा भूमि तो गुर्जर एवं राष्ट्रकूटों के सैन्यों की युद्ध-भूमि बन गयी होगी। फिर भी इनमें से राष्ट्रकूट अधिक सामर्थ्यवान् होने के कारण, मालव-देश अधिकतर उन्हींके आधिपत्य में रहा। केवल अल्पावधियों के लिए वह गुर्जर-प्रतिहारों के आधिपत्य में चला गया था।

गौडराज धर्मपाल ने कान्यकुब्ज (कनौज) जीत लिया, एवं शीघ्र ही गुर्जर के राज्य पर आक्रमण किया। तब गुर्जरेश वत्सराज (वत्साधिराज) ने गौडराज को लीलया पराभूत किया।

उत्तर पर आक्रमण :—इसी काल-खण्ड में राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज (द्वितीय) के राज्यकाल में, जब दक्षिण से कांची, वेंगी आदि के राजे, तथा पूर्व से वंगराज भी राष्ट्रकूट साम्राज्य पर आक्रमण कर रहे थे, तब मालवेश ने भी राष्ट्रकूटों पर चढ़ाई की। उस समय इन सब का मुकाबला करके ध्रुव-निरुपम ने राष्ट्रकूट साम्राज्य की रक्षा की<sup>१</sup>।

वत्सराज ने गौडराज को जीतने के पश्चात् संभवतः थोड़े ही समय में ध्रुव-निरुपम ने—जब वह स्वयं राष्ट्रकूट गद्दी पर बैठ गया—मालवा के आगे बढ़कर मरुभूमि (या गुर्जरत्रा) पर हमला किया एवं वत्सराज को जीत लिया<sup>२</sup>।

१. ए. इ. भाग ३, पृ. १०७:—

“श्रीकाञ्चीपति-वंग-वेंगिक-युता ये मालवेशादयः

प्राज्यानानयति स्म तान्क्षितिभृतो यः प्रातिराज्यानपि ।”

२. बदनगुप्ते ताम्रशासन—

“हेला-स्वीकृत-गौडराज-कमला-मत्तं प्रविश्याचिरा-

दुन्मार्गे मरुमध्यमप्रतिबलैर्यो वत्सराजं बलैः ॥

गौडीयं शरदिन्दुपादधवलच्छत्रद्वयं केवलं

तस्मादाहृतवा [ननेन\*] ककुभां प्रान्ते स्थितं तत्क्षणात् ॥”

(लेखक का वाचन)

सके बाद और आगे बढ़कर उसने गंगा-यमुना के दुआब में गौडराज का श्वेत-  
उत्र भी छीन लिया<sup>१</sup> । इसी चिह्न के रूप में उस दुआब पर आधिपत्य प्रस्था-  
पित करके 'महाराजाधिराज परमेश्वर' पद (=सम्राट् की उपाधि) प्राप्त की<sup>२</sup> ।

उपरोक्त के अनुसार राष्ट्रकूटों का आधिपत्य मालव-देश पर प्रस्थापित हुआ ।  
उस समय पश्चात् गुर्जरों के प्रतीहार राजाओं ने कान्यकुब्ज के राजाओं पर  
क्रमण कर के वह नगरी अपने आधिपत्य में लायी । पश्चात् वत्सराज का पुत्र  
नागभट गुर्जर-प्रतीहार ने मालव देश पर भी हमला किया, एवं वह अपने आधि-  
पत्य में लाया, ऐसा दावा उसके वंशजों के शिलालेखों में पाया जाता है<sup>३</sup> । इसके  
बाद, ध्रुव की मृत्यु होने पर उसका पुत्र गोविन्द (तृतीय) ने गुर्जर राजा नाग-  
भट एवं चन्द्रगुप्त को पराभूत किया । तथा अपने सेवकों के द्वारा मालव,  
कोशल (=महाकोशल), डहल (=डमाला, चेदि) आदि देश अपने आधिपत्य में  
ए<sup>४</sup> । अन्यत्र भी गुर्जर तथा मालव इन दोनों को उसने जीत लिया था, ऐसा  
लेख पाया जाता है<sup>५</sup> । इन सब से यह संभव होता है कि नागभट के साथ

अमोघवर्ष का संजान ताम्रशासनः—

‘गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः ।

लक्ष्मीलालारविन्दानि श्वेतपत्राणि योऽहरत् ॥’

कर्कराज (द्वितीय) सुवर्णवर्ष का बड़ोदा ताम्रशासनः—‘यो गङ्गा-यमुने  
तरङ्ग-सुभगे गृहणन्परेभ्यः समं साक्षाच्चिह्ननिभेन चोत्तमपदं तत्प्राप्तवानै-  
श्वरम् ॥’

भोज-मिहिर का सागरताल शिलालेखः—

‘आनर्त-मालव-किरात-तुरुष्क-वत्स-

मत्स्यादि-[गोप]गिरि-दुर्ग-हठाप[हा]रैः ।’ (लेखक का वाचन)

अमोघवर्ष की संजान-प्रशस्तिः—

‘स-कोशल-कलिङ्ग-वेङ्गि-डहलाडूकान्मालवान् विलभ्य निजसेवकैः……।’

सिरूर शिलालेखः— केरल-मालव-शौटा(रा)न् सगुर्जरान्……’



का चन्द्रगुप्त उस समय मालव-देश का राजा था ।

इस आक्रमक नीति के फल-स्वरूप गुर्जर राजा तो भाग गया, किंतु मालव राजा ने नीति से काम लिया एवं गोविन्दराज की शरण में जाकर अपनी जान बचायी<sup>१</sup> । राष्ट्रकूटों के पठारी स्तम्भ लेख के अनुसार कर्कराज राष्ट्रकूट ने नागा वलोक या नागभट की शीघ्रतर पराभूत करके वापिस लौटाया<sup>२</sup> । राष्ट्रकूटों की सत्ता बलिष्ठ होने से, इसके पश्चात् मालव-राजा ने उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई की नहीं । इतना ही नहीं, तो गोविन्दराज (तृतीय) का पुत्र शर्व-अमोघवर्ष को सम्राट् के रूप उचित संभावना की<sup>३</sup> । इसके कारण तथा प्रायः अन्य कारणों से गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् मालव-राजा पर रुष्ट हुआ । उस समय गुजरात के राष्ट्रकूट शाखा के कर्कराज ने गुर्जरेश को पराभूत कर के मालवराजा की रक्षा की<sup>४</sup> ।

#### १. बदनगुप्ते ताम्रशासनः—

सन्ध्यायाशु शिलीमुखान्स्वसमयाद्वाणासनस्योपरि  
प्राप्तं वर्धितबन्धुजीवविभवं पद्माभिवृद्धचन्वितम् ।  
सर्वक्षत्रमुदीक्ष्य यं शरदृतुं पर्जन्यवद्गुर्जरो  
नष्टःकापि भयात्तथापि समयं स्वप्नेऽप्यपश्यन्त्यथा ॥  
यत्पादानतिमात्रमेकशरणान्यालोक्य लक्ष्मीधिया  
दुरान्मालव-नायको नयपरो यत्त्राणबद्धाञ्जलिः ।”

२. ए. इ., ग्रन्थ ६. पृ. २४८ पश्चात् । आलतेकर, रा. दे. टा., पृ. ८२-८३.

#### ३. सिरूर शिलाशासनः—

‘बङ्गाङ्गमगधमालववेङ्गीशैरचितो.....’

#### ४. कर्कराज का बड़ोदा ताम्रशासनः—

‘गोडेन्द्र-वङ्गपति-निर्जयदुविदग्ध—  
सद्गूर्जरेश्वर-दिगर्गलतां च यस्य ।  
नीत्वा भुजं विहृत-मालव-रक्षणार्थं  
स्वामी तथाऽन्यमपि राज्यफलानि भुङ्क्ते ॥’

इतिहास व पुरातत्त्व

(१८३)

गुजरात के राष्ट्रकूटों के राजा ध्रुव ने ई. ८६७ के पूर्व मिहिर-भोज को पराजित किया<sup>३</sup>। इसके बाद परिस्थिति में बदल होकर धीरे-धीरे मालवा गुर्जर-प्रतीहारों के हाथों में एवं, तत्पश्चात् परमारों के हाथों में चला गया।

३. संज्ञान ताम्रलेख —

“धामव्याप्तदिगन्तरोऽपि मिहिरः सद्रश्यवाहान्वित”।



आहुतिः एकत्रिंशत्तमा

गुर्जरो का आधिपत्य (ई. ८७५-६३०)

राष्ट्रकूट-गुर्जर-युद्धः—मान्यखेट के राष्ट्रकूट सम्राट् एवं कान्यकुब्ज के गुर्जर प्रतिहार सम्राट् इनमें जो शत-सांवत्सरिक युद्ध चला, उसमें कभी एक पक्ष की तो कभी दूसरे पक्ष की विजय होती थी। विजय-श्री की माला के साथ मालवा भी कभी एक के आधिपत्य में तो कभी अन्य के हाथों में चला जाया करता था।

सम्राट् अमोघवर्ष के पश्चात् राष्ट्रकूट राजवंश की सत्ता अधिक शक्तिशाली नहीं रही। फलस्वरूप ई. ८९५ के कुछ पूर्व गुर्जर सम्राट् ने न केवल मालव-देश अपने आधिपत्य में लाया बल्कि लाट देश पर भी कुछ समय के लिए अधिकार क लिया था, ऐसे राष्ट्रकूटों के कुछ अभिलेखों से प्रतीत होता है। गोविन्दराज के सांगली शासन में एक व्यर्थी श्लोक पाया जाता है, जिससे यह विदित होता है कि उसके शत्रुओं से लाट देश में खेटक-मण्डल उसने छुडवाया<sup>१</sup>। इसके पश्चात् संभवतः गुजरात शाखा के राजा कृष्ण ने शत्रु का पीछा कर के उज्जयिनी में शत्रुओं पर विजय पायी,—जब (ई. ८९५ के बगुम्रा ताम्रशासन के अनुसार) सम्राट् 'वल्लभ' (राष्ट्रकूट अधिपति) देखता रह गया<sup>२</sup>। राष्ट्रकूट ताम्रशासनों में पाए गए अन्य एक व्यर्थी श्लोक में संभवतः यह सूचित किया गया है कि इन गुर्जर राजाओं में—जिनके साथ मालवा में युद्ध छिड़ गया—एक का नाम इन्द्र<sup>३</sup> था एवं दूसरा 'चाप' राजा था<sup>३</sup>। लेखक के मत में उसमें क्रमशः सम्राट् महेन्द्रपाल

१. 'तस्मादकालवर्षो नृपतिरभूद्यत्पराक्रमव्रतैः ।

सार्धं समण्डलाग्रं खेटकमहितैः परित्यक्तम् ॥'

२. 'येन खड्ग-द्वितीयेन वल्लभनृपस्य पश्यतः ।

उज्जयिन्यां रिपूञ्जित्वा दूरमुत्तम्भितं यशः ॥

३. इन्द्र (तृतीय) का बगुम्रा ताम्रशासन (ई. ९६५)—

“धारासारिणि सेन्द्रचापवलये यस्येत्यमब्दागमे ।

गर्जद्गुर्जर-संगर-व्यतिकरे जीर्णो जनःशंसति ॥”

तथा चापोत्कट शाखा के गुर्जर राजा का उल्लेख हैं । लेखक के इस तर्क के संबन्ध में अन्यत्र भी पुष्टि मिलती है । जूनागढ़ के पास गुर्जर सम्राट् 'परममहाराज-महाराजाधिराज-परमेश्वर' महेन्द्रायुध-देव के, ई. ८९३ तथा ८९९ के दो अभिलेख उपलब्ध हुए हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि इस काल में गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् महेन्द्रपाल का सामर्थ्य बढ़ गया था, एवं काठियावाड़ तक सारा प्रदेश उसके साम्राज्य के अन्तर्गत हो चुका था<sup>१</sup> । उक्त दो शिलालेखों के वर्षों के बीच ही लाट-देश के कृष्ण राष्ट्रकूट के विजय में उज्जयिनी की लड़ाई जीतने का उल्लेख है । संभवतः यह राष्ट्रकूट सामन्त, उज्जयिनी की लड़ाई में 'जीत' होने पर शीघ्र ही लाट देश को वापिस लौट गया था ।

जैन कवि गुणचन्द्र के उत्तर-पुराण के अन्त में, उसकी समाप्ति की तिथि बतलाते हुए उसने लिखा है, कि वल्लभ-राजा कृष्ण (द्वितीय) राष्ट्रकूट के हाथी गङ्गा नदी का पानी बार-बार पीते थे । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के समय में भी—ई. ९०८-९०९ के करीब—राष्ट्रकूटों की सत्ता फिर बढ़ गयी, एवं उनका सैन्य कभी-कभी गङ्गा नदी तक हमले किया करता था । यह असम्भव नहीं है, किन्तु अन्य प्रमाण के अभाव में यह सही नहीं माना जा सकता; तथा इसमें सत्य कथन से "प्रशस्ति" ही अधिक दिखाई देती है<sup>२</sup> ।

कर्णाटक के महाकवि पम्पा के काव्य में बतलाया गया है कि राष्ट्रकूटों के सामन्त नरसिंह ने गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् महीपाल पर जब हमला किया, तब वह विश्राम न लेते हुए भागता हुआ कहीं चला गया, जबकि नरसिंह के घोड़े गङ्गा-नदी का पानी पी रहे थे<sup>३</sup> । महाकवि पम्पा अपने आश्रयदाता सामन्त नरसिंह

१. त्रिपाठी, हि. क. १९३७, पृ. २५०-५१.

२. "यस्योत्तुङ्गमतङ्गजा निजमदस्त्रोतस्विनीसंगमाद्गाङ्गं वारि कलङ्कितं पटु मुहुः पीत्वाप्यगच्छत्तृपाम् ॥"

देखिए आलतेकर, रा. दे. टा., पृ. ९७.

३. वहीं, पृ. १०२., १०८-१०९; आदि,



की अवास्तव स्तुति करता है यह डॉ. आलतेकर महोदय ने भी माना हुआ है। फिर भी संभवतः महोदय के साम्राज्य पर किए गए आक्रमण में सामन्त नरसिंह के साथ राष्ट्रकूट इन्द्र (तृतीय) सम्राट् भी स्वयं रहा होगा। इसका प्रमाण सम्भवत एक राष्ट्रकूट शासन में पा जाता है।

इसके अनुसार लगभग ई. ९१५ में इन्द्र (तृतीय) ने कालप्रिय (कालपी) के मैदान में एक धमासान युद्ध में गुर्जरों पर विजय पायी एवं वह यमुना की ओर बढ़ गया। तत्पश्चात् प्रतीहारों की राजधानी 'महोदय' (=१ कनौज, २ उन्नतिशील) को इस प्रकार उध्वस्त किया कि वह 'कुशस्थल' (=१ कनौज, २ जिस पर घास बढ़ गया है ऐसा स्थान) बन गया<sup>१</sup>। इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय मालवा राष्ट्रकूट सम्राट् के अधीन था। इसके पश्चात् अन्य एक उल्लेख गुर्जर प्रतीहारों का एक सामर्थ्यवान् सामन्त यशोवर्मन् चन्देल के विषय में पाया जाता है, कि वह मालवराजा को काल जैसा था<sup>२</sup>। इस उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस काल-खण्ड में मालवा राजा संभवतः गुर्जरों के अधीन नहीं था एवं सम्भवतः इसके पश्चात् वह फिर गुर्जरों के अधीन हो गया।

१. ए. इ., ग्रन्थ ७, पृ. ३६ पश्चात्:—

‘यन्माद्यद्विपघातदन्तविषमं कालप्रिय-प्राङ्गणं  
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी ।  
येनेदं च महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं  
नाम्नाऽद्यापि जने कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते ॥’

२. “गौडक्रीडालतासिस्तुलितखशबलःकोशलः कोशलानां

नश्यत्कश्मीरवीरः शिथिलितमिथिलः कालवन्मालवानाम् ।”

खजुराहो शिलालेख। इसके अर्थ के संबन्ध में अब देखिए लेखक की पुस्तक ‘स्पार्टलाइट् ऑन् दि हिस्ट्री ऑफ दि चन्देलज्’।

इसके अतिरिक्त, ई. ९४२-९४६ के प्रतापगढ (राजस्थान) के शिलालेखों में उपलब्ध जानकारी से भी यह प्रमाणित होता है, कि इस काल-खण्ड में मालवा गुर्जर-प्रतिहारों के ही आधिपत्य में रहा। जैसा कि उनमें लिखा है, उस समय तत्कालीन गुर्जर-प्रतीहार 'परमेश्वर' (सम्राट्) के लिए बलाधिकृत (=बलाध्यक्ष) श्रीशर्मन् मण्डपिका (=मण्डप-दुर्ग या माण्डू) में देखभाल कर रहा था, एवं उज्जयिनी में महासामन्त महादण्डनायक श्रीमाधव सम्भवतः अखिल मालवदेश पर शासन कर रहा था<sup>१</sup>। अभिलेखों में निर्दिष्ट सम्राट् प्रायः विनायक-पालदेव या उसका पुत्र महेन्द्रपाल (द्वितीय) होगा।

इसके पश्चात् २५ वर्ष कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इस काल-खण्ड में कुछ समय के लिए मालवा में गुर्जर-प्रतीहारों का ही आधिपत्य रहा होगा। इसके पश्चात् अल्प-काल के लिए यहाँ हूण वंश के राजा, जो कि पहले गुर्जरों के सामन्त थे, राज्य करने लगे<sup>२</sup>।

१. देखिए लेखक की पुस्तक—'माण्डू: एक झलक'

२. देखिए आहुति द्वात्रिंशत्तमा।



(१८८)

उज्जयिनी

आहुतिः द्वाविंशत्तमा

परमार राज्य (ई. ६५०-१०००)<sup>१</sup>।

श्रीहर्ष-सीयक-सीयाक (ई. ६४८-६७२):—परमार वंश के सर्वप्रथम ताम्र-पत्र से—जो कि विक्रम संवत् १००५ (=ई. ६४८) में श्रीहर्ष या सीयक द्वारा प्रसारित किया गया था—विदित होता है कि यह राजा उस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण-अकालवर्ष के सामन्त के रूप में 'खेटक-मण्डल' (खेडा जिला) पर राज्य कर रहा था। वह अपने को 'खेटक-मण्डलाधिपति' कहलाता है। साथ-साथ अकालवर्ष वल्लभ-नरेन्द्र का राज्य उस समय चल रहा था, यह उस ताम्रशासन में स्पष्टतया निर्दिष्ट करता है<sup>२</sup>।

संभवतः लगभग ई. ६६७ में कृष्ण-अकालवर्ष की मृत्यु हुई। उसके पश्चात्, ई. ९६८ के प्रारम्भ में उसका भाई खोट्टिग-देव राष्ट्रकूट सम्राटों की गद्दी पर बैठ गया। विक्रम संवत् १०२६ (=ई. ६६६) के एक ताम्रशासन से विदित होता है कि श्रीहर्ष या सीयक उस समय खेटक-मण्डल में स्वतन्त्र राजा बन चुका था<sup>३</sup>। संभवतः उसका नये राष्ट्रकूट सम्राट् खोट्टिगदेव से प्रारम्भ से ही बन नहीं पाया। फलस्वरूप—जैसा ही उदयपुर के प्रशस्ति से विदित होता है,—

१. श्रीमुञ्जदेव के अन्त तक। इसके बाद के इतिहास के लिए देखिए लेखक की पुस्तक, "माण्डू: एक झलक"
२. देखिए हरसोला ताम्रलेख:—“परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमदमोघवर्ष-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद-कालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ-श्रीवल्लभ-नरेन्द्र-पादानाम्। तस्मिन् कुले [शासति सति\*]...वर्षप-राजेति नृपः.....अभूदनु वैरिसिंहः।.....नृपः श्रीसीयकस्तस्मात्।”

राष्ट्रकूट सम्राटों के इसमें उपलब्ध विशेषण अकालवर्ष के देवली तथा क-हाड ताम्रशासन—जो ई. ६४० तथा ६६७ के हैं—में पाए जाते हैं।

३. ए. ई., ग्रन्थ १६, पृ. १७७ पश्चात्।

उसने खोट्टिगदेव पर हमला करके उसकी लक्ष्मी (यानी राज्यलक्ष्मी) छीन ली<sup>१</sup>। यह घटना संभवतः ई. ९७२ में हुई। क्योंकि विक्रम संवत् १०२९ (=ई. ९७२) में धनपाल ने अपने प्राकृत महाकाव्य 'पाइअलच्छी' (=प्राकृतलक्ष्मी) में लिखा है कि वह काव्य उसने विक्रम संवत् १०२६ (=ई. ९७२) में लिखा, जब मालव-नरेन्द्र (=मालवा का राजा, परमार श्रीहर्षदेव)ने (राष्ट्रकूटों की राजधानी) मान्यखेट लूट ली<sup>२</sup>।

उपर्युक्त से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

- (१) ई. ९७२ में श्रीहर्षदेव केवल 'खेटक-मण्डल' का 'अधिपति' रहा नहीं था, बल्कि वह 'मालव-नरेन्द्र' बन गया था।
- (२) संभवतः यह घटना ई. ९६७ (अकालवर्ष-कृष्ण की मृत्यु की तिथि) के पश्चात् हुई।

यह मालव- का राज्य उसने हूण-वंश के राजाओं से छीन कर ले लिया था, ऐसा मोडी (जिला मन्दसौर) के शिव-मन्दिर में प्राप्त एक शिलालेख से विदित होता है<sup>३</sup>। नवसाहसांक-चरित से भी इस बात की पुष्टि होती है कि राजा सीयक (श्रीहर्ष) ने हूणों को पराजित किया था<sup>४</sup>। आवरा (मन्दसौर जिला) का प्रदेश हूण-राज्य के अन्तर्गत इसके थोड़े पहले ही था, यह भी एक अभिलेख से

१. ए. इ., ग्रन्थ १, पृ २३५:—"श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मीं जग्राह यो युधि....।"
२. पाइअलच्छी; १६८:—  
"विक्रमकालस्य गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि । मालवनरिदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥"
३. "हूणानां रुधिराक्त-मालव-महीं रक्तोदकेनाजितां सीयाकोबु(बु)भुजे[S]-  
युतानि सुमट्वा[तानि\*]....."
४. नवसाहसाङ्कचरितम्:—  
"अकङ्कणमकेयूरमनूपुरमखेलम् ।  
हूणावरोधवैधव्यं दीक्षादानं व्यधत्त सः ॥"



प्रमाणित होता है<sup>१</sup> ।

उपर्युक्त से यह भी संभव होता है कि खेड़ा जिला का प्रदेश तथा मालवा अधीन होने पर परमार राजा श्रीहर्ष ने, कृष्ण-अकालवर्ष की मृत्यु के पश्चात्, नये राज्य में, राष्ट्रकूटों का आधिपत्य माना नहीं, जिसके कारण उपरोक्त संघर्ष होकर अन्त में उसी की जीत हुई ।

श्रीमुञ्ज-वाक्पतिराज (ई. ६४७-६६७):—श्रीहर्ष ( सीयक ) के समय में परमार-राज्य की राजधानी उज्जयिनी ही रही होगी । श्रीहर्ष को मालवेन्द्र कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि उसकी राजधानी मालव-देश की सब से बड़ी नगरी ही होगी । उज्जयिनी ही उस समय की सबसे बड़ी नगरी थी । खेटक-मण्डल से हूण-मण्डल ( आवरा के आसपास का प्रदेश ) इसके आधिपत्य में होने के कारण, इतने विशाल प्रदेश पर आधिपत्य चलाने हेतु यही केन्द्र-स्थान की सब से बड़ी नगरी भी थी । इसके पश्चात् वाक्पतिराज-मुञ्ज ने परमारों की राजगद्दी उज्जयिनी की राजधानी में ही सम्हाल ली ।

उज्जयिनी के साहसाङ्क-विक्रमादित्य की विद्वत्सभा एवं उसके कवित्व-औदार्य आदि गुण उसके पश्चात् उज्जयिनी में या उसके परिसर में पुनर्जीवित करने का कार्य परमार-वंश के राजाओं ने ही सफलता-पूर्वक किया । इनमें 'कविमित्र' 'वाक्पतिराज' श्रीमुञ्ज अग्रगण्य है । उज्जयिनी का यही अन्तिम बड़ा राजा । इसकी मृत्यु के पश्चात् परमारों की राजधानी धारा (धार) चली गयी ।

उज्जयिनी से सम्बन्ध :—श्रीमुञ्ज-वाक्पतिराजदेव का एक ताम्रशासन उज्जयिनी से पाया गया, तथा अन्य दो उज्जयिनी के निकट के गांवरी (जागीर नरवर) नामक गांव में पाए गए<sup>२</sup> । इससे भी यह प्रमाणित होता है कि वह

१. ए. इ., ग्रन्थ २३, पृ. १०८:—“यथा हूणमण्डले आवरकभोग-सम्ब(म्ब) द्व.....”आवरा का पूर्व का नाम 'आवरक' था; 'अपरा' नहीं था, जैसा कि डॉ. त्रिवेदी महोदय ने प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है ।

२. ए. इ., २३. ११२ —“अवन्तीमण्डले श्रीमदुज्जयिनी-विषय-पूर्वपथक-सम्बध्यमान मद्रुक-भुक्ती ।”

प्रायः उज्जयिनी में ही रहा करता था । मुञ्ज के समय में तथा पश्चात् उसे उज्जयिनी के अधिपति के रूप में ही उल्लेख किए गए हैं; किन्तु कुछ कवियों ने थोड़े ही पश्चात् 'धारा' को परमारों की 'कुल-राजधानी' कहा है<sup>१</sup> । अतः यह असम्भव नहीं है कि इसी काल में धारा में परमारों की दूसरी राजधानी भी बन गयी ।

इसी प्रकार, पञ्चगुप्त के नवसांक-चरित से यह भी विदित होता है कि सिधु-राज (श्रीमुञ्ज-वाक्पतिदेव का छोटा भाई) के समय में भी कुछ काल के लिए उज्जयिनी—जिसका भार श्रीमुञ्ज ने उसकी भुजाओं पर रखा था—परमारों की राजधानी रही<sup>२</sup>।

पञ्चगुप्त :— श्रीमुञ्ज की कवि-सभा में पञ्चगुप्त या परिमल, धनपाल, धनिक आदि कई कवि थे । परिमल का एक श्लोक औचित्य-विचार-चर्चा में क्षेमेन्द्र द्वारा उद्धृत किया गया है, जिसमें श्रीमुञ्ज "उज्जयिनी भुजङ्ग" कह गया है<sup>३</sup> । क्षेमेन्द्र ने उसका एक अन्य श्लोक सुवृत्ततिलक में उद्धृत किया है, जिसमें श्री मुञ्ज को 'अवन्ति-भर्ता' कहा है<sup>४</sup> । इसमें श्रीमुञ्ज काव्य में किस प्रकार रुचि लेता था यह भी निर्दिष्ट है । नवसाहकाङ्क-चरित नामक महा-काव्य में पञ्चगुप्त (परिमल) ने श्रीमुञ्जदेव को "सरस्वती-कल्पलतैककन्द" (यानी

१. विक्रमाङ्कदेवचरितम्, ८. ११४—'अमुष्य धारा कुल-राजधानी ।' तथा नवसाहसाङ्कचरितम् १. ९०—'धारेति नाम्ना कुलराजधानी ॥'
२. "पुरं कालक्रमात्तेन प्रस्थितेनाम्बिकापतेः । मौर्वी-किणाङ्कवत्तस्य पृथ्वी दोष्णि निवेशिता ॥ प्रशास्ति परितो विश्वमुज्जयिन्यां पुरि स्थितः । अयं ययातिमान्धातृदुष्यन्तभरतोपमः ॥" नवसाहसांकचरितम्-६
३. न तु यथा परिमल :—"हा देवोजयिनी-भुजङ्ग युवति-प्रत्यक्ष-कन्दर्प हा ।"
४. यथा परिमलस्य—"....कोऽवन्तिभर्तुरपरो रसनिर्भरासु पृथ्वीपतिः सुकवि-सूक्तिषु बद्धभावः॥"



वाग्देवी के कल्पलता का एक गुच्छ) ही मान है<sup>१</sup>। उसने यह भी मान लिया है कि उसकी कृपा से वह स्वयं “अन्य कवीद्रों के लिये अलभ्य ऐसे राजमार्ग” पर चलने लगा।

**घनपाल :—**तिलक-मञ्जरी का कर्ता कवि घनपाल ने भी बताया है कि “सर्व विद्याओं का सागर” श्री मुञ्ज के द्वारा वह सभा में “सरस्वती” कहलाया गया। संभवतः ‘कवि-सभा’ भी ‘राज-सभा’ के अन्तर्गत थी<sup>२</sup>।

**हलायुध :—**इसके निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं :—

- (१) कविरहस्य, या कविगुप्त, या अपशब्दाख्य काव्य।
- (२) मृत-सञ्जीवनी टीका—जो कि पिङ्गल-छन्दःसूत्र की टीका है।
- (३) अभिधान-रत्नमाला।
- (४) अमरेश्वर मंदिर (मान्धाता) के शिलालेख में उपलब्ध हलायुध-स्तोत।

जैसा कि महामहोपाध्याय पां. वा. काणे महोदय ने बहुत पूर्व में दिखलाया है, यह पहले अकाल वर्ष—कृष्ण के दरबार में था, जैसा कि कविरहस्य की कुछ कविताओं से ज्ञात होता है। दूसरे ग्रंथ में (मृतसञ्जीवनी में) उसने वाक्यति-राज मुञ्जविषयक कुछ श्लोक लिखे हुए हैं,<sup>३</sup> जो कि घनिक के दशरूपावलोक आदि में

१. नवसाहसार्द्ध-चरितम्—१.७ :—

‘सरस्वतीकल्पलतैककन्दं वन्दामहे वाक्पति-राज-देवम् । यस्य प्रसादाद्वयम-  
प्यनन्य-कवीन्द्रचीर्णे पथि संचराम् : ॥७॥’

२. ‘अक्षुण्णोऽपि विविक्त सूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना  
श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥’

३. “स जयति वाक्पतिराजः सकलार्थि-मनोरथ-कल्पतरुः ।  
प्रत्यर्थिभूत-पार्थिवलक्ष्मीहठहरणदुर्ललितः ॥”

“जयति भुवनक वीरः सीरायुधतुलित-विपुल-बलविभवः  
अनवरत-वित्त-वितरण-निर्जित-चम्पाधिपो मुञ्जः ॥”

अन्तिम श्लोक घनिक के दशरूपावलोक में उद्धृत किया गया है।

पाए जाते हैं। म. म. पां. वा. काणे के मत में यह असम्भव नहीं है कि जो कवि पहले राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के दरबार में था, वह पश्चात् उज्जयिनी चला गया एवं मुञ्ज-वाक्पतिराज की सभा में शोभायमान हुआ<sup>१</sup>। अमरेश्वर मंदिर मान्धाता में प्राप्त हलायुध-स्तोत्र—जो इसी कवि ने रचाया तथा जो वहाँ वि. संवत् ११२० के पहले लिखा गया—प्रकाशित करते समय डॉ. एन्. पी. चक्रवर्ति ने वही कल्पना दुहरायी है, कि हलायुध-स्तोत्र का रचयिता कृष्ण राष्ट्रकूट की राज-सभा से—संभवतः उसकी मृत्यु होने के बाद—उज्जयिनी के मुञ्जराज के दरबार में चला गया।

श्रीमुञ्जदेव का चरित्र 'कारिका-भूषण, नामक एक काव्य में लिखा गया था। वह काव्य किस कवि ने लिखा था, यह विदित नहीं होता है, फिर भी वह एक माना हुआ काव्य था ऐसा दिखाई देता है। क्योंकि एक श्लोक के अनुसार, श्रीराम की कीर्ति रामायण में एवं युधिष्ठिर की महाभारत में जिस प्रकार वर्णित थी, उसी प्रकार श्रीमुञ्जदेव की उसमें वर्णित थी<sup>३</sup>।

कवि-बान्धव-मुञ्जः—'नवसाहसार्द्धचरित' नामक काव्य में पद्मगुप्त (परि-मल) ने वाक्पतिराज-देव को बारबार 'कवि-बान्धव' या 'कविमित्र' शब्दों से वर्णित किया है। पद्मगुप्त ने उसमें यह भी बताया है कि वह स्वयं काव्य में निपुण हुआ, इसका महत्त्व का कारण 'कवि-बान्धव' को सुक्तियों का अमृत रस

१. काणे, हिस्टरी ऑफ़ धर्मशास्त्र, ग्रन्थ १, पृ. २६८.

२. ए. इ., ग्रन्थ २५, पृ. १८३ पश्चात्।

३. "श्रीरामस्य युधिष्ठिरस्य च यथा रामायणे भारते कीर्तिर्भाति यथा च मुञ्जनृपतेः सा कारिकाभूषणे।

श्रीमद्वन्यमिताक्षरादिषु यथा श्रीवृद्धभर्तुस्तथा

—माण्डारकर संग्रहस्थ विश्वादर्श की पाण्डुलिपि (काणे, हिस्टरी ऑफ़ धर्मशास्त्र, ग्रंथ १ पृ. २९१)



ही था<sup>१</sup> ।

मुञ्जराज के इसी गुण के उपलक्ष में कवि विह्वल ने विक्रमाङ्कदेव-चरितम् नामक महाकाव्य में, अपने चालुक्य आश्रयदाता की प्रशंसा करते समय, मुञ्जराज का उल्लेख कर के अपना आश्रय दाता उससे भी अधिक 'कवि बान्धव' था ऐसे बतलाया है<sup>२</sup> ।

श्रीमुञ्जदेव का अन्त :—श्री हर्ष-सीयक ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्य-खेट (मालखेट) को लूट लिया (ई. ९७२-७३) । इसके पश्चात् दो वर्षों के अन्दर ही चालुक्य राजा तैलप (दूसरा) ने राष्ट्रकूटों के अन्तिम राजा कर्क (दूसरा) को पराभूत किया एवं उसका राज्य छीन लिया (ई. ९७३-७४) । इसके पश्चात्

१. 'दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रा—

मदत्त यां वाक्पतिराजदेवः ।

तस्यानुजन्मा कविवान्धवस्य

भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः ॥

न्यस्तानि यानि मयि सूक्ति-सुधापृषन्ति

देवेन तेन कतिचित्कविवान्धवेन ।....

अतीते विक्रमादित्ये गतेऽस्तं शातवाहने ।

कविमित्रे विशश्राम यस्मिन्देवी सरस्वती ।'

साहसांक के समान कोई अन्य कवि-मित्र हुआ नहीं, ऐसा कवि सोड़ढल ने लिखा हुआ है । देखिए उपर पृ. १४६ । पद्मगुप्त के अनुसार श्रीमुञ्ज भी कविमित्र था ।

२. विक्रमाङ्कदेवचरितम् ११.१४४ :—

“मुञ्जस्य गुञ्जासमतापि नास्ति

का योग्यता भोजमहीभुजश्च ।

लब्धे कवीन्द्रैः कविवान्धवेऽस्मि—

न्दासीकृता पादतलेषु लक्ष्मीः ॥”

बीस-एकीस वर्ष अपने राज्य की व्यवस्था ठीक-ठीक करने के पश्चात् ई. ९६५ के प्रारम्भ में श्रीमुञ्जदेव पर आक्रमण किया। श्रीमुञ्जदेव दो वर्ष युद्ध करने के पश्चात्, एक समय अपने अमात्य की सलाह न मानते हुए नर्मदा नदी पार करके तैलप पर हमला करने निकला। फलस्वरूप वह कैद किया गया (ई. ९६७)।

इस प्रकार वह अमात्य की सलाह न मानते हुए कैद किया गया। यह घटना वत्सराज उदयन की कथा जैसी हुई। स्वयं महाकवि होने के कारण उसे वह कहानी अच्छी तरह विदित थी। उसको छुड़ाने के लिए उसके भतीजे सुविख्यात भोजदेव ने एक योजना भी बनायी थी। वह सफल भी हो जाती। किन्तु, उसकी सेवा के लिए, तैलप ने अपनी अनौरस बहन तैनात कर दी थी; उसे, दुर्भाग्यवश श्रीमुञ्जदेव दूसरी 'वासवदत्ता' ही समझ बैठ। उसे उसने व्युत्पन्न-धी होते हुए भी, अपनी एवं भोजदेव की योजना बतलायी।

उस औरत ने वह सारी योजना तैलप को बतला दी। फलस्वरूप इस "सरस्वती-कल्पलतैककंद" को तैलप चालुक्य ने बहुत ही बुरी रीति से अपमानित करके, मरवा डाला। इस विषयक व्यौरेवार जानकारी राजवल्लभ का भोजचरित, मेरुतुङ्ग का भोजप्रबन्ध, विह्वल का विक्रमाङ्क-देव-चरित, आदि ग्रंथों में, तथा राष्ट्रकूटों के अभिलेखों में पायी जाती है।

वत्सराज-उदयन की कहानी से उज्जयिनी का वास्तविक प्राचीन इतिहास प्रारम्भ होता है। श्रीमुञ्जदेव की शोकान्तक कथा से उस इतिहास का अन्त होता है।

- 
१. "हूण-प्राणहरः प्रताप-दहनो यात्रात्रसन्मारवः  
चैद्यच्छेद्यखिलः क्षमाजनयव्युत्पन्नधीरुत्पलः।....  
कारागारनिवेशितः कविवृषा यं वर्णयन्धूर्णते।"



(१९६)

उज्जयिनी

आहुतिः त्रयस्त्रिंशत्तमा

वेधशाला

उज्जयिनी—प्राचीन भारत की ग्रीन्विच् :—आधुनिक जगत् में रेखांशों की मध्य-रेखा में ग्रीन्विच् (Greenwich) नामक इंग्लैंड का एक शहर माना जाता है। प्राचीन भारत में रेखांशों की गणना करते समय, उज्जयिनी पर रेखांशों की मध्य-रेखा मानी जाती थी। जिस प्रकार ग्रीन्विच् में ई. १६७५ में एक राज-मान्य नक्षत्र-परीक्षण-केन्द्र<sup>१</sup> खोला गया, और इस वेधशाला से उसको महत्त्व प्राप्त हुआ, उसी प्रकार—संभवतः विक्रमादित्य के समय में—उज्जयिनी में भी एक राजमान्य वेधशाला बनी और इस नगरी को विशेष कारण महत्त्व प्राप्त हुआ।

मध्य-रेखा :—इस विषयक सर्वप्रथम प्रमाण पुलिश सिद्धान्त में मिलता है। पुलिश-सिद्धान्त यह पंच-सिद्धान्तों में पहला सिद्धान्त है<sup>२</sup>। उसमें लिखा हुआ है कि यवन देश से उज्जयिनी की 'नाडी' सात घटी बीस पल, एवं वाराणसी की 'नाडी' नौ घटी, चर है<sup>३</sup>। वराह-मिहिर के 'पञ्च-सिद्धान्तिका' नामक ग्रंथ से ऐसा प्रतीत होता है कि लाटाचार्य नामक एक प्राचीन ज्योतिष-वेत्ता को भी पुलिश तथा रोमक दोनों सिद्धान्त ज्ञात थे, एवं उसने उनकी व्याख्या भी की थी। कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का निवासी होते हुए भी (प्रथम) आर्य-भट ने अपने आर्यभटीय में लंका (तथा उज्जयिनी) की रेखांश को मूल-

### 1. Royal observatory.

२ संभवतः यह 'Polis' (उच्चारण 'पुलिस्', अर्थ 'नगर') इस ग्रीक शब्द से सम्बन्धित है। यह अँलेक्झेंड्रिया 'पुलिस्' से, तथा रोमक सिद्धान्त 'रोम' से सम्बन्धित होगा।

३. "यवनाच्चरजा नाड्यः सप्तावन्त्यास्त्रिभागसंयुक्ताः।

वाराणस्यां त्रिकृतिः (=९) साधनमन्यत्र वक्ष्यामि ॥"

—भां. ज्यो. इ., पृ. १६१ पर उद्धृत।

भूत (यानी शून्य की) रेखांश स्वीकृत किया है<sup>१</sup> ।

आचार्य वराहमिहिर बृहज्जातक में अपने को कपित्थक गाँव का मूल निवासी एवं अवन्तिका (या उज्जयिनी) का रहिवासी कहलाता है<sup>२</sup> । संभवतः उसने अपने ज्योतिष-विषयक ग्रंथ उज्जयिनी में रहते हुए लिखे । इनमें पंच-सिद्धान्तिका, बृहज्जातक, बृहत्संहिता आदि प्रमुख हैं ।

बृहत्संहिता के टीकाकार भट्टोत्पल ने किसी पूर्वाचार्य का एक श्लोक उद्धृत किया है<sup>३</sup> । उसके अनुसार उज्जयिनी लंका से 'समसूत्र' में है, और दोनों का मध्याह्न एक ही समय पर होता है । इसी के अनुसार आगे बढ़कर भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि नामक ग्रंथ के गोलाध्याय में यह विशद किया गया है कि लंका, उज्जयिनी, कुरुक्षेत्र एवं मेरु इन सब के रेखांश एक ही है; एवं वही पृथ्वी की मध्यरेखा मानी जाती है<sup>४</sup> ।

कुछ प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि न केवल रेखांश, बल्कि अक्षांश भी उज्जयिनी से गिने जाते थे । कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) के आर्यभट्ट के ग्रंथ (आर्यभटीय) का उल्लेख करते हुए अलबीरुनी ने बताया है कि उसके अनुसार "कुरुक्षेत्र उज्जयिनी से १२० योजन दूरी पर है, यह भी पृथुस्वामी ने बताया है ।" यह

१. आर्यभटीय, गोलपाद :—“अचलानि भानि तद्वत्, समपश्चिमगानि लंकायाम् ।”

वही :—“लंका-सम-पश्चिमगो भपंचरः संग्रहो भ्रमिति ।”

२. बृ. जा. :—“आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः

कापित्थके सवितूलब्धवरप्रसादः ।

आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्य-

ग्धोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥”

३. “उज्जयिनी लंकायाः सन्निहिता योत्तरेण समसूत्रे ।

तन्मध्याह्नो युगपद् विषमो दिवसो विषुवतोऽप्यः ॥”

४. “यत्लङ्कोजयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान्स्पृशत्सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवि ॥”



आर्यभट (प्रथम) ई. ४०० के करीब का माना जाता है। यही विक्रमादित्य के समय का प्रमुख राज-ज्योतिषाचार्य होगा। कुछ गलती से ९ रत्नों में इसका स्थान शायद वराहमिहिर को दिया होगा। पृथुस्वामि—जिसको पृथुदक-स्वामी भी कहा जाता है—इसके पूर्व का है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह उज्जयिनी विषयक मान्यता बहुत प्राचीन समय से रही है।

**गोलदीपिका :**—आर्यभटीय के टीकाकार नीलकण्ठ द्वारा परमेश्वर नामक ज्योतिर्विद् का उल्लेख किया गया है। परमेश्वर की पुस्तक 'गोलदीपिका' में लिखा है कि<sup>१</sup> :—

(१) उज्जयिनी लंका के उत्तर में १५ अंश पर स्थित है।

(२) जब लंका तथा उज्जयिनी में सूर्योदय होता है, तब रोमक देश में मध्यरात्रि रहती है।

(३) उज्जयिनी के पूर्व में उतने ही दूरी पर 'यम-कोटि' या 'यव-कोटि' है, जितने दूरी पर पश्चिम में रोमक है; किन्तु वह लंका के अक्षांश में है। (यम-कोटि यह जावा (यवद्वीप) का पूर्वी छोर है।)

(४) सिद्धपुर नामक एक अति दूरी पर स्थित स्थान उज्जयिनी या लंका के प्रतीप (Nodal opposite) होने का उल्लेख है।

उपरोक्त कल्पनाएँ अन्य कुछ ज्योतिष ग्रंथों (भास्कराचार्य के सिद्धान्त शिरोमणि आदि) में ग्रंथित की हुई हैं<sup>२</sup>।

१. "स्थल-जल-मध्या लंका भूकक्षाया भवेच्चतुर्भागे ।

उज्जयिनी लंकाया पंचदशांशे समोत्तरतः ॥"

"उदयो यो लंकायां सोऽस्तमयः सवितुरेषु सिद्धपुरे ।

मध्याह्ने यवकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रिमिति ॥"

२. "यथोज्जिन्याः कुचतुर्थभागे प्राच्यां दिशि स्याद्यमकोटिरेपः । ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती लंकेव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम् ॥" —वाचस्पत्य, ग्रन्थ १, पृ. ४२९ में उद्धृत।

"लंकापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम् । अघस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव ॥" —सिद्धान्त-शिरोमणी। (वाचस्पत्य, ग्रंथ १, पृ. ११४८.)

सिद्धान्तादि गणित-ग्रन्थ किसी भी स्थान पर लिखे गये हों, उनके क्षेत्रक उज्जयिनी से माने जाते हैं<sup>१</sup>। विदेशों से भरकच्छ आदि बन्दरगाहों द्वारा न केवल पण्य वस्तुओं का, बल्कि ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान इसी पुण्य-नगरी से किया जाता था। Manetho या मणित्थ, यवनाचार्य, आदि के ग्रंथ तथा, 'पुलिश' (Alexandria-Polis), 'रोमक' (Rome) आदि सिद्धान्त इनका गहन अध्ययन वराहमिहिर तथा उसके अनुयायियों ने यहीं किया। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में किसी पूर्वाचार्य के उद्धृत किए श्लोकों में उज्जयिनी ही नक्षत्र-विषयक प्रमिति हेतु भी मूल-स्थान माना गया है<sup>२</sup>।

सवाई जयसिंह :— वेधशाला के स्थान के रूप में उज्जयिनी का महत्त्व फिर अठारवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बढ़ गया। राजस्थान में आमेर के राजा जयसिंह (द्वितीय)<sup>३</sup> ने जयपुर में तथा चार प्रमुख तीर्थस्थानों में—इन्द्रप्रस्थ, उज्जयिनी, काशी एवं मथुरा में—कुल पाँच वेधशालाएँ बनवाईं। उनमें पत्थर एवं चूने की जुड़ाई से नए नए महान् यन्त्र भी बनवाए। इनमें जयप्रकाश, यन्त्र सम्राट्, मितियन्त्र, वृत्त-षष्ठांश आदि यन्त्र प्रमुख थे। इन्हीं यन्त्रों की सहायता से महाराज जयसिंह ने "सिद्धान्त-सम्राट्", "झिज्-महम्मद-शाही" (या मिजस्ति) आदि ग्रन्थ लिखवाए। द ला हिर (De La Hire) की ज्योति-विषयक सारणी (Astronomical table) को भी इसने संशोधित किया।

१. भा. ज्यो. इ., पृ. २४३.

२. बृ. सं., भट्टोत्पल-टीका, पृ. ६०-६१ :—

“त्रिशतीं त्रिसप्ततियुतां गत्वोदग्योजनत्रिभागं च।

उज्जयिनीतो विघटति पर्याप्तोऽयं भगणगोलः ॥....”

योजन-पंच-नवांशास्त्र्यधिकां च चतुःशतीमुदगवन्त्याम्।

गत्वा न धनुर्मकरो कदाचिदपि दर्शनं व्रजतः।”

३. अर्थात् सवाई जयसिंह (ई. १६६९-१७४३) जिसने जयपुर बसाया। यह एक अद्वितीय शास्त्रज्ञ एवं शास्त्रकार थे। इन्हें 'सिद्धान्त-सागर' ग्रंथ में 'मत्स्यदेशाधिपति' कहा गया है।



(२००)

उज्जयिनी

**वेधशाला :**—केन्द्रीय शासन द्वारा ई. १९५१ में ही राष्ट्रीय महत्त्व की घोषित किए जाने के बावजूद—स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गत २० वर्षों में—इसकी प्रतिवर्ष अधिकाधिक गिरी रही हालत, देखने योग्य है। 'राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारक' के रूप किसी स्मारक को घोषित करना, उस पर एक पाई तक खर्च न करना, वह गिर जाने पर, या भग्न होने पर, उसे "अघोषित" करना—यह रही भूतपूर्व महानिदेशक श्री अमलानन्द घोष की एक प्रमुख नीति। अब भगवान् महाकाल की प्रीति से उस नीति में, एवं उज्जयिनी के विद्यमान पुरातत्त्विय स्मारकों में, तथा महाकाल-मंदिरसंग्रहालय में उचित सुधार होवें, यही उसकी प्रार्थना।

## परिशिष्ट : 'क'

### महाकाल

१. अमरेश्वर मन्दिर, मान्धाता (जिला खंडवा) में प्राप्त शिलालेख (हला-युध स्तोत्र):—

‘एकः स्रष्टा सकलजगतामादिभूतः स्वयंभू-  
स्त्राता तेषां त्रिभुवनगुरुर्वासुदेवः प्रसिद्धः ।  
यस्तौ द्वावप्यतुलमहिमा सहरत्यन्तकाले  
कस्तस्यान्यो भवति सदृशः श्रीमहाकालमूर्तेः ॥४॥’  
(ए. इ., ग्रन्थ २५, पृ. १७५ पश्चात्)

२. जगन्नाथराम मन्दिर, उदयपुर (जिला विदिशा) में शिलालेख (व):—

“स्थिं(स्थि)त्वापरेष्ठुः(द्युः) सुदिने व्रजपन्तु (न्तृप-)  
स्तीर्थं महाकाल-निकेतनं गतः ।  
अवन्तिकां मुक्तिददर्शनां तां  
सेव्यां सुरेंद्रादिगी(भि)[?री\*] शवन्द्यां ॥  
शिप्रां समासाद्य सुपापहन्त्री स्नात्वाथ दत्त्वा(त्त्वा)बहुशो द्विजेभ्यः ।  
दृष्टाप्यवंतीमवमत्य तर्पति मार्गादिगाल्लोकभयं वितन्वन् ॥”

नवसाहसार्कचरितम्, १० १६ पश्चात्:—

एतान्यवन्तीश्वरपारिजात-जातानि तारापतिपाण्डुराणि ।  
सम्प्रत्यहं पश्यत दिग्बधूनां यशःप्रसूनान्यवतंसयामि ॥  
अस्ति क्षितावुज्जयिनीति नाम्ना पुरी विहायस्यमरावतीव ।  
बबन्ध यस्यां पदमिन्द्रकल्पः श्रीविक्रमादित्य इति क्षितीशः ॥  
आमञ्जुगुञ्जत्कलहंस-पङ्क्ति-विकस्वराम्भोजरजःपिशङ्गा ।  
आमाति यस्याः परिखा नितम्बे सन्नद्धजाम्बूनदमेखलेव ॥  
प्राकार-वप्र-च्छलतःशरीरमावर्त्य लीलाशयनं मुरारेः ।  
यत्रान्तरस्थायि निधानरक्षां विधातुमुन्मग्न इवोरोन्द्रः ॥  
पदे पदे सान्द्रमुष्टोज्ज्वलानि गूहाणि या नाकसदां बिभर्ति ।



अभ्युदगतानीवफणीन्द्रलोकमापूर्य तद्भूमिभृतां यशांसि ॥  
 हिमच्छटाहारिभिरंशुजालैःप्रालम्बिमुक्ताफलजालकानि ।  
 विलासिनीविभ्रसन्दिराणि यस्यां हसन्तीव परस्परस्य ॥  
 गृहाणि यस्यां सवराङ्गनानि वराङ्गना रूपपुरस्कृताङ्ग्यः ।  
 रूपं समुन्मीलितसद्विलासमस्त्रं विलासाः कुसुमायुधस्य ॥.....  
 दुर्गेति सर्वत्र गता प्रसिद्धिं नगेन्द्रकन्येव सनीलकण्ठा ।  
 या लग्न-काञ्चीविषयेण कान्तिं सिंहासनेनातितरां विभर्ति ॥  
 वृन्तादपास्तैर्मरुता विकीर्णैःसुगन्धिभिस्तीरतरुप्रसूनैः ।  
 शिप्रा-सरित् कूलतमाल-नीला विभाति यस्याः कबरीलतेव ॥.....  
 विभर्ति यस्यामपि वक्रिमाणमेको महाकालजटाध्वजः ॥  
 ध्वजाग्रलग्नेन धिलम्बता खं ह्यनेक-रत्नांशु-कदम्बकेन ।  
 यस्यां स चण्डीपति-मण्डपोऽपि विभर्ति मायूरमिवातपत्रम् ॥  
 पुरा किल ब्रह्मकमण्डलोर्यदापूरितं पुण्यतमाभिरद्भिः ।  
 धत्तेऽत्र या तत्त्रिपुरान्तकस्य तडागमादर्शमिवाङ्कदेशे ॥.....  
 यस्यां विसूत्रोज्झितमेखलानि तथा शुकावर्तितसीकृतानि ।  
 शंसन्ति संकेतमुषःसु यूनां शिप्रा-तटोद्यान-लता-गृहाणि ॥”

नवसाहस्रकचरितम्: १८. ५६ पश्चात्:—

शिप्रार्पितेन सहसा पुरतःप्रभाव-  
 सीमन्तिताम्बुपटलेन पथा ससैन्यः ॥  
 तस्याः स्वहस्तमुनिसंहतकल्पितार्थः  
 सिन्धोस्तटे स पदमेकपदे चकार ।  
 शृङ्गे तदा च भगवानरविन्दबन्धु-  
 र्वन्धूक-पाटल-रुचिः कनकाचलस्य ॥  
 बालातपच्छुरितहर्म्यविटङ्कवर्ति-  
 पारावतातिमधुरध्वनितच्छलेन ।  
 सम्भाषणं विदधतीमिव पौरमुक्त-

पुष्पाञ्जलिः स पुरमुज्जयिनीं विवेश ॥ .....

आनन्दवाष्पसलिलार्द्रहृशोऽर्धमार्गे

सम्भाष्य तान् स्मितमुखः सह तैर्जगाम ।

विद्याधरोरगकराहतहेमघण्टा-

टाङ्कारहारि भवनं त्रिपुरान्तकस्य ॥'

### मुरारि का अनर्घराघव

“मुग्रीवः—(अन्यतो दर्शयन्) इयमिह शृङ्गार-देवतागर्भगृहमवन्ती-विषय-सीमन्तमौक्तिकमुज्जयिनी नाम राजधानी ।

कमितुरभिसृत्वरीणां गौराङ्गीणामिहेन्दुगौरीषु !

उड्डीयमानानामिव रजनीषु परं समीक्ष्यते छाया ॥

अपि च—

अधस्तात्सोधानामिह हि चरतामिन्दुकिरणान्

घनोदञ्चच्चञ्चूपुटनिहितनेत्रा युवतयः ।

चकोराणां ज्योत्स्नारसकुतुककौतूहलभृता-

मुदीक्षन्ते नश्यत्तिमिरविशदाभोगमुदरम् ॥ ११०

अपि च—

इह युवतिवदनकान्तिभिराप्यायिततुन्दपरिमृजः शेते ।

भुक्तापभुक्तहिमरुचि-मरीचिरन्तःपुरचकोरः ॥ १११

इहैवालकायां शाखानगरगौरवभाज्जि त्रिपुरदहनाधिष्ठाने प्रतिष्ठितो

भगवान्महाकालनाथः । अयं हि

उद्दामभ्रमिवेगविस्तृतजटावल्ली-प्रणालीपतत्-

स्वर्गङ्गाजलदण्डिकावलयितं निर्माय तत्पञ्जरम् ।

संभ्राम्यद्भुजदण्डपक्षपटलद्वन्देन हंसायित-

स्त्रैलोक्यव्ययनाटिकानयनटः स्वामी जगत्त्रायताम् ।



रामः—(प्राञ्जलिः):—

नमस्तुभ्यं देवासुरमुकुटमाणिक्यकिरण-  
 प्रणालीसम्भेदस्नपितचरणाय स्मरजिते ।  
 महाकल्पस्वाहाकृतभुवनचक्रेऽपि नयने  
 निरोद्धं भूयस्तत्प्रसवमिव कामं हुतवने ॥  
 वेगादगादेव तव त्रिनेत्र युग्मेतरस्मान्नयनात्कुशानुः ।  
 कामे तु संमोहनशस्त्रहस्ते स्वाहामनुध्याय चिरं जडोऽभूत ॥ ११४

(सर्वे नमस्यन्ति)

सीता :—(विहस्य) अज्जउत्त, तत्तभवदो ससिसेहरस्स कवलितचउद्दसलो-  
 अस्य विण पलाइदा किं बुभुक्खा । जेण णवणीदं विअ मअणो वि भअवं ललाट-  
 हुदवहगासीकिओ ।

राम :—(सविमर्शम् ।) अस्य हि पुरा भगवता  
 वाणीभूतपुराणपूरुषधृतिप्रत्याशया धाविते  
 विद्रातीक्षणजाशुशुक्षणिकणवलान्ते शकुन्तेश्वरे ।  
 नम्रोन्नम्रभुजङ्ग-पुङ्गवगुणव्याकृष्टबाणासन-  
 क्षिप्तास्त्रस्य पुरद्रुहो विजयते सन्धानसीमाश्रमः ॥

समाप्त

## संक्षेप

अ. अ. रि. आ. डि. ग्वा. स्टे.—अॅन्युअल् अॅड्मिनिस्ट्रेटिव् रिपोर्ट् ऑफ् आर्कि  
ऑलॉजिकल् डिपार्ट्मेन्ट् ग्वालियर् स्टेट्.

अ. इ. अ. पा } डॉ. ई. मॉर्टिमर् वीलर्, अली इन्डिया अॅण्ड् पाकिस्तान  
अ. इ. पा. }

अभिधान—हेमचन्द्रसूरि का अभिधानचिन्तामणि.

अमर—अमरसिंह का अमरकोश.

अॅलन्, कॅटलॉग्—डॉ. जे. अॅलन्, कॅटलॉग् ऑफ् कॉइन्स् इन् दि ब्रिटिश म्युजीयम्  
(ट्राइबल् अॅड् लोकल् कॉइन्स्)

अ. वे. —अथर्ववेद

अ. हि. इ.—डॉ. दे. रा. भाण्डारकर, अॅड्मिनिस्ट्रेटिव् हिस्ट्री ऑफ् इन्डिया  
(का. ले.)

आ. ए. इ.—डॉ. एन्. आर्. वानर्जी, आयर्न् एज् इन् इन्डिया.

आ. स. इ. अ. रि.—आर्कियॉलॉजिकल् सर्वे ऑफ् इन्डिया; अॅन्युअल् रिपोर्ट्.

आ. स. वे. इ.—आर्कियॉलॉजिकल् सर्वे, वेस्टर्न् इन्डिया, रिपोर्ट्.

इ. अ.—इन्डियन् अॅन्टिकवरी

इ. क.—इन्डियन् कल्चर्

इ. क. ई.—म. म. वा. वि. मिराशी, इन्क्रिप्शन्स् ऑफ् दि कलचुरि-चेदि ईरा  
(कॉ. इ. इ., ग्रन्थ ४, भाग १-२)

इ. गं. इ.—इम्पीरियल् गॅजेटियर् ऑफ् इन्डिया (१९०७-०८)

इ. हि. इ.—डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, इम्पीरियल् हिस्ट्री ऑफ् इन्डिया



ए. इं.—इपिग्राफिया इन्डिका

ए. इं. हि. ट्रें,—प्रो. एफ्. पार्जिट् एन्शन्ट् इन्डिरन् हिस्वारिकल् ट्रेंडिटांशन्स्.

ऐ. इं.—एन्शन्ट् इन्डिया.

ए. हि. डे.—प्रो. युवो दुब्रुए; एन्शन्ट् हिस्ट्री ऑफ् दि डेक्कन्.

ज. बाँ. ब्रँ. रा. ए. सो.—जर्नल् ऑफ् दि वॉम्बे ब्रॉन्च् ऑफ् दि रॉयल् एशिया-  
टिक् सोसायटी ऑफ्.

ज. न्यू. सो. इं.—जर्नल् ऑफ् दि न्यूमिस्मेटिक् सोसाएटी ऑफ् इन्डिया

ज. राँ. ए. सो.—जर्नल् ऑफ् दि रॉयल् एशियाटिक् सोसाएटी ऑफ् ग्रेट् ब्रिटन्

ज. राँ. ए. सो. बें.—जर्नल् ऑफ् दि रायल् एशियाटिक् सोसाएटी ऑफ्  
बेंगाल.

क. फो.—कल्चरल् फोरम् (भारत शासन)

क. सा. सा.—कथा-सरित्-सागर

आ. ए. इं.—सर् अलैक्जेंडर् कनिंघम्, काँइन्स् इन् एन्शन्ट् इन्डिया

कादं.—बाणभट्ट की कादम्बरी

का. मी.—राजशेखर की काव्यमीमांसा (गा. ओ. सो. प्रति)

का. ले.—डॉ. दे. रा. भाण्डारकर, कार्माइकील लेक्चर्स (१९१८ व १९२१)

कौ. अ.—कौटिलीय अर्थशास्त्र (डॉ. शामाशास्त्री)

क्रो. इं.—डॉ. एस्. एन्. प्रधान, क्रोनॉलॉजी इन् इन्डिया (कलकत्ता)

जा—जातक-कथा

डा. क. ए.—प्रो. एफ्. पार्जिटर्, डायनॅस्टीज् ऑफ् दि कलि एज्.

डि. आ. अँ. रि. इं. ए.—डिपार्टमेंट् ऑफ् आर्किऑलॉजी, अँन्युअल् रिपोर्ट् फॉर्  
इन्डियन् एपिग्रफी

त्रिकाण्ड—त्रिकाण्डशेष

त्रि. श. पु. च.—श्रीहेमचन्द्रसूरि का त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित

द. कु. च.—दश-कुमार-चरितम्

दीध—दीघनिकाय,

ना. पु.—नारद-पुराण

पा.—पाणिनि का व्याकरण

पाँ. हि. ए. इ.—डॉ. हेमचन्द्र रायचौधुरी, पॉलिटिकल् हिस्ट्री ऑफ़ एन्शद् इन्डिया

पु.—पुराण

प्रतिज्ञा—भास का प्रतिज्ञायौगन्धरायण

प्रा. प्र.—वररुचि का प्राकृत-प्रकाश (कवेल)

प्रा. भा. सं.—स. का. दीक्षित, प्राचीन भारतीय संस्कृति (१९६०)

प्रा. ल.—प्राकृत-लक्षण

बाँ. गँ—बाँम्बे गॅजेटियर्

बृ. क. मं.—क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी

बृ. सं.—बृहत्संहिता

बौ. ध. सू.—बौधायन-धर्म-सूत्र

भा. ज्यो. इ.—शं. बा. दीक्षित, भारतीय ज्योतिष-शास्त्राचा इतिहास  
(मराठी)

भा. ना. } भारतीय नाट्यशास्त्र  
भ. नाट्य. }

भा. ओ. री. इ.—भाण्डारकर ओरिएण्टल् रीसर्च, इन्स्टिट्यूट, पूना.

मँ. इ. बु.—कर्न्, मॅन्युअल् ऑफ़ इन्डियन् बुधिजम्

म. भा—महाभारत



( ४ )

मार्शल, कॅटलॉग—सर् जॉन् मार्शल, कॅटलॉग ऑफ दि अँन्टिक्विटीज् इन् सांची  
म्युजीयम्

मृच्छ—शूद्रक का मृच्छकटिक

यश—सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू

यु. ट्रे. इं. } डब्लू. एफ. वाटर्स, ऑन् युआन् छ्वाङ्ज् ट्रेवल्स् इन् इन्डिया  
यु.छ्वा.ट्रे.इं. }

रघु.—कालिदास का रघुवंश

रॅप्सन्, कॅटलॉग—रॅप्सन्, कॅटलॉग ऑफ् काँइन्स् इन् ब्रिटिश् म्युजीयम्, आन्ध्र  
वेस्टर्न् धन्नप, त्रैकूटक अँड् 'बोधि'.....

रामा.—वाल्मीकि का रामायण

स्मिथ्, कॅटलॉग,—डॉ. विन्सेन्ट् स्मिथ्, कॅटलॉग ऑफ् काँइन्स् इन् दि इन्डियन्  
म्युजीयम् (कलकत्ता), ग्रन्थ १.

स्वप्न—भास का स्वप्नवासवदत्ता

स्ट. इं.—म. म. वा. वि. मिराशी, स्टडीज् इण्डॉलॉजी, भाग १.

स्ट. इं. हि. सि,—डॉ. बुद्ध-प्रकाश, स्टडीज् इन् हिस्ट्री अँण्ड् सिविलाजेशन्.

ह. च.—वाणभट्ट का हर्ष-चरितम्

हि. इं.—ईलियट् अँण्ड् डौसन्, हिस्ट्री ऑफ् इन्डिया, भाग २.

हि. इं. लि.—डॉ. एम्. विटर्निट्स्, हिस्ट्री ऑफ् इन्डियन् लिटरेचर्.







## श्री दीक्षित की पुस्तकें

- |                                                                                                                     |                                               |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------|
| 1. The Mother Goddess ( 1943 ). ( Rs. 20/- )                                                                        | दीक्षित ब्रदर्स, पूना-४                       |
| 2. The Problem of the Kushanas<br>and the Origin of Vikrama Samvat.<br>( 1951 ) ( Out of Print ). ( Rs. 10=00 )     | „ „ „                                         |
| 3. Parijata—Manjari ( 1966 ) (Rs. 5=00)                                                                             | „ „ „                                         |
| 4. A Guide to Nagarjuna-Konda (Rs. 1/-)                                                                             | „ „ „                                         |
| 5. Spot-light on the History of the<br>Chandellas (Rs 5=00)                                                         | „ „ „                                         |
| 6. माण्डू : एक झलक (रु. ५=००)                                                                                       | „ „ „                                         |
| 7. प्राचीन भारतीय संस्कृति (रु. ७=५०)                                                                               | School & College<br>Bookstall, Kolha-<br>pur. |
| 8. An Introduction to Archaeology<br>( 1955 ) (Rs. 25/-) (Out of Print).                                            | Asia Publishing<br>House, Bombay.             |
| 9. A Guide to the State Museum,<br>Dhubela, Nowgong. (Bkd.). M. P.<br>( 1057 ) ( Rs. 1/-)                           | Government of<br>M. P.                        |
| 10. A Guide to the Central Archaeolo-<br>gical Museum, Fort, Gwalior. (1962-<br>63) (Rs. 1=50 ps.)                  | „ „ „                                         |
| 11. राजकीय संग्रहालय, धुबेला, नौगाँव (बुन्दे.)<br>की मार्गदर्शिका (१९५९) (रु. ०=७५)                                 | „ „ „                                         |
| 12. केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर, में संरक्षित<br>उत्कीर्णलेख तथा हस्तलिखित ग्रन्थ<br>( विवरणात्मिका सची ) (१९६१-६२) | „ „ „                                         |